प्रमुख पुराणों में नारी-चित्रण

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी की पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

प्रस्तुतकर्त्री-

श्रीमती मनोज मिश्र

शोधच्छात्रा, संस्कृत-विभाग,

पं० जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय, बाँदा (उ०प्र०)

निर्देशक-

प्रोफेसर डॉ० रामावतार त्रिपाठी

संस्कृत-विभागाध्यक्ष,

पं० जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय, बाँदा (उ०प्र०)

संस्कृत-विभाग,

कला-सङ्काय,

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी (उ०प्र०)
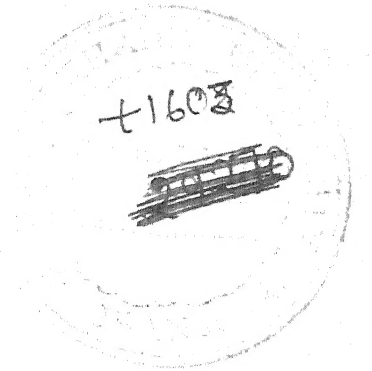
दीपावली - १९९१

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि —

(1)यह शोध-प्रबन्ध शोधछात्रा का निजी एवम् मौलिक प्रयास है।

(2)इन्होंने मेरे निर्देशन में विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित अवधि तक कार्य किया है।

(3)इन्होंने विभाग में वांछित उपस्थिति भी दी है।

संस्कृत-विभाग

दिनांक [illegible]

शोध निर्देशक

रामावतार त्रिपाठी

(डा0 रामावतार त्रिपाठी)
संस्कृत विभागाध्यक्ष,
पं0जवाहर लाल नेहरू महाविद्यालय,
बांदा

आमुख

आमुखम्

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के प्रारम्भ में अपने विनम्र हृदयोद्‌गार व्यक्त करते हुए मुझे विशेष प्रसन्नता हो रही है। शोध-कार्य हेतु मेरी तीव्र इच्छा पूर्व से रही है तदनुसार मैंने अपने गुरुवर्य डा0 रामावतार त्रिपाठी, अध्यक्ष संस्कृत-विभाग, पं0जवाहर लाल नेहरू महाविद्यालय, बांदा से उक्त विषयक परामर्श किया जिससे उन्होंने मेरी रुचि को देखते हुए कतिपय 'प्रमुख पुराणों में नारी-चित्रण' विषय पर अनुसन्धान कार्य हेतु मुझे प्रेरित किया था। बुन्देल - खण्ड विश्वविद्यालय में उक्त विषय के शोधार्थ यथासमय पंजीकरण हो जाने से इस कार्य में कुछ गति आई। यद्यपि इस प्रबन्ध को यह स्वरूप प्रदान करते समय मुझे अनेक प्रकार के विघ्नों का सामना करना पड़ा है, किन्तु परा-शक्ति माता अम्बा की कृपा से यथाकथंचित् पार लग सकी हूँ और अब कार्य-जनित क्लेश को भूल कर नवीनता का अनुभव कर रही हूँ।

यह शोध-प्रबन्ध डा0रामावतार त्रिपाठी, संस्कृत विभागाध्यक्ष, नेहरू महाविद्यालय के विद्वत्तापूर्ण एवं गवेषणात्मक निर्देशन में सम्पन्न हुआ है। उन्होंने समय-समय पर कृपा-पूर्वक शोधकार्य सम्बन्धी दिशा-निर्देश मुझे प्रदान किये हैं जिनके फलस्वरूप शोध-प्रबन्ध को इस रूप में प्रस्तुत करने का मुझे सौभाग्य अब हस्तगत हुआ है।

शोध-प्रबन्ध का शीर्षक ' प्रमुख पुराणों में नारी चित्रण' है। इस शोध प्रबन्ध के अध्ययन-विषयीभूत प्रमुख पुराणों के अन्तर्गत ब्रह्म,पद्म,

विष्णु, मार्कण्डेय और देवी भागवत पुराण है।

यह शोधप्रबन्ध आठ अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय की विषयवस्तु परिचयात्मक और वर्णनात्मक है। इसमें पुराणों की व्युत्पत्ति और उनके लक्षण और निर्वचन पर संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। तदनन्तर पुराणों के महत्त्व और उनकी प्रासंगिकता बतलाने का प्रयत्न किया गया है। इसमें अध्ययन विषयीभूत प्रमुख पुराणों - ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, मार्कण्डेय और विष्णुपुराण का संक्षिप्त परिचय, प्रणेता और रचनाकाल के सम्बन्ध में यथासंभव सामग्री प्रस्तुत की गयी है।

द्वितीय अध्याय में वैदिककाल की नारी से विषय-वस्तु के प्रवर्तन का प्रयत्न किया गया है। भारतीय चिन्तन और अध्ययन साक्षात् या परम्परया वेदों से ही सम्बद्ध माने जाते हैं अतः इस अध्ययन को भी वैदिक काल की नारी से प्रारम्भ कर उसके परवर्ती पुराण-काल में प्रभाव को दिखाने का प्रयत्न किया गया है।

तृतीय अध्याय के अन्तर्गत ब्रह्मपुराण के नारी-पात्रों का सामान्य परिचय और प्रवृत्ति प्रस्तुत की गयी है।

पद्मपुराण के नारीपात्र चतुर्थ अध्याय में वर्णित है। इसके अन्तर्गत सती सुकला, रानी सुदेवा, सती सुनीथा, देवी पद्मावती और कण्वदुहिता शकुन्तला का संक्षिप्त चित्रण समाहित है।

षष्ठ अध्याय में मार्कण्डेय पुराण के नारी-पात्र के अन्तर्गत सती अनसूया, सती मदालसा, सती शाण्डली और मार्कण्डेय ऋषि की आराध्या जग - ज्जननी दुर्गा के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है।

सप्तम अध्याय देवी भागवत पुराण के अनेक नारी-रत्नों और आदिशक्ति को समर्पित है।

अष्टम अध्याय में उपसंहार प्रस्तुत किया गया है। इसमें यह बतलाने का प्रयत्न किया गया है कि किस प्रकार आज भी परिवर्तित परि - वेश में अपने कतिपय दुर्लभ गुणों के लिए पुराण-काल की नारी की प्रासंगिकता बनी हुई है। पुराण-काल में नारी की प्रतिष्ठा का क्या स्वरूप था, उसके क्या क्या गुण थे और आधुनिक नारी-समाज के लिए उसका क्या योगदान रहा है? आदि अनेक विषयों पर सविस्तर चर्चा प्रस्तुत की गई है।

मानवजाति में नारी जाति प्रायः उपेक्षित रही है। पुरुषप्रधान सभ्यता में नारी को प्रायः द्वितीय श्रेणी का व्यक्तित्व माना जाता रहा है। समाज में नारी का योगदान अपरिहार्य होते हुए भी उसे अपेक्षित महत्व नहीं दिया गया है। यद्यपि नारी सम्बन्धी कुछ अध्ययन हुए हैं लेकिन पुराण-काल की नारी का अध्ययन अछूता रह गया था, उसी की पूर्ति हेतु यह शोध - प्रबन्ध प्रयास रूप में प्रस्तुत है।

मार्कण्डेयपुराण के अन्तर्गत प्राप्त दुर्गासप्तशती में नारी जाति को साक्षात् भगवती पराम्बा दुर्गा जी का प्रतिबिम्ब और प्रतीक माना गया है और फिर नारी गृहस्थाश्रम की मेरुदण्ड तथा पूजनीय रही है। ' यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ' यह शास्त्रीय उद्घोष नारी जाति के वन्दनीय होने का प्रमाण है। प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में यह निरूपित करने का प्रयत्न किया गया है। पुराणकालीन नारियों ने अपने त्याग, तप, नियम, धर्म शील, सदाचार और आदर्श जीवन से भारतीय समाज, सभ्यता और संस्कृति को जहाँ एक ओर अलंकृत किया है वहीं दूसरी ओर उन्होंने परकालीन नारी जाति को सत्य और सदाचार के पथ पर चलने के लिए प्रेरित किया है। आशा है कि पुराणकाल की नारियों के कतिपय दुर्लभ गुणों को ग्रहण कर आधुनिक सभ्यता की चकाचौंध से दिग्भ्रमित वर्तमानकालीन नारी-जाति समाज में पुनः प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकेगी और 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र - देवताः ' इस शास्त्रोक्ति को चरितार्थ कर सकेगी,इत्यादि निष्कर्षों के उद् - घाटन करने का इसमें यथासम्भव प्रयत्न किया गया है।

इस शोध प्रबन्ध के निर्देशन में गुरुवर्य डा0त्रिपाठी जी ने अपने जिस सहज स्नेह का परिचय दिया है और मुझे प्रस्तुत कार्य में सफलतार्थ जो सहायता दी है, तदर्थ मैं सदैव उनकी चिरऋणी रहूँगी। इस अवसर पर मुझे महाकवि माघ का निम्नांकित श्लोक का स्मरण हो रहा है -

(5)

'बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति

सम्भूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा ॥

पं0जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय के प्राचार्य मान्यवर डा0 वी0एन0सेठ साहब के प्रति भी मैं श्रद्धावनत हूँ जिन्होंने इस कार्य को पूरा करने के लिए अपना आशीर्वाद देकर मुझे अनुगृहीत किया है।

अतर्रा कालेज अतर्रा के संस्कृत विभागाध्यक्ष डा0जगदेव प्रसाद पाण्डेय जी का भी मैं आभार स्वीकार करती हूँ जिन्होंने पुस्तकीय सहायता प्रदान कर मुझे उपकृत किया है।

शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में मुझे अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा है और उनसे जो मैं पार लग सकी हूँ, इसे मैं अपने स्वजनों (श्वसुर कुल और पितृकुल) गुरुजनों और शुभचिन्तकों की शुभकामना का ही परिणाम समझती हूँ।

इस प्रबन्ध को पूर्ण करने में अनेक पूर्व के विद्वानों के ग्रन्थों लेखों और पत्र-पत्रिकाओं से सहायता ली गयी है, इस लिये उन सभी 'पूर्व-सूरि' सदृश विद्वानों के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के टंकक श्री राम आसरे पाण्डेय का मैं हृदय तल से आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने अनेक संस्कृत श्लोकों और उद्धरणों से भरे हुए इस प्रबन्ध का टंकण-कार्य यथाविधि-शुद्धता और शीघ्रता के साथ पूरा किया है।

अन्त में निम्नांकित श्लोकों से अष्टादशपुराणों के प्रणेता महा - मति सत्यवती हृदयनन्दन वेदव्यास और समस्त नारी जाति में शक्ति के रूप में समाहित सभी प्रकार के अर्थों को सिद्ध करने वाली माता गौरी का स्मरण कर आत्मिक सुख का अनुभव कर रही हूँ।

'अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः।
अभाललोचनः शम्भुर्भगवान् बादरायणः॥

'सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि, नारायणि नमो स्तु ते॥

दीपावली, 1991

– विदुषां वशंवदा
मनोज मिश्रा
(श्रीमती मनोज मिश्रा)

विषयानुक्रम

(ब)

(ङ)

(ई)

(ऊ)

द्वितीय अध्याय : वैदिककाल में नारी 65-101

कन्याजन्म की अपेक्षा पुत्रजन्म हेतु वेदों में अनेक प्रार्थनायें

प्राप्त, पुत्र की आशा की ज्योति

कन्या कष्टकारिणी और शोकजन्य

परवर्ती साहित्य में

कन्या जन्म कष्टकारी

पुंसवन संस्कार का विधान

किन्तु विदुषी कन्या पुत्र से श्रेष्ठ

कन्या कुल का जीवन

पुत्र के पितृहन्ता और मातृहन्ता के उदाहरण प्राप्त किन्तु

पुत्री के ऐसे उदाहरण अप्राप्त

लोपामुद्रा द्वारा अगस्त्य के शाप से पिता की रक्षा

कुन्ती द्वारा दुर्वासा के शाप से अपने पिता कुन्तीभोज की रक्षा

कन्यादान पृथ्वीदान के समान पुण्यप्रदाता

कन्या के सुव्यवस्थित होने तक पिता को चिन्ता

जन्मकाल में ही कन्यावध के प्रमाण

अप्राप्त

कन्या पिता के लिए प्रिय

अविवाहित कन्यायें लक्ष्मी का प्रतीक

अविवाहित कन्यायें मांगलिक -

(ग)

सर्वप्रथम इनके द्वारा श्रीराम का राज्याभिषेक

पुत्र और पुत्री पर माता-पिता का समान प्रेम

पुत्र के समान पुत्री में भीपिता के त्राण का सामर्थ्य

नवरात्र में कन्या-पूजन का विधान

वैदिककाल में नारी शिक्षा की व्यवस्था

ऋग्वेद के मंत्रों की दृष्टा लगभग 24 वैदिक नारियाँ — 73-79

सूर्या सावित्री,

घोषा काक्षीवती इत्यादि

अपाला, आत्रेयी, लोपा मुद्रा इत्यादि

अथर्व वेद के अनेक मंत्रों की रचनाकार

वैदिक नारियाँ — 79-80

सूर्या सावित्री, मातृनामा, इन्द्राणी इत्यादि

नारियों के कार्य अध्ययन

अध्यापनादि

नारियों का युद्धभूमि में भी गमन

वैदिककाल में नारी का महत्व,

नारी अवध्य

यागादि में नारी की सहभागिता

वैदिककाल में नारी-छात्राओं का दो भाग में विभाजन — 82-83

ब्रह्मवादिनी तथा सद्योद्वाहा

(ओ)

(औ)

(क)

(घ)

(ग)

(च)

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश

पुराणों का सामान्य - परिचय

प्रथम अध्याय

पुराणों का सामान्य परिचय -

(क) पुराण लक्षण एवं परिभाषा तथा परिचय -

महावैयाकरण पाणिनि अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' में 'पुराण' शब्द का उल्लेख करते हैं। उन्होंने दो सूत्रों में पुराण शब्द का उल्लेख कर उसकी महत्ता और प्राचीनता सूचित की है।[1] पाणिनि व्याकरण के अनुसार पुराण शब्द पुरा शब्द से ट्यु प्रत्यय होने पर निपातनात् सिद्ध होता है।

'पुराण' शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख विशेषण के रूप में ऋग्वेद - संहिता के अनेक मंत्रों में उपलब्ध होता है,[2] यद्यपि वहां 'पुराण शब्द का अर्थ प्राचीन या पुरातन किया गया है किन्तु पुराण-साहित्य के अन्तर्गत पुराण शब्द से जो अर्थ अभिप्रेत है, उस अर्थ में ऋग्वेद संहिता में 'पुराण' शब्द के प्रयोग अब भी अनुसंधेय है। अथर्ववेद संहिता 11/7/24 में कहा गया है कि ऋग्वेद, सामवेद, छन्द अर्थात् अथर्ववेद और यजुर्वेद के साथ पुराण तथा द्युलोक

1- पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलसमानाधिकरणेन' (पा० 2-1-49)

- पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु' - पा० 4-3-105

2- स वा पुराणमध्येम्यारान्महः पितुर्जनितुर्जामि तन्नः ।
देवासो यत्र जनितार एवैरुरौ पथि व्युते तस्थुरन्तः ॥
- ऋग्वेद 3-54-9

पुराणमोकः सख्यं शिवं वाम्' - ऋग्वेद 3-58-6

' ये जाते पितरो नः पुराणे।' - ऋग्वेद 10-130-6

के निवासीगण 'उच्छिष्ट' संज्ञक परमात्मा से सब उत्पन्न हुए हैं। किन्तु अथर्ववेद संहिता के मंत्र 11/7/24 में आये 'उच्छिष्ट' शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है।[1] कुछ लोग 'उच्छिष्ट' शब्द का अर्थ यज्ञादिकर्म का अव-शिष्ट भाग मानते हैं किन्तु सायणाचार्य ने इस शब्द का अर्थ भूत भौतिकादि पदार्थों के प्रलय के बाद भी शेष परमात्मा अर्थ किया है।[2] अस्तु अथर्ववेद के उक्त कथन से वेदों के साथ पुराणों की उत्पत्ति का उल्लेख 'पुराण' की प्राचीनता और दिव्यता की ओर संकेत करता प्रतीत होता है।

वैदिक संहिताओं के पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषद् ग्रन्थों में भी पुराण की अनेक स्थलों पर चर्चा प्राप्त होती है। गोपथब्राह्मण के अनुसार पुराणों के सहित सभी वेद विनिर्मित हुए हैं।[3]

यजुर्वेद का प्रसिद्ध ब्राह्मण ग्रन्थ शतपथ ब्राह्मण 11-5-6-8 में 'पुराण' का उल्लेख करता है। इसी प्रकार आरण्यक और उपनिषद् ग्रन्थों में लगातार पुराणों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। तैत्तरीय आरण्यक 2/9में 'पुराणानि' कहकर पुराणों का स्मरण करता है। छान्दोग्योपनिषद् 7-1-4 में कहा गया है -

---

1- ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥
— अथर्ववेद संहिता 11-7-24

2- उद् ऊर्ध्वम् सर्वेषाम् भूतभौतिकानाम् अवसाने शिष्टः उर्वरितः परमात्मेत्यर्थः।'
— सायण अ0 11-7-24

3- एवमिमे सर्वे वेदाः निर्मिताः ...... स पुराणाः'
— गोपथब्राह्मण — 2-10

'इतिहासपुराणः पंचमो वेदानां वेदः' अर्थात् इतिहास पुराण' वेदों का वेद है और ऋग्वेद यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद के बाद पंचम स्थान में रखा जाता है। छान्दोग्योपनिषद् 7-1-2 में ऋषि कहता है - हे भगवन् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद चतुर्थ अथर्ववेद और पंचम इतिहासपुराण का अध्ययन करता हूँ।[1]

इस प्रकार यह विदित हो जाता है कि पुराण भी अतिशय प्राचीन ग्रन्थ है और वेदों की भांति पुराणों का भी अनेक दृष्टियों से अत्यधिक महत्व है।

महाभारत में भी पुराणों के महत्व और उसकी विषयवस्तु का उल्लेख प्राप्त होता है जिसके अनुसार आस्तिकता सत्य, शौच दया तथा आर्जव आदि पुराणों में वर्णित हैं जिनका विद्वज्जनों द्वारा लोक में प्रचार और प्रसार किया जाता है।[2]

महाभारत में यह भी कहा गया है कि इतिहास और पुराण के द्वारा वेद का समुपबृंहण करना चाहिए अल्पश्रुत व्यक्ति से वेद डरता है कि यह मुझ पर प्रहार करेगा।[3] इससे वेदों के पूर्ण अध्ययन के लिए पुराणों का अतिशय महत्व सिद्ध होता है।

1- ऋग्वेदम् भगवो ध्येमि यजुर्वेदम् सामवेदम् आथर्वणम् चतुर्थम् इतिहास-
पुराणम् पंचमम् वेदानाम् वेदम्।
— छान्दोग्योपनिषद् 7/1/2

2- माहात्म्यमपि चास्तिक्यं सत्यं शौचं दयार्जवम्।
विद्वद्भिः कथ्यते लोके पुराणे कविसत्तमैः।

3- इतिहास पुराणाभ्यां वेदम् समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥
— महाभारत आदिपर्व

याज्ञवल्क्य स्मृति ने चतुर्दश विद्याओं के मध्य पुराणों का प्रथमोल्लेख कर उसे महत्ता प्रदान की है। पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, षट्वेदांग और चार वेद में चतुर्दश विद्यायें धर्म के आधार, स्थिति और आकर हैं।[1]

इस प्रकार पुराणों के ज्ञान की यह धारा प्राचीनकाल से अक्षुण्णरूप से प्रवहित होती हुई आज तक यथावत् प्रवहमान है। सप्तम शताब्दी के कवि पंचानन बाण भट्ट जाबालि आश्रम के प्रसंग में 'पुराणेषु वायु प्रलपितम्' कहकर वायुपुराण की महत्ता का संकेत किया है और उन्होंने ही तारापीड राजा के राजकुल का वर्णन करते हुए उसके क्रमबद्ध विभाग की प्रशंसा की है -'पुराणमिव यथा भागा - वस्थित सकलभुवनकोषम्' अर्थात् जिस प्रकार पुराण में भुवनकोष (भौगोलिक वर्णन) विभिन्न भागों में अवस्थित है वैसे ही राजकुल में भी भुवनकोष यथाभागावस्थित है।

पुराण शब्द का निर्वचन अनेक प्रकार से किया जाता है। पाणिनि के अनुसार 'पुराभवम् पुराणम्' जो पहले हुआ हो उसे पुराण कहा जाता है। किन्तु यास्क इसका निर्वचन एक दूसरे प्रकार से करते हैं - 'पुरा नवम् भवति' अर्थात् प्राचीन होते हुए भी जो नवीन होता है तात्पर्य यह है कि प्राचीनता के साथ भी जिसमें नवीनता प्राप्त होती है।[2] वायुपुराण इसका निर्वचन एक दूसरे प्रकार से ही

1- पुराणन्याय मीमांसा धर्मशास्त्रांगमिश्रिताः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥
- याज्ञवल्क्य स्मृति प्रस्तावना (श्लोक सं0- 3)

2- यास्क - निरुक्त 3/19

करता है –' पुरा अनति' जो पुराकाल में प्राणवान् था।[1] किन्तु पद्मपुराण पुराण शब्द का निर्वचन सर्वथा भिन्न प्रकार से करता है तदनुसार 'पुरा परम्परां वष्टि कामयते' अर्थात् जो प्राचीनता अर्थात् प्राचीन परम्परा की कामना करता है, वह पुराण कहलाता है।[2]

ब्रह्माण्डपुराण के अनुसार पुराण शब्द का निर्वचन कुछ भिन्न है अर्थात् 'पुरा एतत् अभूत्' प्राचीनकाल में यह था।[3] कुछ लोग पुरा नवम् अभूत्' के अनुसार कहते हैं कि जो प्राचीनकाल में भी नया था।

<u>पुराण लक्षण :–</u>

जैसे संस्कृत-साहित्य में 'काव्येषु माघः कवि कालिदासः' यह उक्ति अति प्रसिद्ध और सर्वमान्य है उसी प्रकार पुराणों के सम्बन्ध में 'पुराणं पंचलक्षणम्' यह कथन अति प्रसिद्ध है। यह कहा जाता है कि जहाँ निम्नांकित पाँच लक्षण प्राप्त होते हैं उसे 'पुराण कहा जाता है।[4]

1- यस्मात् पुरा ह्यनतीदम् पुराणं तेन तत् स्मृतम् निरुक्तमस्य यो वेद सर्वं पापैः प्रमुच्यते। —— वायुपुराण 1-203

2- पुरा परम्परांवष्टि पुराणं तेन तत् स्मृतम्।

— पद्मपुराण 5-2-53

3- यस्मात् पुराह्यभूच्चैतत् पुराणं तेन तत् स्मृतम्।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते।।

4- सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंच लक्षणम्।।

(1) सर्ग

(2) प्रतिसर्ग

(3) वंश

(4) मन्वन्तर

(5) वंशानुचरित

सर्ग, सृष्टि का पर्याय है। जहाँ जगत् उत्पत्ति का वर्णन होता है उसे ही पुराण की भाषा में सर्ग या सृष्टि कहा जाता है। यह सृष्टि त्रिगुणात्मक है। प्रतिसर्ग, सर्ग का विलोम है जिसमें सर्ग अर्थात् सृष्टि का प्रलय वर्णित हो वह प्रतिसर्ग कहा जाता है। वंश का अर्थ प्रस्तुत कहा जाता है। वंश का अर्थ प्रस्तुत अवसर पर भूतकाल के तथा भविष्य और वर्तमान काल के राजाओंकी वंश परम्परा से है। मन्वन्तर कालवाची शब्द है। मन्वन्तर 14 होते हैंजिनकी अलग-अलग विशिष्टतायें होती हैं। प्रत्येक मन्वन्तर का एक विशिष्ट मनु होता है। वंशानुचरित से यहाँ तात्पर्य मूल राजवंश परिवारों के वंशवर्णन से है। श्रीमद्भागवत महापुराण में कहा गया है किप्राचीन वंशधर राजाओं का वंश चरित पुराणों में वर्णित है।[1] कौटिल्य विरचित अर्थशास्त्र की प्रसिद्ध टीका जयमंगला का कथन है कि ब्राह्मणों ने सृष्टि, प्रवृत्ति, संहार धर्म और मोक्ष के प्रयोजनों वाले पुराण के अंत पांच लक्षण बतलाये हैं।[2]

1- वंशानुचरितम् तेषाम् वृत्तं वंशधराश्च ये। — श्रीमद्भागवत 12/7/15

2- सृष्टि प्रवृत्ति संहार धर्म मोक्ष प्रयोजनम्।
ब्रह्मभिर्विविधैः प्रोक्तम् पुराणं पंच लक्षणम्॥

किन्तु श्रीमद्भागवत पुराण में पुराणों के दश लक्षण भी बतलाये गये हैंजो 'पुराणम् पंचलक्षणम्' के उपर्युक्त विषय वस्तु से समानता रखते हैं। तदनुसार पुराणों के दश लक्षण निम्नांकित हैं – सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, वंश, वंशानुचरित, संस्था, हेतु, अपाश्रय। यहाँ भी सर्ग सृष्टि का पर्याय है। और विसर्ग का अर्थ विविध सृष्टि है, वृत्ति का अर्थ जीविका है, रक्षा के अन्तर्गत सृष्टि की रक्षा हेतु ईश्वर के अवतार की कथा है, अन्तराणि से तात्पर्य मन्वन्तर है। वंश और वंशानुचरित का अर्थ तद्वैव है संस्था का अर्थ प्रतिसर्ग प्रतीत होता है। हेतु कारण का पर्याय है, यहाँ इसका अभिप्राय जीवों के जन्म केहेतु या कारण पर प्रकाश डालना है। अपाश्रय का अर्थ ब्रह्म है क्योंकि सभी का आश्रय ब्रह्म है। इस प्रकार यह पुराणों के दश लक्षण हैं।

पुराणों का प्रतिपाद्य विषय :-

पुराणों का प्रतिपाद्य विषय 'पुराणं पंच लक्षणम्' ही है जिसके अन्तर्गत सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश मन्वन्तर तथा वंशानुचरित आदि समाहित हैं। पुराणों के अनुसार सृष्टि नव प्रकार की होती है जो निम्नांकित 3 प्रकार के सर्गों के अन्तर्गत है (1) प्राकृत सर्ग (2) वैकृत सर्ग (3) प्राकृत ~~तथा~~ वैकृत सर्ग।

1- सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च, वृत्ती रक्षान्तराणि च।
वंशो वंशानुचरितम् संस्था हेतुरपाश्रयः॥- — श्रीमद्भागवत, 12/7/9

प्राकृत सर्ग के अन्तर्गत ब्रह्मसर्ग, भूतसर्ग और वैकारिक सर्ग आते हैं। महत् तत्व (बुद्धि तत्व) के सर्ग को ब्रह्मसर्ग कहते हैं। महत् तत्व ब्रह्मा की प्रथम सृष्टि है सांख्य कौमुदी में कहा गया है कि सर्वप्रथम प्रकृति से महत् तत्व का प्रसव होता है। पंच तन्मात्राओं की सृष्टि को भूतसर्ग कहते हैं। सूक्ष्म शरीर या इन्द्रियों की सृष्टि को पुराणों में वैकारिक सर्ग के नाम से जाना जाता है।

पुराणों के अनुसार वैकृत सर्ग पांच प्रकार का है –(1) मुख्य सर्ग जिसे अविद्या या अज्ञान सर्ग कहते हैं। इसके अन्तर्गत जड़ अथवा स्थावर सृष्टि आती है – तरु लता तृण और पर्वतादि की मुख्यता के कारण ही इसे मुख्य सर्ग कहा जाता है। इसके बाद (2) तिर्यक् सर्ग हुआ जो जंगम सृष्टि का प्रथमोदय था। (3) इसके पश्चात् देवसर्ग का वर्णन है जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि ब्रह्मा ने स्वान्तः सुखाय ऊर्ध्वलोक निवासी देवगणों की रचना की जो पुण्यशाली और प्रकाशवान होते थे। पुरुषार्थ की सिद्धि के लिए ब्रह्मा ने (4) मानुष सर्ग अर्थात् मनुष्यों की रचना की जो भूतलनिवासी जीव थे। ये त्रिगुणात्मक अर्थात् सत्व, रज और तमोगुण वाले होते हैं। ये भोग और अपवर्ग रूप पुरुषार्थ को प्राप्त करने वाले बतलाये गये हैं। (5) पंचम अनुग्रह सर्ग है। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार अनुग्रह सर्ग चार

1- प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारस्तस्माद् गुणश्च षोडशकः।

तस्मादपि षोडशकात् पंचभ्यः पंचभूतानि॥

— सांख्यकौमुदी 6

प्रकार से व्यवस्थित है (1)विपर्यय (2) सिद्धि (3)शक्ति (4)तुष्टि। पुराण के अनुसार विपर्यय स्थावर में रहता है शक्ति तिर्यग्योनि में रहती है, सिद्धि मनुष्यों में और तुष्टि देवों में रहती है।[1]

(3) प्राकृत वैकृत सर्ग –

इसके अन्तर्गत कौमार सर्ग का वर्णन किया जाता है, कौमार सर्ग से सनत्कुमारों की सृष्टि का संकेत प्रतीत होता है। श्रीमद्भागवत पुराण में कौमार सर्ग का उल्लेख प्राप्त होता है जिसमें कहा गया है कि ब्रह्मा ने दुश्चर अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया तत्पश्चात् उन्होंने कौमार सर्ग का शुभारंभ किया है।[2] सनत्कुमारों का यह सर्ग प्राकृत वैकृत उभयात्मक है।

इसके अतिरिक्त प्राणियों में असुर, सुर, पितर तथा मनुष्य आदि की सृष्टि का सुन्दर वर्णन पुराणों में प्राप्त होता है। पुराणों के अनुसार असुरों की उत्पत्ति ब्रह्मा के तमोगुणात्मक शरीर जंघा द्वारा होती है, उसी के सत्वगुण प्रधान मुख से सुरों की और रजोगुण प्रधान देह से मनुष्यों की सृष्टि हुई, इसलिए असुरों का सम्बन्ध रात्रि से, सुरों का सम्बन्ध दिन से और मनुष्यों का सम्बन्ध प्रभात से जोड़ा जाता है।

1- पंचमोऽनुग्रहः सर्गश्चतुर्धा स व्यवस्थितः।
विपर्ययेण शक्त्या च तुष्ट्या सिद्ध्या तथैव च॥ – मार्कण्डेयपुराण 47/28

2- स एव प्रथमं देवः कौमारं सर्गमास्थितः।
चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यम् अखण्डितम्॥ – श्रीमद्भागवत, 1/3/6

यद्यपि पुराणों का वर्ण्य विषय मुख्य रूप से पंचलक्षण या दश लक्षण कहा जाता है किन्तु सभी पुराणों में —'पुराणम् पंचलक्षणम्' या 'पुराणं दश लक्षणम्' इत्यादि वचनों में सन्निहित भावना का दृढ़ता के साथ पालन नहीं किया गया है। पुराणों के प्रतिपाद्य विषयों में पंच लक्षणों केअतिरिक्त इनमें विविध आख्यान, उपाख्यान, गाथा, राजवंशावली इत्यादि विषयों का भी समावेश दिखाई देता है।

किन्तु परवर्तीकाल में जब वैष्णव, शैव और शाक्त आदि अनेक सम्प्रदायों का उदय हुआ तो सम्प्रदायवादी विद्वानों ने अपने अपने सम्प्रदायों के विचारों और सिद्धान्तों के प्रचारार्थ तदनुरूप पुराणों में विषयवस्तु बढ़ा दी। फल - स्वरूप वैष्णव पुराणों में विष्णु की पूजा और प्रधानता शैव पुराणों में शिव की प्रधा - नता तथा शाक्त पुराणों में शक्ति की प्रधानता का प्रतिपादन प्राप्त होता है।

पुराणों की संख्या :-

प्राचीनकाल से ही पुराणों की संख्या अष्टादश मानी जाती है। अष्टादश पुराणों में व्यास के दो वचन स्मरणीय हैं और वे हैं (1) परोपकारः पुण्याय (2) पापाय परपीडनम्।'[1]

1- अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।
— प्राचीन श्लोक

मत्स्यपुराण 53-70 में अष्टादश पुराणों के विवेचित होने का उल्लेख प्राप्त होता है।[1] इसी प्रकार पद्मपुराण भी अष्टादशपुराणों के विद्यमान होने का संकेत देता है।[2] स्कन्दपुराण में अष्टादश पुराणों के होने की चर्चा है।[3] मत्स्यपुराण में सत्यवती पुत्र वेदव्यास के अष्टादश पुराणों के प्रणेता के रूप में स्मरण किया गया है।

अतः इस विषय में प्राचीन-परम्परा और विद्वानों में मतभेद नहीं है कि पुराणों की संख्या 18 ही है। देवी भागवत के प्रथम स्कन्ध तीसरे अध्याय के 21 वें श्लोक में अष्टादश पुराणों के नाम का सांकेतिक उल्लेख किया गया है।

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयम् व चतुष्टयम्।
अनापद् लिंगकूस्कानि पुराणानि पृथक् पृथक्॥

जिसका तात्पर्य निम्नांकित है —

मकारादि वाले दो पुराण हैं। मत्स्य, मार्कण्डेय, भकारादि वाले भी दो पुराण हैं — भागवतपुराण, भविष्यपुराण, 'ब्रत्रयम्' तीन पुराण 'ब्र' शब्द से प्रारम्भ होते हैं — ब्रह्मपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण। 'व चतुष्टयम्'

1- अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवती-सुतः। — मत्स्यपुराण 53-70

2- अष्टादशपुराणानां वक्ता तु भवेन्मनुः। — पद्मपुराण पातालखण्ड, 111-98

3- अष्टादशपुराणेषु दशभिः गीयते शिवः। — स्कन्दपुराण केदारखण्ड अध्याय।

4- अष्टादशपुराणानि कृत्वा सत्यवती सुतः। — म0पु023

चार पुराण व शब्द से प्रारम्भ होते हैं, वामन पुराण, विष्णुपुराण, वायुपुराण वाराहपुराण, 'अनापदलिंगकूक' अर्थात् अ से प्रारम्भ होने वाला अग्निपुराण, न से प्रारम्भ होने वाला नारद पुराण, 'प' से प्रारम्भ होने वाला पद्मपुराण 'ल' वर्ण से प्रारम्भ होने वाला लिंग पुराण, 'ग' वर्ण से प्रारम्भ होने वाला गरुड़ - पुराण कु वर्ण से प्रारम्भ होने वाला कूर्म पुराण तथा स्क वर्ण से प्रारम्भ होने वाला स्कन्दपुराण। इस प्रकार कुल अठारह पुराण है जिनकी क्रमवार तालिका निम्नवत है —

(1) ब्रह्मपुराण

(2) पद्मपुराण

(3) विष्णुपुराण

(4) शिवपुराण

(5) भागवतपुराण

(6) नारदीय पुराण

(7) मारकण्डेयपुराण

(8) अग्निपुराण

(9) भविष्यपुराण

(10) ब्रह्मवैवर्तपुराण

(11) लिंगपुराण

(12) वराहपुराण

(13) स्कन्दपुराण

(14) वामनपुराण

(15) कूर्म पुराण

(16) मत्स्यपुराण

(17) गरुड़पुराण

(18) ब्रह्माण्डपुराण

आचार्य प्रवर बलदेव उपाध्याय का कथन कि पुराणों की अष्टादश संख्या साभिप्राय है परम्परा से अष्टादश संख्या पवित्र मानी जाती है इसीलिए शायद महाभारत में 18 पर्व है, गीता ग्रन्थ में 18 अध्याय हैं अतएव पुराण भी अठारह हैं।[1] यद्यपि विभिन्न पुराणों और विद्वानों में पुराणों के क्रम में मत-मतान्तर है किन्तु पुराणों की 18 संख्या में मतभेद नहीं है।

वर्गीकरण –

पुराणों का वर्गीकरण निम्नांकित रूप से 3 प्रकार से किया जा सकता है —

(1) सम्प्रदायवादी पुराण

(2) तीनगुणों (सत्व, रज और तमोगुण) के अनुसार पुराण

(3) वर्ण्य विषयवस्तु के अनुसार पुराण

उपर्युक्त अष्टादश पुराणों में विभिन्न देवी और देवताओं के चरित्र का वर्णन किया गया है जिससे अनेक देवतावादी सम्प्रदाय हमारे समक्ष उपस्थित

1- पुरा० विमर्श, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ०सं०81, चौखम्बा प्रथम संस्करण।

होते हैं- यथा शैव सम्प्रदाय, वैष्णव सम्प्रदाय और शाक्त सम्प्रदाय आदि।

तदनुसार सम्प्रदायोंके अनुसार पुराणों का विभाजन निम्नवत् हो सकता है —

(1) शैव पुराण -

(1) शिव

(2) भविष्य

(3) लिंग

(4) मार्कण्डेय

(5) वाराह

(6) स्कन्द

(7) मत्स्य

(8) कूर्म

(9) वामन

(10) ब्रह्माण्ड

(2) ब्रह्मपुराण —

(1) ब्रह्मवैवर्त

(2) ब्रह्म

(3) ब्रह्माण्ड

(4) पद्म

(3) वैष्णवपुराण -

(1) विष्णु

(2) भागवत

(4) शाक्तपुराण – देवी भागवत।

स्कन्दपुराण के कथनानुसार अष्टादश पुराणों में दश में शिव, चार में ब्रह्म, दो पुराणों में शक्ति और दो पुराणों में विष्णु प्रधान देवता के रूप में वर्णित है।[1]

(2) त्रिगुणादि के अनुसार पुराण :

पद्मपुराण उत्तरखण्ड 263-81-84 के अनुसार सत्वगुण रजोगुण और तमोगुण के आधार पर भी पुराणों का वर्गीकरण किया जा सकता है। इस प्रकार तीनों गुणों के आधार पर छः-छः संख्या के अनुसार अष्टादश पुराणों का विभाजन किया जाता है।

(1) सत्वगुण प्रधान पुराण – 6

(2) राजस् गुण प्रधान पुराण – 6

(3) तामस् गुण प्रधान पुराण – 6

1- अष्टादश पुराणेषु दशभिः गीयते शिवः।
चतुर्भिः भगवान् ब्रह्मा द्वाभ्यां देवी तथा हरिः॥
— स्कन्दपुराण केदारखंड, अ0।

विष्णु, नारद, भागवत, गरुड, पद्म और वाराह सत्वगुण प्रधान पुराण हैं। इसी प्रकार ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन और ब्रह्म राजस् पुराण हैं तथा मत्स्य, कूर्म लिंग, शिव, स्कन्द और अग्नि तामस् पुराण हैं।

इस सम्बन्ध में पद्मपुराण का कथन है कि सात्विक पुराण मोक्ष देने वाले, राजस् पुराण शुभ स्वर्ग लोकादि प्रदान करने वाले हैं और तामस् पुराण नरकादि लोक प्रदान करने वाले हैं।[1]

(3) वर्ण्यविषयानुसार पुराण विभाजन :-

वर्णित विषय सामग्री के अनुसार पुराणों का विभाजन भी आधुनिक विद्वान् मानते हैं। डा०पुसाल्कर ने कहा है[2] कि कुछ पुराणों में साहित्यिक सामग्री की प्रधानता है कुछ में तीर्थव्रतादि की प्रधानता है कुछ में इतिहास की प्रधानता तथा कुछ में साम्प्रदायिक साहित्य की प्रधानता है। किन्तु सम्प्रदायों के आधार पर किया गया वर्गीकरण अधिक प्रचलित है। शैव और वैष्णव आदि सम्प्रदायों के अनु - सार किया गया वर्गीकरण ही विद्वत्समाज में अधिक प्रचलित है।

1- सात्विकाः मोक्षदाः प्रोक्ताः राजसाः स्वर्गदाः शुभाः

तथैव तामसाः देवि, निरय प्राप्ति हेतवः॥ —

— पद्मपुराण, उ०ख० 263-85

2- पुसाल्कर : कल्याण, हिन्दू संस्कृति अंक, वर्ष 24, 1950, पृ० 550

पुराणों की विस्तृत रूपरेखा –

भारतीय मनीषा की चिन्तन-परम्परा में और भारतीय वाङ्मय में पुराण साहित्य अनुचिन्तन की सतत चलने वाली क्रिया की चरम परिणति है। विद्वानों ने पुराणों की संस्कृत वाङ्मय के आकर ग्रन्थों के रूप में प्रशंसा की है। इन्हें विश्वकोष भी कहा जाता है क्योंकि प्राचीन भारतीय विद्यायें इनमें सुरक्षित हैं। पुराणों में विविध प्रकार की सामग्री संकलित है। पुराण का विषय-वैविध्य अन्य किसी साहित्य में उपलब्ध नहीं है। विश्व-साहित्य में पुराणों के समानधर्मा ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होते।

पुराणों की वर्णन शैली –

पुराणों की वर्णन शैली अतिशयोक्तिपूर्ण तथा अतिरंजित है। इस लिए कतिपय विद्वान् पौराणिक वर्णनों को मात्र कविकल्पना कह देते हैं। किन्तु उनका उक्त कथन भ्रमात्मक है। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य प्रवर बलदेव उपाध्याय का कथन है कि 'पुराण के तथ्यों में आपाततः यथार्थता आभा - सित न होने पर भी उनके मूल में अन्तरंग में यथार्थता विराजती है, परन्तु इसके लिए चाहिए उनके प्रति सहानुभूति, बहिरंग को हटाकर अन्तरंग को पहि - चानने का प्रयास।[1] पुराणों में कहा गया है कि कलियुग में शूद्रों का महत्व रहेगा,

---

1- पुराण विमर्श वक्तव्य : बलदेव उपाध्याय, पृ0सं0 1 से 2, चौखम्बा विद्याभवन 1965 संस्करण

इसका मौलिक तात्पर्य यह है कि चातुर्वर्ण्य परम्परा बनी रहने पर भी शूद्रों की प्रधानता रहेगी। शूद्र का कार्य सेवा करना है और आजकल सेवा करने वाले राज - कीय पदों पर प्रतिष्ठित जनों का अतिशय महत्व है। यह इस दृष्टि से 'शूद्रयुग' ही है। यदि ध्यान से देखा जाय तो सम्प्रति संसार में 'राजा' दिखाई नहीं देते, बड़े - बड़े अधिकारी, मंत्री इत्यादि अपने को राष्ट्र या जनता-जनार्दन का सेवक ही मानते हैं। इस प्रकार यदि वेदों की शैली रूपक प्रधान है तो पुराणों की शैली अतिशयोक्ति-प्रधान है। शैली भेद तथा वर्णन भेद हो सकता है किन्तु तथ्यात्मक भेद नहीं हो सकता।

कुछ विद्वानों का यह कथन कि पुराणों के वर्णन में जो अतिशयो - क्ति और अतिरंजना प्राप्त होती है उससे उनके वर्णन और कथन कपोलकल्पना मात्र प्रतीत होते हैं, सत्य प्रतीत नहीं होते। जैसे कोई महाकवि किसी प्रतिपाद्य विषय-वस्तु के वर्णन में वक्रोक्ति ध्वनि और अलंकारों का सहारा लेता है और सपाट-बयानी नहीं करता, किन्तु उनके प्रतिपाद्य विषय-वस्तु वर्णन तथा तथ्यात्मक वर्णन में अन्तर नहीं पड़ता उसी प्रकार पुराणों की अतिशयोक्ति प्रधान वर्णन शैली में तथ्यात्मकता के अन्वेषण करते समय पाठक को कोई कठिनाई प्रतीत नहीं होनी चाहिए। इन्द्र और वृत्रासुर संग्राम में वृत्रासुर का राजा के रूप में अतिरंजित वर्णन और पुराणों में करोड़ों गायों के दान का अतिशयोक्ति प्रधान वर्णन उक्त शैली के सन्दर्भ में समझने का प्रयास करना चाहिए और पुराणों के वर्णन को कपोल- कल्पना मात्र नहीं समझना चाहिए। वही लोग पुराणों के अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन पर अवि - श्वास प्रकट करते हैं जिन्हें पुराणों की उक्त वर्णन पद्धति का रहस्य विदित नहीं है।

इस प्रकार पुराणों की महत्ता स्वतः सिद्ध है। पुराण संस्कृत वाङ्मय के आकर ग्रन्थ हैं। इनमें प्राचीन विद्याओं का संग्रह और संरक्षण किया गया है इसलिए इन्हें विश्वकोष माना जाता है। पुराणों में वेदों का समुपबृंहण वैदिक आख्यानों का पौराणिक वर्णन, वैदिक आख्यानों का पौराणिक वर्णन, वैदिक प्रतीकों की पौराणिक व्याख्या, पुराणों में अवतार तत्व विवेचन, सृष्टि तत्व विवेचन, धर्मशास्त्रीय विषय-वस्तु वर्णन, आयुर्वेद धनुर्विद्या इत्यादि विज्ञान वर्णन, पौराणिक वंशावली, पौराणिक भूगोल, इतिहास, भक्ति तत्व विवेचन, विभिन्न सम्प्रदायों का संरक्षण आदि विषय वैविध्य के कारण विश्ववाङ्मय में पुराणों का अतिशय महत्व है।

स्कन्दपुराण के रेवाखण्ड 1-17-18-22 तथा 23 में पुराणों की प्रशस्ति पर प्रकाश डाला गया है। तदनुसार सभी वेद पुराणों में प्रतिष्ठित हैं, इसमें सन्देह नहीं है। वेदों की आत्मा पुराण हैं और वेदांग तो पृथक्-पृथक् संख्या में घट् हैं।

जो वेद में दृष्ट नहीं है वह स्मृतियों के द्वारा दृष्ट है और जो दोनों से दृष्ट नहीं है वह पुराणों में गाया जाता है, किम्बहुना, पुराण को ब्रह्मा ने सभी शास्त्रों में प्रथम स्मरण किया है। किंवा, पुराण तो पंचम वेद है।[1]

1- पुराणं पंचमो वेद इति ब्रह्मानुशासनम्।
वेदाः प्रतिष्ठिता सर्वे पुराणे नात्र संशयः।
आत्मा पुराणं वेदानां पृथगंगानि तानि षट्।
यन्न दृष्टं हि वेदेषु तद् दृष्टं स्मृतिभिः किल।
उभाभ्यां यन्न दृष्टं तत् पुराणेषु गीयते।
पुराणं सर्व शास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्॥— स्कन्द, रेवाखण्ड, 1-17-18-22 23

जिस प्रकार गंगा के जल में अवगाहन - विगाहन से पापों से निवृत्ति हो जाती है और पवित्रता की प्राप्ति होती है उसी प्रकार पुराणों के श्रवण से दुरितक्षय होता है।[1] किम्बहुना नारदीय पुराण का कथन है कि जो 18 पुराणों का विधि-विधान पूर्वक कथन अथवा श्रवण करता है वह जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है अर्थात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता है।[2]

शिव पार्वती से कहते हैं कि हे सुमुखि, मैं पुराणार्थ को वेदार्थ से श्रेष्ठ मानता हूँ। पुराण में सभी वेद प्रतिष्ठित हैं।[3]

इस प्रकार यह कथन सन्देहातीत है कि पुराणों में भारतीय प्राचीन विद्या संरक्षित और सुरक्षित रही है। भारतीय धर्म, दर्शन, सामाजिक जीवन, संस्कृति, इतिहास तथा भारतीय आस्था और विश्वास इन ग्रन्थों में प्रतिबिम्बित हो रहे हैं। आज समुपलब्ध परवर्ती साहित्य और कला पुराणों से अन्तरंग और बहिरंग रूप से इतने प्रभावित हैं जिन्हें कोई भी पाठक परवर्ती कृतियों को पढ़कर समझ सकता है। किसी परवर्ती कृति को पुराणों ने यदि कथावस्तु की सहायता प्रदान की तो अन्य कृतियों को इन्होंने तत्कालीन मानव धर्म, संस्कृति और

1- यथा पापानि पूयन्ते गंगावारि विगाहनात्।
तथा पुराण श्रवणात् दुरितानां विनाशनम्॥ — वामनपुराण, 95/86

2- अष्टादशपुराणानि यः शृणोति नरोत्तमः
कथयेद्वा विधानेन नेह भूयः स जायते॥ — ना0पु0, 61-62

3- वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने।
वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः॥ — ना0पु0, 2/24/17

सामाजिक जीवन दर्शन का रहस्य समझने का सुअवसर दिया है। किंबहुना, कालि - दास, भारवि, माघ, भट्टनारायण और बाणभट्ट आदि अनेक परवर्ती कवियों ने पुराणोंसे विविध प्रकार की सामग्री लेकर अपनी अपनी कृतियों को पूर्ण कर पुराणों के प्रति अपना आभार स्वीकार किया है। कादम्बरी में जाबालि आश्रम वर्णन के प्रसंग में बाणभट्ट कहते हैं कि वायु प्रलाप पुराणों में होता था जाबालि आश्रम में नहीं।[1] वहीं राजा तारापीड के राजकुल वर्णन के प्रसंग में कहते हैं कि विभागों के अनुसार अवस्थापित सकल भुवनों के कोश वाले पुराणों की तरह वह राजकुल था।[2] इस प्रकार परवर्ती साहित्य के लिए पुराणों का अतिशय योगदान है।

पुराणों के रचयिता :-

पुराणों के रचयिता के सम्बन्ध में अनेक मत-मतान्तर प्राप्त हैं। मत्स्यपुराण के अनुसार ब्रह्मा ने पुराणों की रचना सर्वप्रथम की थी।[3] किन्तु प्रारंभ में पुराणों का यह उदय 'विद्या' के रूप में होना प्रतीत होता है। यागादि कर्म की दृष्टि से जब वेदव्यास ने वेदों के यथावत् विभाजन का कार्य सम्पादित किया

1- पुराणेषु वायु प्रलपितम् — कादम्बरी पूर्वार्द्ध, (जाबालि आश्रम वर्णन)

2- पुराणमिव यथाविभागावस्थापित सकल भुवनकोशम् — कादम्बरी पूर्वार्द्ध, (तारापीड राजकुल वर्णन)

3- पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्। — मत्स्यपुराण, अ0 53-3

तभी व्यास ने 'पुराण-संहिता' का भी प्रणयन किया। प्रायः सभी पुराणों का सामान्य मत है कि पुराणों के रचयिता महामति वेदव्यास हैं, जिनके पिता महर्षि 'पराशर' और माता 'सत्यवती' हैं। वायुपुराण में कहा गया है कि सत्यवती के हृदय को आनन्दित करने वाले पराशर पुत्र 'वेदव्यास' सर्वोत्कृष्ट हैं जिनके मुखरूपी कमलकोश में स्थित वाङ्मयरूपी अमृत को सम्पूर्ण विश्व पान कर रहा है।[1] महाभारत का अभिमत है कि महामति वेदव्यास चतुरानन न होते हुए भी ब्रह्मा हैं, चतुर्भुज न होते हुए भी दो बाहु वाले दूसरे हरि हैं और त्रिलोचन न होते हुए भी शम्भु हैं।[2]

स्कन्दपुराण का कथन है कि हरि स्वयं व्यास के रूप में प्रतियुग में अवतार लेकर अष्टादश पुराणों की रचना करते हैं।[3] इसी प्रकार पद्मपुराण और मत्स्यपुराण के अनुसार पुराणों के रचयिता वेदव्यास हैं।[4] किन्तु पुराणों के

1- जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः।
यस्यास्य कमलकोशे वाङ्मयममृतं जगत्पिबति॥ — वा0पु0 1-2

2- अचतुर्वदनो ब्रह्मा, द्विबाहुरपरो हरिः।
अभाललोचनः शम्भुर्भगवान् बादरायणः॥— महाभारत आदिपर्व

3- व्यासरूपं विभुं कृत्वा संहरेत् स युगे-युगे।
तदाष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रकाशते॥ — स्कन्दपुराण, रे03-1-23-30

4- अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवती सुतः। — मत्स्यपुराण, 53-70

ही कतिपय उद्धरणों से यह प्रतीत होता है कि पुराणों के एकमात्र रचयिता वेद-व्यास नहीं है।

विष्णु पुराण के अनुसार यह विदित होता है कि प्रत्येक द्वापर में विष्णु व्यास के रूप में अवतरित होते हैं और एक वेद को चार भागों में विभाजित करते हैं और वही लोकहित के लिए पुराणों की भी रचना करते हैं।[1] यही नहीं मन्दमति और अल्पायु जानकर कलियुग में लोकहितार्थ वे पुराणसंहिता का प्रणयन करते हैं।[2] इन उल्लेखों से यह प्रतीत होता है कि व्यास किसी एक ही व्यक्ति की संज्ञा नहीं थी। प्रत्युत एक व्यास परम्परा रही है। संभवतः व्यास एक पद का नाम था और इस पद का अधिकारी प्रत्येक द्वापर युग में उत्पन्न होकर एक वेद को चार भागों में तथा एक पुराण को अष्टादश भागों में विभाजित करता था, वेदों का व्यसन अर्थात् विभाजन करने के कारण इसे वेदव्यास कहा जाता था।[3] इसलिए विद्वानों का कथन है कि व्यास एक नहीं अनेक थे। व्यासों की परम्परा में 27 व्यासों के नाम विष्णुपुराण में प्राप्त होते हैं। यद्यपि यह बात सत्य प्रतीत होती

1- द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपी महामुने।
वेदमेकं सुबहुधा कुरुते जगतो हितः ॥ — वि0पु0, 3/3/5

2- अल्पायुषोऽल्पबुद्धींश्च विप्रान् ज्ञात्वा कलावथ।
पुराणसंहितां पुण्यां कुरुतेऽसौ युगे-युगे॥ — दे0भा0 1-3

3- पुराण विमर्श, पृ063, बलदेव उपाध्याय।

है लेकिन किसी अन्य व्यास के व्यक्तिगत नाम से किसी पुराण का कर्तृत्व वैसा उपलब्ध नहीं होता जैसा कृष्णद्वैपायन, पराशरात्मज सत्यवती हृदयनन्दन वेद - व्यास के नाम से पुराणों का कर्तृत्व विश्वविश्रुत है। कुछ भी हो लोकपरम्परा के समक्ष सभी नतमस्तक हैं जो कृष्णद्वैपायन वेदव्यास को ही प्रायः पुराणों का रचनाकार मानती है। इनकी वंशपरम्परा महाभारत आदिपर्व तथा पुराणों में सविस्तर प्राप्त होती है -

ब्रह्मा

वशिष्ठ

शक्ति

पराशर

कृष्णद्वैपायन वेदव्यास

शुकदेव

प्रस्तुत अध्ययन के विषयीभूत पुराणों का परिचय -

ब्रह्मपुराण -

अष्टादश पुराणों के क्रम के सम्बन्ध में विद्वज्जनों में यद्यपि वैमत्य है और उनके क्रम का अर्थात् पौर्वापर्य का कोई ऐतिहासिक कारण भी बहुत

1- जयति पराशरसूनुः सत्यवती हृदयनन्दनो व्यासः

यस्यास्य कमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत्पिबति॥

— वायु0पु01/2

स्पष्ट नहीं है। फिर भी पुराणों को जिस क्रम में रखने की परम्परा है उसका कारण विद्वानों के अनुसार वर्ण्य विषय प्रतीत होता है।[1] पुराण का प्रधान प्रतिपाद्य सर्ग अथवा सृष्टि है और इस सृष्टि का आदि और अन्त, कारण और कार्य रूप से ब्रह्म है अतः प्रथम ब्रह्मपुराण का परिचय संक्षेपरूप से प्रस्तुत है-

बृहन्नारदीय में कहा गया है कि महात्मा व्यास ने सर्वलोक हितार्थ सर्व प्रथम ब्रह्मपुराण का समाख्यान किया था, और यह सभी पुराणों का मौलि है तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देने वाला है। यह नाना प्रकार के आख्यान इतिहासादि को प्रकाशित करने वाला दससहस्र श्लोकों वाला है।[2]

ब्रह्मपुराण आदि ब्रह्मके नाम से भी विख्यात है। इसमें 245 अध्याय हैं और सम्प्रति इसमें 4000 श्लोक संख्या प्राप्त होती है। 'पुराणम् पंच - लक्षणम्' के अनुसार प्रायः इसमें सभी पुराणसम्मत विषय उपलब्ध होते हैं। सर्व-प्रथम नैमिषारण्य में मुनियों लोमहर्षण संवाद वर्णन, पश्चात् आदि सर्ग वर्णन, पृथु तथा वंश वर्णन तथा देवदानव उत्पत्ति का वर्णन है। इसी प्रकार सूर्यवंश व

1- पुराणविमर्श, बलदेव उपाध्याय, पृ0 87

2- ब्राह्मं पुराणं तत्रादौ सर्वलोकहिताय वै।
व्यासेन वेदविदुषा समाख्यातं महात्मना
तद्वैसर्वपुराणाग्र्यं धर्मकामार्थ मोक्षदम्।
नानाख्यानेतिहासाढ्यं दशसाहस्रमुच्यते।। - ब्रह्मपुराण, 4/93

सोमवंश का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। इसमें पार्वती आख्यान सविस्तर वर्णित है। पुरुवंश वर्णन प्रसंग में दुष्यन्त शकुन्तला आख्यान प्राप्त होता है। इसमें भुवन-कोशद्वीप वर्णन तथा उड़ीसा के कोणार्कतीर्थ का वर्णन किया गया है। संक्षेप में इसमें अवन्तिका पुरुषोत्तम क्षेत्र मार्कण्डेय, विष्णुलोक, हिमालय, वामन, गंगा, गौतमी, सगर, विविधतीर्थ श्रीकृष्णचरित, विविध अवतार, सांख्ययोग आदि विविध विषयों का वर्णन है।[1]

प्रस्तुत पुराण में देवमाता अदिति, सतीसुभद्रा और माता पार्वती के नारीरूप का इस शोध प्रबन्ध में विशेष अध्ययन करणीय है जो अग्रिम अध्यायमें प्रस्तुत किया जायगा।

पद्मपुराण :

यह एक विपुलकाय ग्रन्थ है। इसमें 55,000 श्लोक प्राप्त होते हैं। यह 'महाभारत' से लगभग आधा है। इसके दो संस्करण प्राप्त होते हैं-(1) देव - नागरी संस्करण और (2) बंगालीसंस्करण।

देवनागरी संस्करण में 6 खण्ड हैं जो निम्नांकित हैं -[2]

1- ब्रह्मपुराण : गुरुमण्डल प्रकाशन, कलकत्ता, संस्करण वि0सं0 2010

2- प्रथमं सृष्टिखण्डं हि, भूमिखण्डं द्वितीयकम्।
तृतीयं स्वर्गखण्डं च, पातालं च चतुर्थकम्।
पंचमं चोत्तरं खण्डं सर्वपाप प्रणाशनम्॥
— पद्मपुराण, भूमिखण्ड 125-48, 49

(1) आदिखण्ड

(2) भूमिखण्ड

(3) ब्रह्मखण्ड

(4) पातालखण्ड

(5) सृष्टिखण्ड

(6) उत्तरखण्ड

किन्तु पद्मपुराण के पर्यालोचन से प्रतीत होता है कि इसमें मूलतः 5 ही खण्ड थे और छठां खण्ड बाद में जोड़ा हुआ प्रतीत होता है।[1] तदनुसार प्रथम सृष्टिखण्डः द्वितीय भूमिखण्ड तृतीय स्वर्गखण्ड, चतुर्थ पातालखण्ड और पंचम उत्तरखंड। यह अवधेय है कि पद्मपुराण के बंगाली संस्करण में केवल पांच ही खण्ड प्राप्त होते हैं।

विषयवस्तु की दृष्टि से पद्मपुराण में खण्डशः निम्नांकित सामग्री का वर्णन प्राप्त होता है। सृष्टिखण्ड में देव, मुनि, पितर तथा मनुष्यों की सृष्टि पर प्रकाश डाला गया है और इसके पश्चात् नाना प्रकार के तीर्थों, पर्वतों, द्वीपों तथा सप्त सागरों का वर्णन किया गया है। तदनन्तर राजवंशानुकीर्तन, मोक्ष और साधनादि प्रतिपादन, समुद्रमंथन, वृत्रासुर संग्राम, वामनावतार, रामचरित, कार्ति-केय जन्म और तारकासुरवध कथा सविस्तर वर्णित है।

1- पद्मं तत्पंच पंचभिस्तु खण्डैर्युक्तं पठ्यते।।

— पद्मपु0 1-54-55

भूमिखण्ड में राजा पृथु जन्मकथा, ययाति और मातलि का अध्यात्म संवाद, महर्षि च्यवन कथा, शैव और वैष्णव भक्ति का समन्वय, शिव और विष्णु की एकता[1] तथा इस शोध प्रबन्ध में अध्ययन विषयीभूत सतीसुकला के उदात्त नारी रूप का वर्णन किया गया है। स्वर्गखण्ड में देव, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष आदि लोकों का सविस्तर वर्णन है। इसमें प्रसिद्ध शकुन्तलोपाख्यान है। संभवत कालिदास ने इसी से अपने विश्वविख्यात अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक के लिए कथावस्तु प्राप्त की थी क्योंकि इसमें वर्णित कथावस्तु और नाटक की कथावस्तु में साम्य है। महाभारत में उपलब्ध शाकुन्तलोपाख्यान इससे कुछ भिन्न है।

पातालखण्ड में नागलोक का सविस्तर वर्णन है, इसमें राम-रावणकथा भी प्राप्त होती है, रघुवंश और उत्तररामचरित की रामकथा संभवत यहीं से ली गई है, क्योंकि इनमें परस्पर साम्य है अथवा इन सबका कोई अन्य स्रोत रहा हो।

उत्तरखण्ड में विविध आख्यानों का संग्रह है, विष्णुभक्ति का प्रबल समर्थक होने के कारण यह वैष्णवसम्प्रदाय का जन्मदाता प्रतीत होता है। इसकी वर्णन शैलीउदात्त और प्रांजल है।

1- शैवं च वैष्णवं लोकमेकरूपं नरोत्तम।

द्वयोश्चाप्यन्तरं नास्ति एकरूपं महात्मनो॥

शिवाय विष्णुरूपाय विष्णवे शिवरूपिणे

शिवस्य हृदये विष्णुः विष्णोश्च हृदये शिवः ॥

— पद्मपुराण, भूमिखण्ड

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में इस पुराण में प्राप्त सती सुकला, रानी सुदेवा सुनीथा, देवी पद्मावती और दुष्यन्त पत्नी शकुन्तला के नारी जीवन के विशिष्ट रूपों का विशेष अध्ययन प्रस्तुत किया जायगा।

विष्णुपुराण —

पुराण साहित्य के मध्य विष्णुपुराण का अतिशय महत्व है। इसमें 'पुराणम् पंचलक्षणम्' का यथोचित निर्वाह किया गया है। जिस प्रकार श्रीमद्-भागवत पुराण वैष्णव पुराणों के मध्य भक्ति और दार्शनिक विषयों के विवेचन के लिए पंडित समाज में प्रसिद्ध है उसी प्रकार विष्णुपुराण भी वैष्णव भक्ति और दर्शन का प्रतिपादक सम्माननीय पुराण-रत्न है। यद्यपि इसका कलेवर श्रीमद्भागवत पुराण जैसा विपुल तो नहीं है परन्तु महत्व की दृष्टि से यह वैष्णव समाज में अत्यन्त आदरणीय है।

विष्णुपुराण अंशों में विभाजित है। इसमें कुल 6 अंश है तथा 126 अध्यायों में 23000 श्लोक उपलब्ध हैं।[1] किन्तु वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से जो विष्णु पुराण का संस्करण प्रकाशित हुआ है उसमें 6 अंश और 126 अध्यायों के साथ मात्र 6000 श्लोक प्राप्त होते हैं। इसमें अनेक अध्यायों में यत्र-तत्र गद्य भाग भी प्राप्त होता है। इसके कुछ अंश इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण माने जाते हैं। काणे

1- त्रयोविंशतिसाहस्रम् तत्प्रमाणं विदुर्नराः ॥

— वि0पु0 1-4

जैसे प्राच्यविद्या विशारद इस पुराण की रचना तिथि 300ई0 से 500ई0 के लगभग स्वीकार करना यथोचित मानते हैं।

विष्णुपुराण में शिव और विष्णु के मध्य अभेद तथा समन्वय स्थापित किया है। तदनुसार विष्णु के कथनानुसार मुझमेंऔर हर(शंकर) मेंकोई भेद नहीं है। अविद्या से मोहित दृष्टि वाले लोग ही हर और हरि में भेद समझते हैं, वस्तुतः भेद नहीं है।[1]

विष्णुपुराण के अन्तर्गत वर्णित नारीपात्र देवकी, कुब्जा, महारानी रुक्मिणी, पूतना और बाणासुर पुत्री ऊषा के नारी रूपों का इस शोध प्रबन्ध में विशेष अध्ययन प्रस्तुत किया जायगा।

मार्कण्डेय पुराण –

इसके प्रवक्ता मार्कण्डेय ऋषि हैं इसीलिएइसका नाम मार्कण्डेय ऋषि के नाम से अभिहित किया जाता है। वायु पुराण का कथन है कि मार्कण्डेय पुराण में मूल रूप से 9 हजार श्लोक थे।[2] नारद पुराण में भी इसी मत का समर्थनकिया गया है।[3] किन्तु सम्प्रति उपलब्ध संस्करण में 6 हजार 9सौ श्लोक ही उपलब्ध हैं।

1- योऽहं सत्वं जगच्चेदं सदेवासुर मानुषम्।
मत्तो नान्यदशेषं यत्, तत्त्वं ज्ञातुमिहार्हसि।
अविद्यामोहितात्मानः पुरुषा भिन्नदर्शिनः
वदन्ति भेदं पश्यन्ति, चावयोरन्तरं हर॥– वि0पु05-33-48-9

2- वायुपुराण, 104-4

3- नारद पुराण, 1-98-2

यह 137 अध्यायों में विभक्त है। बिब्लोथिका इण्डिकासीरीज कलकत्ता से 1905 में पार्जिटर महोदय ने इसका अनुवाद अंग्रेजी में किया था। पाश्चात्य विद्वान् इस पुराण की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं।

इसमें ऋषि प्रवर मार्कण्डेय ने शकुनिओं को सम्बोधित कर सर्वधर्म का निरूपण किया है। इसमें तीर्थयात्रा, द्रोपदेय की कथा, पवित्र हरिश्चन्द्र की कथा अनुसूया औरब्रह्म की देवी मदालसा की परमपावन प्रेरणाप्रद कथा का वर्णन प्राप्त होता है। मदालसा ने प्रारम्भ से ही अपने पुत्र अलर्क को ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया था। इसी पुराण में दुर्गासप्तशती का परमपवित्र आख्यान उपलब्ध होता है। इस पुराण में नाना विषयों के अतिरिक्त मार्तण्ड की जन्मकथा वैवस्वत, नरिष्यन्त, इक्ष्वाकु, तुलसी, रामचन्द्र, कुशवंश सोमवंश, पुरूरव, नहुष ययाति, यदुवंश, श्रीकृष्ण बालचरित, मथुराचरित, द्वारिकाचरित, सांख्यदर्शन, मार्कण्डेय-चरित पुराण माहात्म्य आदि महत्वपूर्ण विषयवस्तु का वर्णन प्राप्त होता है।

सर्वोपरि इस शोधप्रबन्ध में सती अनुसूया ब्रह्मवादिनी देवी मदालसा जगत्पूज्या नवदुर्गा और सती शाण्डली के नारी चरित पर विशेष प्रकाश डाला जायेगा। मार्कण्डेय पुराण के उपर्युक्त नारी पात्र इस शोध प्रबन्ध के विषयीभूत हैं।

हाजरा प्रभृति विद्वान् इसमें वर्णित विषयवस्तु के आधार पर इस पुराण का रचनाकाल 550 ई0 के लगभग मानते हैं।[1]

1- हाजरा — स्टडीज इन पुराणिक रिकर्ड्स, पृ0 9-13

देवीपुराण :-

देवीपुराण का दूसरा नाम देवी भागवत पुराण है। यह शाक्त - पुराण के नाम से भी विख्यात है। इस पुराण में शक्ति की प्रतिष्ठा सर्वोपरि बतलाई गई है और इसमें देवी-परिवार का सांगोपांग विवेचन प्राप्त होता है।

जैसा कि यह सर्वविदित है कि भारतीय धर्म की तीन शाखायें हैं और वे हैं शैव, वैष्णव और शाक्त। आध्यात्मिक दृष्टि से तीनों शाखाओं का समावेश और समन्वय एक आत्मतत्वमूलक धर्म में किया जाता है। किन्तु अपने-अपने सम्प्रदाय के अनुसार शिव, विष्णु और शक्ति की महत्ता बतलाई गयी है। देवी पुराण शाक्त पुराण है। इसमें पुराणों के पंचलक्षण रूप विषयों के अतिरिक्त शक्ति की महत्ता का प्रतिपादन विशेषरूप से किया गया है।

डा0आर0सी0हाजरा [1] के अनुसार देवी पुराण बंगाल की रचना है। बंगाल में अति प्राचीन काल से ही शक्ति पूजा के लिए विख्यात रहा है। इसके अतिरिक्त डा0हाजरा का कथन है कि देवी पुराण की समस्त पाण्डुलिपियाँ बंगाल में ही प्राप्त हुई हैं। इसके अतिरिक्त कामरूप और कामाख्या राधावर्धमान इत्यादि स्थानों के उल्लेख देवी पुराण मे प्राप्त होते हैं जिनसे प्रतीत होता है कि देवी - पुराण यह रचना बंगाल से सम्बन्धित है। तथा भाषा की दृष्टि से देवीपुराण के कतिपय अपाणिनीय प्रयोग बंगाली भाषा से अत्यधिक समानता रखते हैं, यथा -

---

1- पुराणम् - शोधपत्रिका, जुलाई 1962 वाल्यूम 4 नं0
काशिराज ट्रस्ट वाराणसी

सम्मत, किम्वा, उत्थ, विवमुत्सहते, जये इत्यादि।[1]

देवी पुराण में उसे महापुराण की संज्ञा दी गयी है। यह बारह स्कन्धों में विभाजित है। इसकी विषय-सामग्री विपुल है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अन्तर्गत देवी पुराण के कतिपय नारीपात्र यथा ~~[illegible]~~, वेदव्यासमाता सत्यवती, राजकुमारी शशिकला देवी गान्धारी देवी कुन्ती, सती उत्तरा, सती सुकन्या, सती शैव्या, भगवती सावित्री जगज्जननी सीता, महारानी द्रौपदी, इन्द्रकन्या जयन्ती, भगवती तुलसी आदि देवियों के संबंध में प्रकाश डाला जायगा।

<u>पुराणों के देश-काल :-</u>

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अध्ययन विषयीभूत पुराणों के देश और काल के सम्बन्ध में यद्यपि कुछ अधिक निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता लेकिन एक स्थूल रूप रेखा तो खींची ही जा सकती है -

भारतीय परम्परा के अनुसार महर्षि वेदव्यास ने ही पुराणों का प्रणयन किया था इसलिए पुराणों के रचनाकाल और स्थान में एकता है। परन्तु आधुनिक इतिहासकार और भाषावेत्ता इसे मानने से हिचकिचाते हैं।

---

1. पुराणम् काशिराज ट्रस्ट पत्रिका, आर0सी0हाजरा, जुलाई 1962 वाल्यूम नं0 4 नं0 2

तुलनात्मक अध्ययन और गवेषणात्मक शोध के पश्चात् आजरा प्रभृति विद्वान् पुराणों का एक कर्तृत्व तथा एक ही देश काल नहीं मानते। विभिन्न पुराण विभिन्न देशकाल और विभिन्न रचनाकारों की रचनायें हैं। अब अद्यावधि हुए अध्ययन के आधार पर इस विषय में सन्देह नहीं है। प्राचीनकाल में तीर्थ स्थानों और पवित्रनदियों के तट पर पुराणों की कथा सुनने की परम्परा रही है। तदनुसार[1] ब्रह्मपुराण की रचना उड़ीसा पद्मपुराण को रचना पुष्कर, विष्णुपुराण की रचना वैष्णव क्षेत्र मार्कण्डेय पुराण की रचना नर्मदा क्षेत्र और देवी पुराण की रचना बंगाल क्षेत्र में हुई होगी, ऐसा माना जा सकता है।[2]

पुराणों के रचनाकाल के सम्बन्ध में अब यह सुस्पष्ट हो गया है कि सभी पुराण किसी एक कालखण्ड की रचनायें नहीं हैं। पुराणों का आदि रूप निश्चय ही अधिक प्राचीन है किन्तु उपलब्ध पुराणों में ब्रह्मपुराण का रचनाकाल 12वीं शताब्दी माना जा सकता है।[3] इसी प्रकार पद्मपुराण का कुछ भाग गुप्तकाल या कालिदासोत्तर काल माना जा सकता है क्योंकि पद्मपुराण में प्राप्त शकुन्तलोपाख्यान कालिदास के शाकुन्तलम् नाटक से अत्यधिक साम्य रखता है। विष्णुपुराण का रचना-

---

1- दि पुराण : ए स्टडी इण्डियन हिस्टारिकल, क्वाटरली भाग 8 पृ0 174

2- हिस्टारिकल इम्पार्टेन्स आफ द पुराणाज, क्वार्टली, ज0आ0हि0रि सो0एस0 भीमशंकर राव, भाग 2 पृ0 80

3- बलदेव उपाध्याय, पुराण विमर्श, पृ0 539

काल अनेक अंतिम साक्ष्यों एवं परवर्ती रचनाकारों के उद्धरणों से प्रथम शताब्दी से तृतीय शताब्दी तक माना जाता है।[1] इसी प्रकार मार्कण्डेय पुराण का रचनाकाल 300 ई0 600 ई0 के मध्य विद्वानों को मान्य है, वैसे — भागवत पुराण मार्कण्डेय पुराण के बाद की रचना प्रतीत होता है। इस संबंध में डा0 हजारा बलदेव उपाध्याय, डा0हरिनारायण दुबे के शोध निबन्ध द्रष्टव्य हैं।

1- बलदेव उपाध्याय, पु0विमर्श, पृ0 545

द्वितीय अध्याय

वैदिक काल में नारी

द्वितीय अध्याय

वैदिककाल में नारी -

यद्यपि किसी भी मानव-समाज की सभ्यता का आकलन उस समाज में नारी की स्थिति अर्थात् उसके साथ किये गये सद्व्यवहार और दुर्व्यवहार से किया जाता है तथा जिस समाज में नारी को सम्मान, प्रतिष्ठा और श्रद्धा भावना से देखा जाता है, वह समाज सभ्य कहा जाने का अधिकारी माना जाता है। समाज-रूपी रथ को संचालित करने में पुरुष की भांति नारी भी रथ का दूसरा चक्र अर्थात् पहिया है। नारी के बिना मानव समाज की कल्पना असम्भव है फिर भी प्राचीन - वैदिक काल में जिस प्रकार देवताओं से पुत्र जन्म की प्रार्थना के प्रति उत्सुकता दृष्टि-गोचर होती है वैसी कन्या जन्म के प्रति नहीं। ऋग्वेद संहिता के अनेक स्थलों में पुत्र लाभ हेतु प्रार्थनायें प्राप्त होती हैं।[1] ऋषि प्रवर गोतम राहूगण कहते हैं कि सोम देवता वीर पुत्र प्रदान करें। इसी प्रकार ऋग्वेद संहिता के तीसरे मण्डल में ऋषिप्रवर विश्वामित्र अजेय पुत्र प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं।[2] वैदिक साहित्य के

1- सोमो धेनुम् सोमो अर्वन्तमाशुम्
सोमो वीरम् कर्मण्यम् ददाति
सादन्यं विदथ्यं सभेयं
पितृश्रवणम् यो ददाशदस्मै॥ ऋ0वे0 1-91-20

2- इलामग्ने पुरुदंसनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध
स्यान्नः सूनुः तनयो विजावाऽग्ने साते सुमतिर्भूत्वस्मे॥
— ऋ0वे0 सं0 3-1-23

अन्य स्थलों में भी पुत्र लाभ हेतु प्रार्थनायें प्राप्त होती हैं।[1] ब्राह्मणकाल में एक स्थल पर यह कहा गया है कि यदि पुत्र परिवार के लिए आशा की एक ज्योति है तो पुत्री परिवार के लिए दुःख का एक स्रोत है। महाभारत भी उक्त विचार का समर्थन करता है। तदनुसार मनुष्यों के लिए कन्या कष्टकारिणी है।[2] वाल्मीकि रामायण में सीता का कथन है कि विवाह योग्य मेरी अवस्था को देखकर मेरे पिता इस प्रकार से चिन्तित और दीन हो गये जैसे निर्धन अपने पास स्थित स्वल्प धन के विनाश से।[3] संसार में समान या अपने से असमान व्यक्ति से कन्या का पिता अपमान को प्राप्त करता है, चाहे वह इन्द्र के समान क्यों न हो।[4] पंचतंत्र में कहा गया है कि यदि पिता पुत्री का विवाह किसी योग्य वर के साथ करने में सफल भी हो जाता है तो भी उसकी चिन्तायें समाप्त नहीं हो जातीं। वह इस

1- कृपणं ह दुहिता ज्योतिर्हि पुत्रः परमे व्योमन्।

—ऐतरेय ब्राह्मण, 7, 18

2- कृच्छ्रं हि दुहिता नृणाम् —— महाभारत 1-173-10

3- पतिसंयोगसुलभं वयो दृष्ट्वा तु मे पिता

चिन्ताम् अभ्यगमद्दीनो वित्तनाशादिव धनः ॥

— वा०रा० 119-35

4- सदृशाच्चापकृष्टाच्च लोके कन्या पिता जनात्।

प्रधर्षणाम् अवाप्नोति शक्रेणापि समो भुवि॥

— वा० रा०, 119- 30

बात की चिन्ता करता रहता है कि उसकी पुत्री अपने पति के घर सुख प्राप्त करेगी अथवा नहीं। वस्तुतः कन्या का पितृत्व कष्टदायक है।[1] उक्त परि-स्थितियों के कारण ही सम्भवतः कथासरित्सागर में कहा गया है कि कन्या शोक का मूल है और पुत्र आनन्द का।[2]

इस प्रकार यदि प्राचीन साहित्य में समाज में कन्या जन्मके प्रति अनौत्सुक्य और हीनभावना दिखाई देती हुई सी प्रतीत होती है तो दूसरी ओर इसी प्राचीन साहित्य में कुछ ऐसे भी अभिलेख प्राप्त होते हैं जिनमें कहा गया है कि जो व्यक्ति यह चाहता हो कि मेरे यहाँ विदुषी पुत्री का जन्म हो तो वह तिलमिश्रित भात गृहिणी को खिलाये।[3] यद्यपि विदुषी कन्या-जन्म की यह इच्छा समाज में तीव्रता प्राप्त नहीं कर सकी क्योंकि गर्भाधान संस्कार के पश्चात् नारी के लिए पुंसवन संस्कार का विधान बहुलता से प्रचलित रहा है। अथर्ववेद संहिता में कन्या की तुलना में पुत्र प्राप्ति के लिए कतिपय कर्मकाण्ड की विधियों का संधान किया गया है।[4]

1- पुत्रीति जाता महतीह चिन्ता
कस्मै प्रदेयेति महान्वितर्कः
गत्वा सुखं प्राप्स्यति वा न
वेति कन्या पितृत्वं खलुनाम कष्टम्॥ — पंचतंत्र मित्रभेद, 5

2- शोक कन्दः ख्व कन्या हि।
स्वानन्दः सुतः ॥— कथासरित्सागर, 28-6

3- अथ य इच्छेद् दुहिता मे पण्डिता जायेत्
तिलौदनो पाचयित्वा अश्नीयाताम् इति॥— बृहदारण्यकोपनिषद् 4-4-18

4- अथर्ववेद संहिता — 3-23-4-2

किन्तु सभ्य समाज में पुत्र की भांति पुत्री को भी आदर प्राप्त था और सभ्य लोग जिस प्रकार अपने पुत्र के लिए चिन्तित रहते थे उसी प्रकार अपनी पुत्री के लिए भी चिन्तित रहते थे, बौद्धसाहित्य के ग्रन्थ संयुक्त - निकाय में यह कहा गया है कि एक विदुषी शीलवती कन्या पुत्री की अपेक्षा श्रेष्ठ हो सकती है। सुसंस्कृत समाज में ऐसी विदुषी और शीलादि गुण सम्पन्न कन्या, परिवार और कुल के लिए गौरव की बात हो सकती है। कालिदास ने ऐसी ही कन्या के लिए कुमार संभव महाकाव्य में कुल के जीवन की संज्ञा दी है।[1]

अनेक समाजशास्त्रियों के चिन्तन से यह बात प्रकट हुई है कि पुत्र-लाभ से पुत्री लाभ का भी कोई कम महत्व नहीं है। वैसे पुत्रों में पितृहन्ता और मातृहन्ता के भी आरोप इतिहास के पृष्ठों में देखे जा सकते हैं किन्तु इतिहास यह किसी पुराकथा में कन्या द्वारा पिता या माता के वध का कोई उल्लेख दृष्टिगोचर नहीं होता है।

वैदिककाल में कन्या लोपामुद्रा ने अपने परिवार की सुरक्षा हेतु महर्षि अगस्त्य के क्रोध से अपने पिता की रक्षा की थी और इसीलिए उसने

1- कन्येयम् कुलजीवितम् — कुमारसंभवम् 6- 63

अगस्त्य से विवाह की अपनी भी स्वीकृति प्रदान की थी।[1] इसी प्रकार महा -काव्य काल में कुन्ती जैसी कन्या ने अपने पिता कुन्तिभोज की, सुलभकोप महर्षि दुर्वासा के क्रोध से रक्षा कीथी। जब दुर्वासा कुन्तिभोज के यहाँ कुछ काल तक अतिथि के रूप में निवास हेतु आये थे तो राजा कुन्तिभोज अधिक घबड़ा गये थे, तब उनकी पुत्री कुन्ती ने ही उनके आतिथ्य का भार अपने ऊपर लेकर दुर्वासा को प्रसन्न कर अपने पिता की चिन्ता दूर की थी।[2]

कथासरित्सागर की एक कथा से यह बात प्रकट हुई है कि विवाह केअवसर पर कन्या ही अपने पिता को पृथ्वी दान का पुण्यलाभ कराती है। कन्यादान पृथ्वीदान के समान परम पवित्र और पुण्यलाभ कराने वाला दान प्राचीन काल में माना जाता था। इसलिए किसी को भी पुत्र जन्म से अति - प्रफुल्लित और कन्या जन्म से हीन भावना ग्रस्त नहीं होना चाहिए।[3] बल्कि सुसंस्कृत माता-पिता के लिए कन्या और पुत्र दोनों ही समान रूप से अभिनन्द-नीय होने चाहिए। किन्तु कन्या जन्म के स्वागतार्थ दिये गये ये तर्क आज के युग

1- महाभारत, 3- 304

2- कथा सरित्सागर - 28-27

3- पोजीशन आफ वूमेन इन हिन्दू सिविलीजेशन, पृ० 7

में नहीं चल पा रहे हैं।

समाज में तुलनात्मक रूप से पुत्रजन्म की श्रेष्ठता और कन्या जन्म की हीनता का प्रतीक माना जाना सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर रहा है। माता और पिता अपनी कन्या को अपने जीवन में सुव्यवस्थित होने में और उसके प्रसन्न रहने के सम्बन्ध में जो चिन्तातुर रहते हैं, यही चिन्ता कन्या-जन्म के प्रति समाज में अनुत्सुकता का कारण रही है। एक बार इस समस्या के ही हल हो जाने पर और निराशा की किरण के विलुप्त हो जाने पर पुत्री अपने माता और पिता को उतनी ही प्रिय होती है जितना कि उन्हें उनका पुत्र प्रिय होता है।

प्राचीन भारत में जो कन्या जन्म के प्रति असन्तोष और निराशा के भाव परिलक्षित होते हैं, वे क्षणिक ही समझे जाने चाहिए, इससे प्राचीन भारत में कन्या के जन्म के पश्चात् उसे मार देने की किसी घृणित प्रथा का कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता।

इसके विपरीत कन्या जन्म से उत्पन्न क्षणिक निराशा के समाप्त हो जाने के पश्चात् माता-पिता और पूरा परिवार कन्या के प्रति भी वैसी ही रुचि रखता था जैसा कि पुत्र के प्रति अपनी पुत्री (पोषिता-दुहिता) के प्रतिकूल भाग्य को शान्त करने के लिए महर्षि कण्व सोमतीर्थ जाते हैं।[1] किम्बहुना [illegible]

1- दुहितुः प्रतिकूलं भाग्यं शमयितुम्।
सोमतीर्थम् गतः (अभिज्ञान शाकुन्तलम्) कालिदास, पृ0 30 प0 3?

तीर्थयात्रा से लौटने के पश्चात् पिता, पुत्र तथा पुत्री दोनों को उनके कल्याणार्थ उन्हें मंत्र सुनाता है।[1] कुछ ऐसे भी प्रमाण प्राप्त होते हैं कि पुत्री अपने पिता को अत्यन्त प्रिय होती थी। उदाहरणार्थ देवयानी अपने पिता शुक्राचार्य को अत्यन्त प्रिय थी।

अविवाहित कन्याओं का मांगलिक कार्यों में विशेष महत्व माना जाता था। ऐसा विश्वास किया जाता रहा है कि भाग्य लक्ष्मी अविवाहित कन्याओं में नित्य निवास करती है।[3]

वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड के 3 अध्याय के 38 और 61 वें श्लोकों में यह कहा गया है कि 14 वर्षों के दीर्घकालिक वनवास से अयोध्या लौटने के समय राम की अगवानी में गये हुए लोगों में सर्वप्रथम अविवाहित कन्याओं को स्थान दिया गया था और राज्याभिषेक के अवसर पर राम का इन्हीं अविवाहित कन्याओं ने ही प्रथम पवित्र अभिषेक किया था।

वैदिककाल में पुत्र और पुत्री घर में एक साथ पालित और पोषित होते थे, पुत्र यदि अपने पिता के कर्तव्यों के पालन का अधिकारी होता था तो पुत्री अपनी माता के गौरव को बढ़ाने वाली मानी जाती थी।[4]

1- गृह्यसूत्र, 5, 12-3

2- महाभारत आदिपर्व -75, 8 - 9

3- नित्यं निवसते लक्ष्मीः कन्यकासु प्रतिष्ठिता, महा013, 11, 14

4- भगवतशरण उपाध्याय, वीमेन इन ऋग्वेद, पृ0 34

महाभारत के बकवध पर्व में एक ब्राह्मण का कथन है कि कुछ लोगों का कथन है कि पिता का स्नेह पुत्र पर अधिक होता है किन्तु कुछ लोग कहते हैं कि पिता का स्नेह पुत्री पर अधिक होता है। मेरा तो दोनों पर अर्थात् पुत्र और पुत्री पर समानरूप से स्नेह है।[1]

अपत्य अपने माता और पिता को आपत्ति से रक्षा करने का हेतु माना जाता है। इस दृष्टि से पुत्र के समान पुत्री भी अपने माता-पिता को संकट से उनकी रक्षा करती थी। 'पुन्नाम नरकम् तस्मात् त्रायते इति पुत्र' इस निर्वचन के अनुसार पुत्र नरक अर्थात् कष्टों से इह लोक और परलोक के दुःखों से जैसे माता-पिता की रक्षा करता है उसी प्रकार 'पुन्नाम नरकम् तस्मात् त्रायते या सा' पुत्री' यही निर्वचन पुत्री के लिए भी उचित है। पुत्री भी अपने माता-पिता की इहलोक और परलोक सम्बन्धी दुःखों से त्राण करने का सामर्थ्य रखती है।

प्राचीन साहित्य के अवगाहन से यह सुस्पष्ट है कि प्राचीनकाल में कन्या निरादरणीय अथवा तिरस्करणीय नहीं थी किन्तु यह बात भी स्पष्ट है कि वह पुत्रों के समान वांछनीय नहीं थी। मांगलिक कार्यों में कन्या का

1- मन्यन्ते केचिदधिकं स्नेहं पुत्रे पितुर्नराः।
कन्यायां चैव तु पुनर्मम तुल्यौ उभौ मतौ॥
— महाभारत- 1-145, 36

स्थान पूजनीय होता था और उसे देवी के रूप में पूजने की प्रथा थी जो आज भी परम्परा से विद्यमान है। शारद और चैत्र नवरात्र में आज भी आस्तिक भारतीयों के घरों में नव कन्याओं का नवदुर्गाओं के रूप में मंगल, धन और शक्ति की कामना से पूजन अर्चन और वन्दन होता है। उन्हें भोजन, वस्त्र दक्षिणादि से सन्तुष्ट किया जाता है।[1]

वैदिक वाङ्मय के अनुशीलन से विदित होता है कि वैदिककाल के समाज में नारियों को गौरवपूर्ण स्थान था। वैदिक काल में नारी शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी और सामाजिक कार्यों में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रहती थी। वे अध्ययन अध्यापन के अतिरिक्त वीरता के भी कार्य करती थी।

'सर्वानुक्रमणिका' के अनुसार विदित होता है कि लगभग 20 वैदिककालीन नारियां ऐसी हैं जिन्हें ऋग्वेद के मन्त्रों के द्रष्टा या प्रणेता होने का गौरव प्राप्त है। किन्तु ऋग्वेद के गहन अध्ययन से 24 वैदिक नारियों के मन्त्रों का द्रष्टा या रचनाकार होने का निर्देश प्राप्त होता है।

1- प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी
तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम्
पंचमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च
सप्तमं कालरात्रीति महागौरीतिचाष्टमम्
नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गा प्रकीर्तिता।। — दुर्गासप्तशती, कवच, 1
गीताप्रेस

ऋग्वेद के मंत्रों की द्रष्टा या प्रणेता वैदिक नारियों का नामोल्लेख निम्नवत है —

(1) सूर्या सावित्री

(2) घोषा काक्षीवती

(3) सिकता निवावरी

(4) इन्द्राणी

(5) यमी वैवस्वती

(6) दक्षिणा प्राजापत्या

(7) अदिति

(8) वाक् आम्भृणी

(9) अपाला आत्रेयी

(10) जुहू ब्रह्मजाया

(11) अगस्त्य स्वसा

(12) विश्ववारा आत्रेयी

(13) उर्वशी

(14) सरमा देवशुनी

(15) शिखण्डिन्यौ अप्सरसौ

(16) पौलोमी शची

(17) देवजामयः इन्द्रमातरः

(18) श्रद्धा कामायनी

(19) नदी

(20) सूर्याराज्ञी

(21) गोधा

(22) शश्वती आंगिरसी

(23) वसुक्रपत्नी

(24) रोमशा ब्रह्मवर्णी

सूर्या सावित्री वह ऋषिका है जिसने ऋग्वेदसंहिता के 10-85 के 47 मंत्रों का प्रणयन किया है। इन मंत्रों में ऋषिका, सूर्या सावित्री ने विविध विषयों का समावेश किया है जिससे उसके वैदुष्य का पता चलता है। इस सूक्त का प्रथम मंत्र अवलोकनीय है —

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधिश्रितः॥

जिसका तात्पर्य है कि सत्य से भूमि स्थिर है, सूर्य से दिव लोक स्थिर है और ऋत अर्थात् परम सत्य से आदित्य लोक स्थिर है और इसी प्रकार सोम अर्थात् चन्द्र भी दिवलोक में स्थिर है।

इसके अतिरिक्त ऋषिका सूर्यासावित्री द्वारा दृष्ट मन्त्र उसके गहन चिन्तन के परिणाम हैं — विवाह के सम्बन्ध में वैदिक विद्वानों के मध्य उसका यह मंत्र अतिप्रसिद्ध है —

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तम्।
मया पत्या जरदष्टिर्यथासः॥

जिसका तात्पर्य है कि पति अपनी धर्मपत्नी से कहता है कि हे भागिनि, सौभाग्य के लिए मैं पति के रूप में तुम्हारा पाणिग्रहण करता हूं, भग अर्यमा सविता आदि देवताओं ने गृहपति के कार्य निष्पादनार्थ तुम्हें मुझे प्रदान किया है।

इससे विदित होता है कि वैदिक काल में नारी-शिक्षा कितनी वृद्धि को प्राप्त रही होगी।

वैदिक मंत्रों की द्रष्टा दूसरी वैदिक नारी है घोषाकाक्षीवती जिसे ऋग्वेद के दशम मण्डल के 28 मंत्रों के द्रष्टा होने का गौरव प्राप्त है। इनके द्वारा द्रष्ट मंत्रों में भी जीवन से सम्बन्धित गंभीर तत्वों का विवेचन किया गया है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी इन मंत्रों का अतिशय महत्व है। विधवा नारी का अपने देवर से विवाह का संकेत है जो तत्कालीन सामाजिक स्थिति का चित्रण करता है

सिकता निवावरी तीसरी वैदिक नारी है जिसने ऋग्वेदसंहिता के नवम मण्डल 86 में सूक्त के 20 मंत्रों की रचना का गौरव प्राप्त किया है। सोम देवता की स्तुति में इस सूक्त में कहा गया है कि हे सोम, तुम्हारे दिव्य रेत से इस प्रजा का जन्म हुआ है, तुम सम्पूर्ण भुवनों के राजा हो, हे पवमान, यह सम्पूर्ण विश्व तुम्हारे आधीन है, हे इन्दु, तुम प्रथम तेज धारण कर्ता हो।[1] इस सूक्त की भाषा और कवित्व उच्चकोटि का है।

1- तवेमाः प्रजाः दिव्यस्य रेतसः त्वं विश्वस्यभुवनस्य राजसि।
अथेदं विश्वं पवमान ते वशे त्वमिन्दो प्रथमो धामधाअसि॥
— ऋग्वेदसंहिता, 9-86-28

ऋग्वेद संहिता के 17 मंत्रों की द्रष्टा वैदिक नारी इन्द्राणी है जिसने अपने द्‌वारा विरचित या दृष्ट मंत्रों में अन्य विषयों के अतिरिक्त इन्द्र के महत्व का वर्णन किया है।

यमी वैवस्वती वह वैदिक ऋषिका है जिसने ऋग्वेद संहिता के दशम मण्डल के दसवें सूक्त के 11 मंत्रों की रचना की है। यह वैदिक नारी स्वच्छन्द विचारों की है और कामान्ध होकर अपने सहोदर भ्राता से अपनी वासना को शान्त करने की याचना करती है जिसे उसका भाई यम यह कहकर कि बहिन और भाई में पति-पत्नी जैसे सम्बन्ध देवताओं की दृष्टि में पाप है, मना कर देता है। हे भगिनी, किसी अन्य युवक से अपनी कामना की पूर्ति करो। हे सुभगे, तुम्हारा भाई इस हेतु अयोग्य है।[1] 'यम-यमी संवाद' ऋग्वेद संहिता के दशम मण्डल में प्राप्त होता है जो मन्त्रद्रष्टा सुशिक्षित नारी के स्वच्छन्द विचारों की अभिव्यक्ति है। इससे प्रकट होता है कि वैदिक काल में नारियाँ अपनी मनोभावनाओं की तीव्रता का गोपन नहीं करती थीं।

दक्षिणाप्राजापत्या वह वैदिक नारी है जिसे ऋग्वेद संहिता के दशम मण्डल के 11 मंत्रों के द्रष्टा होने का सौभाग्य प्राप्त है। दक्षिणाप्राजापत्या

1- न वा उ ते तन्वा तन्वं संपपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्।
अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत्॥
— ऋग्वेदसंहिता, 10-10-12

ऋषिका ने अपने द्वारा दृष्ट मंत्रों में दक्षिणा देने वाले यजमानों के लिए उच्च पद की प्राप्ति का संकेत किया है। दक्षिणा देने वाले उच्च द्युलोक में निवास करते हैं, जो अश्वदान की दक्षिणा देते हैं वे सूर्यलोक में जाते हैं। सुवर्णदान करने वाले अमरता प्राप्त करते हैं।[1]

अदिति दाक्षायणी द्वारा ऋग्वेदसंहिता के चतुर्थमण्डल के अठारहवें सूक्त के 7 मंत्रों का प्रणयन हुआ और इन्होंने ही दशम मण्डल के 72 वें सूक्त के 9 मंत्रों का प्रणयन किया है। अदिति को देवताओं की माता होने का भी गौरव प्राप्त है।

वागाम्भृणी नाम की ऋषिका ने दशम मण्डल के 125 वें सूक्त के 8 मंत्रों की रचना की है जिसमें उसने आत्मा के साथ तादात्म्य स्थापित कर दार्शनिक सिद्धान्त एकात्मवाद का प्रतिपादन किया है। इससे विदित होता है कि वैदिक काल में नारियों की प्रवृत्ति दर्शनशास्त्र जैसे दुरूह और जटिल विषयों की ओर भी हो रही थी। वाक् सूक्त में वाक् तत्व का शास्त्रीय विवेचन है।

1- उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्येअश्वदाः सह ते सूर्येण।

हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते वासोदाः सोम प्रतिरन्तआयुः ॥

— ऋग्वेदसंहिता, 10-107-2

उपर्युक्त के अतिरिक्त अपाला आत्रेयी, लोपामुद्रा, जुहू ब्रह्मजाया, अगस्त्यस्वसा, विश्ववारा आत्रेयी, उर्वशी, सरमादेवशुनी, शिखण्डिन्यौ अप्सरसा, पौलोमी शची, देवजामयः, इन्द्रमातरः, श्रद्धा कामायनी, नदी सर्पराज्ञी, गोधा, शाश्वती आंगिरसी, वसुक्रपत्नी और रोमशा ब्रह्मवादिनी - ऐसी वैदिक नारियाँ है जिन्होंने ऋग्वेद संहिता के अनेक मंत्रों के रचनाकार या दृष्टा होने का गौरव प्राप्त किया है।

इसी प्रकार अथर्ववेदसंहिता के 139 मंत्र वैदिक ऋषिकाओं द्वारा विरचित हैं। अथर्ववेद की प्रमुख ऋषिकायें निम्न हैं -(1) सूर्यासावित्री (2) मातृनामा, इन्द्राणी, देवजामयः, सर्पराज्ञी इत्यादि।

उपर्युक्त वैदिक संहिताओं के अनुशीलन से विदित होता है कि वैदिककाल में नारियों की प्रतिष्ठा थी। उनके शिक्षा आदि की व्यवस्था सुचारु थी। सामाजिक कार्यों में उनकी भूमिका विशेष महत्व की थी।

श्रद्धा कामायनी द्वारा विरचित श्रद्धासूक्त में श्रद्धा का विशेष महत्व प्रतिपादित किया गया है। सायणाचार्य के अनुसार अतिशय विश्वास को श्रद्धा कहा जाता है। प्रत्येक प्रकार की सफलता के लिए जीवन में श्रद्धा होना आवश्यक है। श्रद्धा से ही यज्ञ की तीन अग्नियाँ (गार्हपत्य, आवहनीय अश्वत्थ) को प्रज्वलित किया जाता है। श्रद्धा से ही हवि दी जाती है और

ऐश्वर्य आदि की प्राप्ति होती है।[1]

वैदिक काल की नारियाँ अध्ययन और अध्यापनादि का कार्य तो करती थी इसके अतिरिक्त वे युद्ध आदि में भी जाया करती थीं। अथर्ववेद में इन्द्राणी के सेना का नेतृत्व करने का उल्लेख प्राप्त होता है, इसके अनुसार यह कहा गया है कि इन्द्राणी सेना का नेतृत्व सभाले।[2] इससे विदित होता है कि वैदिक काल में नारियाँ पुरुषों की भाँति प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में अपना योगदान देती थीं।

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी वैदिक काल की नारियों के गौरव की गाथा प्राप्त होती है। तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार पत्नी को आत्मा का आधा भाग कहा गया है।[3] इसी ब्राह्मण में सपत्नीक यज्ञ का विधान विहित है, क्योंकि नारी के बिना यज्ञ अधूरा माना जाता है अतः यज्ञ यागादि की सांगोपांग विधि धर्मपत्नी के बिना संभव नहीं है।[4] दूसरी ओर ऐतरेय ब्राह्मण

1- श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
   श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि॥ — ऋग्वेदसंहिता 10-151-1

2- इन्द्राण्येतु प्रथमाजीतामुषिता पुरः। — अथर्ववेद सं0 1-27-4

3- अर्धो वा एष आत्मनः यत् पत्नी। — तै0ब्राह्मण 3-3-3-5

4- जाया गार्हपत्यः — ऐतरेय ब्राह्मण, 8-24

पत्नी को गार्हपत्याग्नि के रूप में चित्रित करता है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार पूर्णता के लिए पत्नी का होना आवश्यक है, तदनुसार जब तक वह जाया को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक वह असर्व अर्थात् असम्पूर्ण रहता है।[1] यही ब्राह्मण नारी वैश्य की निन्दा भी करता है — न वै स्त्रियं घ्नन्ति' शा० ब्रा०। तै०ब्रा० के अनुसार पत्नी को लक्ष्मी का प्रतीक माना है।[2]

यद्यपि उपर्युक्त वैदिक ऋषिका कुछ मिथ अर्थात् पुराकथा से सम्बन्धित हो सकती हैं, किन्तु आभ्यन्तर साक्ष्य से यह विदित होता है कि लोपामुद्रा, विश्ववारासिकता निवारी और घोषा प्रभृति वैदिक नारियाँ जिन्होंने क्रमशः ऋग्वेदसंहिता के 1-179, 5, 28, 8-91 और 10-39-40 सूक्तों के कुछ मंत्रों की रचना की है, वस्तुतः साक्षात् नारियाँ थीं जो कभी हिन्दूसमाज में विद्यमान थीं। वर्तमान कवियों की भांति एक मंत्र में लोपा मुद्रा ने अपने नाम का भी उल्लेख किया है।[3] इसी प्रकार अन्य मंत्रद्रष्टा नारियाँ, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, हिन्दू-समाज का अंग रही होंगी।

1- यावत् जायां न विन्दते असर्वो हि तावद् भवति। — शत०ब्रा०5-2-1-10

2- श्रिया वा एतद्रूपम् यत पत्न्यः।

3- नदस्य मा रुधतः आगन्नित आजातय अमृतः कुतश्चित्

लोपा मुद्रा वृषणं नी रिणाति धीरमधीरा धयतिश्वसन्तम्॥

— ऋग्वेदसंहिता 1-179-4

अश्वलायन गृह्यसूत्र 3, 4, 4 में कहा गया है कि ब्रह्मयज्ञ के अवसर पर सुलभा मैत्रेयी वडवा प्रातिथेयी और गार्गी वाचक्नवी प्रभृति विदुषी नारियों का दैनिक प्रार्थना में सादर नाम स्मरण करना चाहिए। उक्त विदुषी नारियों के प्रातः नाम स्मरण के विधान से यह विदित होता है कि इन्होंने अवश्य अपना कोई विशिष्ट योगबल दिया होगा, जो सम्प्रति अनुपलब्ध है।

यह यद्यपि बड़े खेद की बात है कि हमें उक्त विदुषी नारियों के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं है क्योंकि उनकी रचनायें संभवतः सदैव के लिए लुप्त हो गयी हैं।

वैदिक काल में (नारी) छात्राओं को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है —(1) ब्रह्मवादिनी और (2) सद्योद्वाहा। ब्रह्मवादिनी नारियां अपने जीवन पर्यन्त दर्शन शास्त्र और ब्रह्मज्ञान में तत्पर रहती थीं किन्तु सद्योद्वाहा नारियां अपने विवाह के पूर्व 15 या 16 वर्ष तक ही विद्या-ध्ययन कर पाती थी। ऐसी नारियां अपने जीवन के 7 या 8 वर्ष तक अध्ययन का अवसर प्राप्त करती थीं। वे दैनिक प्रार्थना के वैदिक मंत्र याद करती थीं और विवाहोत्तर आवश्यक विधिविधानों से सम्बन्धित कर्मकाण्ड और धर्मविषयक ज्ञान प्राप्त करती थीं। वे प्रातः और सायंकाल पुरुषों की भांति संध्याकर्म किया करती थीं। वाल्मीकि रामायण से विदित होता है कि सीता निर्मल जल से भरी हुई नदी के तट पर वैदिक सन्ध्या हेतु जाया करती थी[1] और प्रार्थना

1- संध्याकाल मनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी
नदीं चेमां शुभजलां संध्यार्थं वरवर्णिनी॥ — वा० रामायण, 5-15-48

में वैदिक मंत्रों का उच्चारण करती थीं।

ब्रह्मवादिनी नारियाँ वैदुष्य के चरम शिखर पर पहुँचने की आकांक्षा और लक्ष्य रखती थीं। उपनिषद् काल में समाज दार्शनिक सिद्धान्तों की ओर अग्रसर हो रहा था और रुचि ले रहा था। तत्कालीन नारियाँ भी बड़े उत्साह के साथ दार्शनिक और आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्ति हेतु आगे बढ़ रहीं थीं। वेदों के अध्ययन के अतिरिक्त नारियाँ पद पदार्थ का निर्णय करने वाले पूर्वमीमांसा जैसे दुरूह विषय का भी अध्ययन करती थीं। काशकृत्स्ना नामक विदुषी नारी ने पूर्वमीमांसा पर एक ग्रन्थ ही लिखा है, जिसे काशकृत्स्नी'कहा जाता है, जो नारियाँ इसका विशेष अध्ययन किया करती थीं, उन्हें"काशकृत्स्ना' कहा जाता था।[1]

जहाँ एक ओर वैदिक कर्मकाण्ड की प्रतिक्रिया स्वरूप ज्ञानकाण्ड का उदय हो रहा था, विदुषी नारियाँ भी दार्शनिक सिद्धान्तों और ज्ञान के नूतन आयामों में रुचि लेने लगी थीं। याज्ञवल्क्य की धर्मपत्नी मैत्रेयी सांसारिक वैभव और जगत् की चमक दमक को छोड़कर अपने पति से अमरता प्राप्ति के लिए प्रार्थना करती थीं,[2] और क्षणभंगुर धन को तुच्छ समझती थीं।

1- महाभाष्य, 4, 1, 14, 3, 155

2- येनाहं नामृता स्याम् किं तेन अतिप्रभूतेनापि।
   वित्तेन कुर्याम् इति — बृहदारण्यकोपनिषद्, 2- 4

एक समय की बात है विदेहराज जनक की अध्यक्षता में एक दार्शनिक सम्मेलन का आयोजन हुआ था, वहाँ पर विदुषी वैदिक नारियों ने भी अपना सक्रिय योगदान दिया था। उस प्रसिद्ध दार्शनिक सम्मेलन में विख्यात महिला-दार्शनिक गार्गी ने अपने वैदुष्यपूर्ण वक्तृता से उपस्थित दार्शनिक विद्वानों को मुग्ध कर दिया था। उसने अपने अद्भुत आत्मविश्वास तथा शान्तिपूर्वक, प्रसिद्ध दर्शनशास्त्री याज्ञवल्क्य से चुनौती की मुद्रा में दर्शन-शास्त्र से सम्बन्धित दो प्रश्न किये थे और कहा था कि जैसे कोई वीर अपने हाथ में लिए हुए बाणों से शत्रु पर आक्रमण करता है, उसी प्रकार मैं अपने दो प्रश्नों से आप पर आक्रमण करती हूँ, आप उन प्रश्नों का उत्तर दीजिए, यदि आप दे सकते हैं। किन्तु याज्ञवल्क्य ने यह कहकर कि सम्मेलन में जनसमुदाय के मध्य इन प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया जा सकता, टाल दिया था। विदुषी नारी गार्गी के द्वारा याज्ञवल्क्य से किये गये प्रश्नों से यह विदित होता है कि वह एक चतुर वक्ता और उच्चकोटि की महिला दार्शनिक थी।[1]

इसी प्रकार वेदान्त की एक अन्य महिला छात्रा का नाम आत्रेयी था, जिसने दर्शन शास्त्र का गहन अध्ययन किया था। यह सुना जाता है कि पहले उसने श्री राम के पुत्रों लव और कुश के साथ महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में विद्याध्ययन किया था, पश्चात् विघ्न और प्रत्यवाय को ध्यान में रखकर

1- बृहदारण्यकोपनिषद्, III 6,8

उसने दर्शन-शास्त्र के गंभीर अध्ययन हेतु महर्षि अगस्त्य के आश्रम में प्रवेश लिया था।[1] इससे यह भी विदित होता है कि प्राचीनकाल में सहशिक्षा का भी प्रबन्ध था, क्योंकि लव और कुश के साथ तथा अन्य महर्षि पुत्रों के साथ आत्रेयी के विद्याध्ययन की बात प्रकाश में आई है। महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में बालक और बालिकायें साथ-साथ अध्ययन करते थे।[2]

वैसे वैदिक काल में बहुधा शिक्षा का प्रबन्ध परिवारों तक सीमित था। भाई, बहिन और चचेरे भाई बहिन अपने परिवारों में शिक्षा पाते रहे होंगे किन्तु विशेष अध्ययन हेतु वे विशिष्ट गुरुओं के पास भिन्न-भिन्न स्थानों में भी जाते रहे हैं। जैसा कि उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है।

भवभूति ने अपने 'मालतीमाधव' नाटक में कामन्दकी के भूरिवसु तथा देवरात के साथ-साथ अध्ययन का उल्लेख किया है। पुराणों में कहोदा और सुजाता, रुरु और प्रमद्वरा की कहानियों का भी उल्लेख प्राप्त होता है जिनसे सहशिक्षा का संकेत मिलता है और सहशिक्षा से कभी-कभी प्रेमविवाह भी

1- वनदेवता — आर्ये आत्रेयि, कुतः पुनरिहागम्यते?
किम्प्रयोजनो दण्डकारण्योपवन प्रचारः ?

आत्रेयी — अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे,
भूयांस उद्गीथविदो वसन्ति।
तेभ्यो धिगन्तु निगमान्तविद्यां
वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि।। — उत्तररामचरितम्, भव0, 2-3

2- तस्मिन् हि महान् अध्ययनप्रत्यूह इति दीर्घ प्रवासो गीकृतः। उ0रा0 2-3

हो जाते थे। किन्तु महिला छात्रायें उच्च शिक्षा हेतु सुदूर अंचलों में अधिक मात्रा में नहीं जाती थीं। क्योंकि तक्षशिला जो प्राचीन उच्च शिक्षा का केन्द्र था, में महिला छात्राओं के होने का कहीं संकेत नहीं मिलता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में नारी के गौरवमय जीवन का उल्लेख भूयोभूयः प्राप्त होता है। नारी आत्मा का आधा भाग है इसलिए उसे अर्धांगिनी कहा जाता है।[1] मनुस्मृति में भी स्पष्ट कहा गया है कि जहाँ नारियों की पूजा और प्रतिष्ठा होती है वहाँ देवताओं का वास होता है और जिस कुल में अपमान होता है वहाँ की समस्त क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं इसलिए जो अपने परिवार का कल्याण चाहते हैं उन्हें नारियों का सम्मान करना चाहिए।[2]

ऋग्वेदसंहिता भी नारी की गौरवगाथा से युक्त है। उदाहरण के लिए ऋग्वेद के दशम मण्डल के 159 वें सूक्त में शची इन्द्राणी अपने बल और पौरुष का वर्णन करती है कि 'मैं समाज में केतु की तरह उच्च हूँ, मैं श्रेष्ठ विवेचक हूँ। पति मेरा अनुगामी है।[3] वह आगे कहती है कि मेरे पुत्रगण

1- अर्धो वा एष आत्मनः यत् पत्नी — तै०ब्रा० 3-3-3-5

2- यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥
— मनुस्मृति, 3-56, 3-59

3- अहं केतुरहं मूर्धा हमुग्राविवाचनी।
ममेदनुक्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत्॥
— ऋग्वेद, 10-159-2

शत्रुहन्ता हैं तथा मेरी दुहिता विराट् अर्थात् बलवती है और मैं शत्रुओं पर सम्यक् विजय प्राप्त करने वाली हूँ।[1] मैं असपत्ना और सपत्नघ्नी हूँ। मैंने अपनी सपत्नियों पर विजय प्राप्त कर ली है।[2]

ऋग्वेद 4-34- 7 के अनुसार नारियाँ इन्द्र, वरुण और मरुत् देवों के साथ यज्ञ के अवसर पर आतीं थीं वे रत्न धारण करती थीं, देवताओं के साथ सोम रस का पान करती थीं। इससे प्रतीत होता है कि समाज में नारियों का सम्मान था।[3]

कुमारी कन्याओं के सम्बन्ध में कहा गया है कि वे शुद्ध और पवित्र आचरण वाली होती थीं। उन्हें यज्ञ करने का अधिकार होता था, योग्य कन्यायें सुयोग्यवर के साथ विवाहित होती थीं। अथर्ववेद 11-1-27 में कहा गया है कि इन शुद्ध पवित्र यज्ञ करने के योग्य स्त्रियों को ब्राह्मणों के हाथों में अलग-अलग देता हूँ। जिस कामना से मैं तुम्हें यह स्त्रीरत्न देता हूँ, मरुत् देवों के साथ रहने वाला वह इन्द्र मेरी कामना पूर्ण करे।[4]

1- मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्।
उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः॥— ऋग्वेद 10-159-2

2- समजैषमिमा अहं सपत्नीरभिभूवरी।
यथाहमस्य वीरस्य विराजानि जनस्य च॥ - ऋग्वेद 10-159-6

3- ऋग्वेद 4-34-7

4- शुद्धा पूता योषितो यज्ञिया इमा।
ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि॥— अथर्ववेद संहिता, 11-1-27

वैदिक काल में नारी के गौरव का यत्र-तत्र उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेदसंहिता 3 - 53 - 4 के अनुसार पत्नी ही घर है, वही कुल वृद्धि का आधार है।[1] इसी बात को संस्कृत के परवर्ती साहित्य में यह स्पष्ट कहा गया है कि घर को घर नहीं कहा जाता है बल्कि गृहिणी को घर कहते हैं।[2] भार्या से हीन घर गृहस्थ के लिए अरण्य के समान होता है।[3]

ऋग्वेदसंहिता 5-61-6 के अनुसार यह विदित होता है कि नास्तिक और कृपण पुरुष से आस्तिक और दानशील नारी का स्थान समाज में श्रेष्ठ माना जाता था।[4] ऐसी नारी का वैदिक काल के समाज में विशेष सम्मान होता था जो दुःखी, प्यासे और याचक के प्रति उदारमन वाली होती थी और देवताओं के प्रति श्रद्धाभाव रखती थी।[5]

1- जाया इत् अस्तम् मघवन् सेदु योनिः ।
— ऋ0वेदसंहिता, 3-53-4

2- न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते' — संस्कृत सुभाषित'

3- भार्याहीनं गृहस्थस्य अरण्य सदृशं मतम्॥

4- उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी
अदेवत्रादराधसः ॥ — ऋ0सं0 5-61-6

5- देवत्रा कृणुते मनः — ऋग्वेद 5-61-7

अथर्व वेद में कहा गया है कि स्त्री सरस्वती का रूप है और वह विराट् का स्वरूप भी है, वह तेजस्विनी हो और विष्णु के समान प्रतिष्ठित हो। हे सौभाग्यवती नारी, तुम सन्तान की जन्मदात्री बनो और सौभाग्य देवता की कृपा प्राप्त करो।[1]

उषा का वर्णन एक युवती के रूप में किया गया है। उषा एक युवती की भांति कोई संकोच न करती हुई आगे आगे चलती हुई अन्धकार को दूर करती है और लोगों को प्रकाशित करती है। इस वर्णन से विदित होता है कि वैदिक काल में निर्भीक और साहसी युवतियाँ समाज का नेतृत्व करती थीं।

ऋग्वेद और अथर्व वेद के अनुसार नारी अबला नहीं प्रत्युत सबला है। इन्द्राणी एक मंत्र में कहती है कि जो दुष्ट मुझे अबला समझकर सताना चाहता है उसको मैं विनष्ट कर दूंगी। मैं स्वयं वीर हूं और वीर प्रसविनी हूं तथा मरुत् देवता मेरा सहयोग करते हैं।[2] इसी प्रकार यजुर्वेद में कहा गया है कि नारी में अनेक प्रकार का बल है इसलिए वह 'सहस्र-वीर्या' कही जाती है और शत्रु सेना का संहार करती है।[3]

1- प्रतितिष्ठ विराडसि, विष्णुरिवेह सरस्वति।
सिनीवालि, प्रजायताम् भगस्य सुमतावसत्।। — अथर्व वेद 14-2-15

2- उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा।
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।। ऋ0 10-86-9

3- सहस्रवीर्यासि सा मा जिन्व। — यजुर्वेद, 13-26

ऋग्वेदसंहिता 10-27-2 में बतलाया गया है कि वैदिककाल में स्वयंवर प्रथा विद्यमान थी जिस प्रकार पुरुष को स्त्री चुनने का अधिकार है उसी प्रकार स्त्री भी अपने गुण और शील के अनुसार सुयोग्य पति चुनती थी।[1]

वेदों में नारी के अनेक गुणों का वर्णन किया गया है, तदनुसार नारी में अपने सौन्दर्य से सौन्दर्य प्रेमी व्यक्तियों को आकर्षित करने की शक्ति है।[2] इसका तात्पर्य यह है कि स्त्री में लज्जा स्नेह और ममता आदि ऐसे गुण हैं जो नारी की ओर मनुष्य के आकर्षण के कारण बनते हैं। मन्त्र में मन की समानता का उल्लेख किया गया है जो नर-नारी के परस्पर प्रेम का आधार है।[3]

1- कियती योषा मर्यतो वधूयोः
  परिप्रीता पन्यसा वार्येण
  भद्रा वधूर्भवति यत् सुपेशाः
  स्वयं सा मित्रं वनुते जनेचित्॥ — ऋग्वेद, 10-27 - 2

2- समनेव वपुष्यतः कृणवन्मानुषा युगा ।
  — ऋग्वेद 8-6-29

3- यथा प्रधिर्यथोपधिर्यथा नभ्यं प्रधावधि।
  यथा पुंसो वृषण्यत् स्त्रियां निहन्यते मनः
  एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से निहन्यताम्॥
  — अथर्व वेद 6-70-3

अथर्व वेद में कहा गया है कि जैसे लोहे का हाल पहिये से सम्बद्ध होता है, यथा रथ की नाभि पहिये के हाल से सम्बद्ध होती है और जैसे कामी पुरूष का मन स्त्री में लगा रहता है उसी प्रकार हे अवध्य गाय तुम्हारा मन तुम्हारे बछड़े में लगा रहे।[1] कामातुर व्यक्ति और नारी का यह रागात्मक सम्बन्ध वक्ता की दृष्टि में ब्रह्म और जीव के राग का दृष्टान्त बनता है। कालान्तर में गो0 तुलसीदास ने अपने रामचरित मानस में कहा है कि कामी को जैसे नारी प्रिय होती है और लोभी को जैसे धन प्रिय होता है – उसी प्रकार हे रघुनाथ आप मुझे प्रिय लगें।[2] इससे प्रतीत होता है कि नारी प्रारम्भ से ही पुरूष के लिए राग का केन्द्र रही है। नारी के प्रति पुरूष का यह राग सृष्टि-चक्र का संचालक होता है। कामी और नारी की यही रति जब जीव और ब्रह्म की रति के रूप में परिणत होती है तो पुरूषार्थ चतुष्टय में से अन्तिम पुरूषार्थ मोक्ष का लाभ होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल से ही रागात्मक संबन्धों की जननी होने के कारण नारी, कठोर हृदय-पुरूषों के मन में कोमलता के भाव भरने और उसे विनम्र करने का काम करती रही है।

1- यथा प्रधिर्यथोपधिर्यथा नभ्यं प्रधावधि।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः।
एवा ते अघ्न्ये मनो॒ऽधि वत्से निहन्यताम्॥
— अथर्व वेद, 6-70-3

2- कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभी के प्रिय दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम॥ -मानस, उ0का0दोहा,

वैदिक काल में नारी के धार्मिक अधिकार और कर्तव्यों का विपुलता के साथ उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद में कहा गया है कि पत्नी अपने पति के साथ बैठकर यज्ञ यागादि का कार्य किया करती थी। नारी अपने पति के साथ यज्ञ करते समय स्रुवा हाथ में लिए रहती थी। यज्ञ करने वाले दम्पति को अमृत शक्ति प्राप्त होती थी।[1] और दोनों की वाणी में मधुरता आती है, जो मन लगाकर यज्ञ करता है, उसकी श्रीवृद्धि होती है और सम्पन्नता उसका वरण करती है। इस प्रकार नारी पुरुष की सहधर्मचारिणी रही है और सह - धर्माचरण की इस परम्परा का निर्वाह श्रीराम ने सीता-परित्याग के पश्चात् अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर अपने वाम और प्रतिष्ठापित सीता की सुवर्णमयी मूर्ति है। भवभूति ने उत्तररामचरित नाटक में इस प्रसंग का वर्णन अतिकरुणा-मय रूप में किया है, जो अवलोकनीय है —[2]

वासन्ती — अथ स रामभद्रः किमाचारः ?

आत्रेयी — तेन राज्ञा राजक्रतुरश्वमेधः प्रक्रान्तः।

वासन्ती — अहह, धिक् परिणीतमपि?

1- अंश द्वयोरवया आयं वचो
यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः।
असंयन्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति
भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते॥ — ऋग्वेदसंहिता - 1-83-3

2- उत्तररामचरितम्, द्वितीय अंक, महालक्ष्मीप्रकाशन, पृ० 146

आत्रेयी — शान्तम्, नहि नहि।

वासन्ती — का तर्हि यज्ञे सहधर्मचारिणी?

आत्रेयी — हिरण्मयी सीता प्रकृतिगृहिणीकृता

वैदिक काल में समाज में नारी का स्थान ऊँचा था। अथर्व-वेद में नारी के लिए 'कुलपा' शब्द का प्रयोग किया गया है। कुलपा शब्द का अर्थ है 'कुलम् पाति या सा' इति कुलपा — जो कुल की रक्षा करे। अथर्व वेद 1-14-3 में कहा गया है कि हे राजन् यह कन्या तेरे कुल का पालन करने वाली है इसको तुम्हें दान करता हूँ यह सिर सजाये जाने तक अपने माता पिता के घर रहेगी।[1]

अथर्व वेद में नारी से अनेक अपेक्षायें की गयी हैं जिसके अनुसार वह श्वसुर, पति, परिवार और परिजन आदि सभी को सुख प्रदान करने वाली कहा गया है।[2] इस प्रकार यजु0वेद 14-2 के अनुसार नारी कुल की पालक है। ऋग्वेद के अनुसार कहा गया है कि हे वधू, तुम ससुर, सास ननद और देवरों के साथ गृहस्वामिनी के रूप में रहो।[3] इसलिए वैदिक काल

1- एषा ते कुलपा राजन् तामु ते परिदद्मसि

ज्योक् पितृष्वासाता, आशीर्ष्णः समोप्यात्॥ — अथर्व0वेद 1-14-3

2- स्योना भव श्वसुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः। — वही, 14-2-27

3- सम्राज्ञी श्वसुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव

ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधिदेवृषु॥ —ऋग्वेद, 10-85-46

से ही लेकर नारी को गृहलक्ष्मी होने का सौभाग्य प्राप्त रहा है।[1] इसलिए ऋग्वेदसंहिता में गृहिणी को ही गृह कहा गया है।[2]

नारी के विशेष गुणों में शील और लज्जा को प्रधान गुण माना गया है। ऋग्वेद 8-33-19 में कहा गया है कि लज्जाशील नारी नीचे की ओर देखती है ऊपर की ओर नहीं, उसे अपने अंगों को सदैव आवृत रखना चाहिए क्योंकि सदाचार की शिक्षा का प्रसार नारी से ही होता है।[3] हमारे परवर्ती संस्कृत साहित्य में भी लज्जा भूषणं नारीणाम्' कहकर लज्जा को नारी का सर्वश्रेष्ठ और स्वाभाविक आभूषण बतलाया गया है। इस प्रकार उक्त कथन से विदित होता है कि वैदिक नारियाँ सदाचारिणी, सभ्य और सुशील थीं, आज की तथाकथित सभ्य कही जाने वाली आधुनिक नारी की भांति अंगों का अंग प्रदर्शन नहीं करती थीं।

वैदिक नारी घर में पत्नी के रूप में मधुर वचन बोलने वाली और अपने पति से अत्यधिक मधुरता का व्यवहार करने वाली होने के कारण अपने वैवाहिक जीवन को आनन्दमय बनाती थी। ऋग्वेद संहिता 10-32-3 के

1- ऋग्वेदसंहिता, 10-85-46/ अथर्ववेद संहिता 14-1-44

2- ऋग्वेद संहिता 3-53-4

3- अधः पश्यस्व मोपरि सुतरां पादको हर।
मा ते कशप्लको दृशन् स्त्री हि ब्रह्माबभूविथ॥
— ऋग्वेद संहिता, 8-33-19

अनुसार जो पत्नी अपने मधुरतम वचनों से अपने पति का समादर करती है यही विवाह की सुखद परिणति है।[1]

प्रसन्नचित्त स्त्रियाँ अपने पति को अत्यन्त प्रिय होती हैं। समान मन वाली स्त्रियाँ कल्याणी होती हैं, यह बात ऋग्वेद संहिता 4-58-8 यजुर्वेद संहिता 17-96 से विदित होती है।[2]

कन्या का सर्वोत्तम गुण परिश्रम बतलाया गया है, परिश्रमी कन्या दूसरों के मांगलिक अवसर पर सहयोग प्रदान करती हैं और ऐसे अव - सर पर उन्हें भी दूसरों से सहयोग प्राप्त होता था। सूर्य देव को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि यह कन्या अन्य कन्याओं के विवाहादि उत्सवों में जाकर कठिन परिश्रम करती थी, इसलिए इस कन्या के विवाहादि मांगलिक उत्सवों में अन्य नारियाँ सहयोग हेतु आती हैं, इस प्रकार यह विदित होता है कि वैदिक नारियों में परस्पर सहयोग की भावना विद्यमान थी। वे सुख और दुःख के अवसर पर परस्पर सहयोग करती थीं।[3]

1- जाया पतिं वहतु वग्नुना सुमत्।
पुंस इद् भद्रो वहतु परिष्कृतः ॥ — ऋग्वेद संहिता 10-32-3

2- अभिप्रवन्त समनेव योषाः
कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम्॥ — ऋग्वेदसंहिता, 4-58-8
यजुर्वेदसंहिता, 17-96

3- अश्रमदियमर्यमन्, अन्यासां समनं यती।
— अथर्व वेद, 6-60-2

वैदिककाल में नारियों में बालविवाह की प्रथा नहीं थी। इस युग में नारियों का विवाह युवावस्था में होता था। पारसियों के धर्मग्रन्थ अवेस्ता में यह स्पष्ट रूप से विदित हुआ है कि प्राचीन पर्सिया में 15 या 16 वर्ष की अवस्था में युवतियों का विवाह होता था।[1] चूंकि अवेस्ताकाल और ऋग्वैदिक काल लगभग समान माना जाता है, इसलिए वैदिककाल में भी लगभग 16 वर्ष में ही युवतियों का विवाह होता था। वैदिक काल में विवाह के लिए 'उद्वाह' शब्द का प्रयोग यह संकेत करताहै कि उस युग में ऋतु - दर्शन के पश्चात् ही कन्याओं का विवाह होता था। क्योंकि विवाह के पश्चात् तत्काल विवाहित कन्याओं की विदाई हो जाती थी और पत्नी के रूप में वे अपने पति के साथ रहना प्रारम्भ कर देती थीं। ऋग्वेद संहिता के 10-85 विवाहसूक्त से विदित होता है कि सद्यः परिणीता वधू पूर्णतया युवती थी और विवाह के अवसर पर विकसित अंगोंवाली थी और मंत्र में यह भी वर्णित है[2] कि उसमें युवावस्था इतनी तीव्र थी कि वह पति संगम की इच्छा कर रही थी।

1- पोजीशन आफ वूमेन इन हिन्दू सिविलीजेशन्, डा०ए०एस०आल्तेकर, पृ० 49

2- अन्यामिच्छ प्रफर्व्यम् संजायां पत्यासृज।

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थायेभिः सखायो यन्ति नो वरेयम्॥

— ऋग्वेदसंहिता, 10-85-22

ऋग्वेद 10-85-46 में यह इच्छा व्यक्त की गयी है कि वह अपने श्वसुर के घर जाकर अपने घर की साम्राज्ञी बने।[1] इससे यह विदित होता है कि वैदिक काल में लगभग 16 से 18 वर्ष के मध्य काल में कन्याओं का विवाह होता रहा होगा और दोनों वर कन्या विवाह के समय युवक और युवती विवाहोचित अवस्था के होते रहे होंगे।

अथर्व वेद 2-305 में कहा गया है कि यह कन्या पति की कामना से आई है और मैं पत्नी की कामना से आया हूँ। मैं ऐश्वर्य के साथ यहाँ आया हूँ।[2] अथर्व वेद में आगे कहा गया है कि इन शुद्ध, पवित्र यज्ञ करने के योग्य स्त्रियों को विद्वानों के हाथ पृथक् पृथक् देता हूँ। इन कथनों से स्पष्ट है कि वैदिक काल में बाल-विवाह का प्रचलन नहीं था।

वैवाहिक विधि के पश्चात् श्वसुर गृह में वधू के अनेक अधिकारों और कर्तव्यों का विधान प्राप्त होता है। ऋग्वेद 10-85 अथर्व वेद - 14-1 तथा 2 वर वधू के कर्तव्य बतलायें गये हैं। तदनुसार जब नव वधू अपने माता के घर से श्वसुर के घर जाती है उसका पति के घर में अत्यधिक

1- साम्राज्ञी श्वशुरे भव साम्राज्ञी श्वश्रवां भव — ऋग्वेदसं0 10-85-46

2- आ यमगन् पतिकामो, जनिकामो इमागमम्।
अश्वः कनिक्रदद् यथा, भगेनाहं समागमम्॥ — अथर्व0 2-30-5

3- शुद्धा पूता योषितो यज्ञिया इमाः।
ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् ददामि॥— अ0वे0 11-1-27

स्वागत होता था और वहाँ नववधू को स्वर्णजटित रथ में बैठाया जाता था। अथर्व वेद 14-2-30 के अनुसार यह कहा गया है कि सूर्य पुत्री सूर्या सोने के बिछौने से युक्त सुन्दरता को धारण करने वाले रथ पर अपने महान् सौभाग्य के लिए आरूढ़ हुई थी।[1]

यद्यपि विवाह के अवसर पर नववधू नाना प्रकार के स्वर्णालंकारों से अलंकृत की जाती थी, किन्तु उसका वास्तविक सौभाग्य तो उसका पति ही माना जाता था।[2] अथर्व वेद 1-14-4 के अनुसार वर और वधू का भाग्य उभयनिष्ठ होता है। फिर भी पिता अपनी कन्या का विवाह गुणी शारीरिक रूप से हृष्ट-पुष्ट और सभी प्रकार के दुर्व्यसनों से मुक्त वर के साथ करता था तथा शेष शाकुन्तलम् नाटक में कविवर कालिदास के द्वारा कण्व के मुख से कहलाये गये वचनानुसार 'भाग्याधीनमतः परम् न खलु तद्वाच्यम् वधूबन्धुभिः' की तरह भाग्याधीन होता था।

पतिव्रता नारी पति को अत्यधिक प्रिय होती थी।[3] जो पत्नी अपने पति के प्रतिकूल आचरण नहीं करती और सर्वदा उसके अनुकूल रहती वह पति को अधिक प्रिय होती थी और ऐसी नारी ऐश्वर्य और सौभाग्य से युक्त होती थी।[4]

1- रुक्मप्रस्तरणम् वह्यम विश्वारूपाणि बिभ्रतम् आरोहत् सूर्या सावित्री, बृहते सौभगायकम्।। — अथर्व0 14-2-30
2- इयमग्ने नारी पतिं विदेष्ट। सोमो हि राजा सुभगां कृणोति।। अथर्व0 2-36-3
3- अननद्या पतिजुष्टेव नारी — ऋग्वेद- 1-73-3
4- एवा भगस्य जुष्टेयमस्तु नारी। संप्रिया पत्या विराधयन्ती।।-अथर्व0 2-36-4

अथर्व वेद एक मंत्र 10-1-3 से विदित होता है कि कुछ पति अपनी पत्नी का परित्याग कर देते थे, ऐसी संकटपूर्ण स्थिति पर उस नारी का आश्रय उसका पितृकुल होता था।[1]

वैदिक काल में नारियों के पुनर्विवाह का भी विधान था, लेकिन यह आपद् धर्म ही होता था। अथर्ववेद 9-5-27 में कहा गया है कि जो स्त्री पहले एक पति को प्राप्त करके बाद में किसी दूसरे पति से विवाह करती है यदि वे दोनों पांच प्रकार के भोजन वाली अपनी आत्मा को परस्पर समर्पित करते हैं तो फिर वे दोनों वियुक्त नहीं होते।[2]

अथर्ववेद 14-2-75 में नारी के जागरण की बात कही गयी है और उसे 100 वर्ष की दीर्घायु प्राप्त करने का निर्देश है तथा पति के घर जाकर गृहस्वामिनी बनकर रहने की बात भी संदर्भ है।[3] अथर्व वेद तो

1- जाया पत्या नु तेव कर्तारम् बन्ध्वृच्छत्। — अथर्व0 10-1-3

2- या पूर्वं पतिं वित्वा अथान्यं विन्दते परम्।
पंचौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः॥ अथर्व0 9-5-27

3- प्रबुद्ध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना।
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय॥
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो
दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु॥ — अथर्व0 14-2-75

स्त्री की मातृत्व शक्ति की सार्थकता उसके पुत्रवती होने में ही मानता है वह उससे आशा करता है कि हे नारी तू पुरूष पुत्र को जन्म दे उसके बाद भी उसे पुत्र ही उत्पन्न हो और वह पुत्रों की माता बने।[1] तथा उसके पुत्र इतने तेजस्वी हों कि वे शत्रुओं का हनन कर सकें।[2]

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में 'दुहिता विराट्' कहकर पुत्री की भी प्रशंसा की गयी है। पुत्री तेजस्विनी हो यह कहकर नारी के तेज को प्रकट किया गया है। यजुर्वेद ने तो नारी के लिए 'सहस्रवीर्या' शब्द का प्रयोग किया है।[3] जिसका तात्पर्य यह है कि वह आवश्यकता पड़ने पर सहस्रों प्रकार के पराक्रम दिखा सकती है। स्त्री में असाधारण आत्मिक शक्ति होती है जो आवश्यकतानुसार अनन्त और अमित पराक्रम दिखा सकती है। इन्द्राणी और उषा के वर्णन में ऋग्वेद नारी के लिए अनेक उदात्त भावों वर्णन किया गया है जिससे विदित होता है कि स्त्री अपने आत्म बल से और शौर्य से सदा विजय प्राप्त

1- पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमाननु जायताम्।

भवासि पुत्राणां माता, जातानां जनयाश्च यान्॥

— अथर्व० 3-23-3

2- मम पुत्राः शत्रुहणः ।। — ऋग्वेद 10-159-3

3-

करती हुई आगे बढ़ती है। इसका तात्पर्य है कि नारियाँ अन्य शिक्षाओं के अतिरिक्त युद्धादि की शिक्षा भी प्राप्त करती थीं और नारी सेना का गठन करती थीं। इन्द्राणी को सेनानी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अथर्व वेद संहिता के अनुसार वह अजेय है और सेना के आगे-आगे चलती है।[1] तैत्तिरीय संहिता में यह कहा गया है कि इन्द्राणी सेना की देवता है। वह सेना में प्राणसंचार करती है।[2]

इस प्रकार विदित होता है कि वैदिक काल में समाज में हर क्षेत्र में नारी का विशिष्ट स्थान था। वह श्रद्धा और आदर की पात्र थी। उसमें बल था, शक्ति थी और सौन्दर्य था। वह तेजस्विनी थी।

—

1- अथर्व वेद संहिता, 1-27-2

2- इन्द्राणी वै सेनायै देवता।
सैनामेय सेनां सश्यति।। — तै०सं० 2-2-8

तृतीय अध्याय

पुराण में नारी

(ब्रह्मपुराण के नारी-पात्र)

तृतीय अध्याय

पुराण में नारी :-

वैदिककाल की भांति पुराण और महाकाव्यकाल में भी कन्या जन्म की अपेक्षा पुत्रजन्म का अतिशय महत्व रहा है। महाभारत में पुत्रजन्म की अत्यधिक प्रशंसा की गयी है। कविवर बाणभट्ट ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'कादम्बरी कथा' में एक पौराणिक सन्दर्भ में यह कहा है कि सम्राट तारापीड की महारानी वसुमती एक समय उज्जयिनी स्थित महाकाल मंदिर में भगवान् महाकालेश्वर की अर्चना-वन्दना हेतु गयी थीं, वहाँ पर महाभारत की कथा का वाचन किया जा रहा था, उस समय महाभारत में उल्लिखित यह बात कही जा रही थी कि जिनके पुत्र नहीं हैं, उन्हें शुभ लोकों की प्राप्ति नहीं होती है।[1] यह बात सुनकर पुत्राभाव से दुःखी महारानी वसुमती का मुख मलिन हो गया था और उन्होंने राजसुख का परित्याग कर दिया था और तब राजा ने उसे पुत्र प्राप्ति के लिए देवताओं ऋषियों और मुनियों की पूजा करने की सलाह दी थी।[2]

1- अपुत्राणाम न सन्ति शुभाः लोकाः पुन्नाम्नो नरकात् त्रायते इति पुत्रः।
— चौखम्बा संस्करण, कादम्बरीकथा-बाण, पृ0 192

2- अधिकं कुरु गुरुषु भक्तिम्, द्विगुणाम् उपपादय देवतासु पूजाम्, ऋषिजन-सपर्यासु दर्शितादरा भव। — कादम्बरीकथा, पृ0 194

पुत्रजन्म के लिए लालायित अनेक पौराणिक राजाओं की चर्चा करते हुए कादम्बरी में कहा गया है कि मगध के राजा बृहद्रथ ने विश्वा - मित्र की कृपा से अतुल भुजबल वाले जरासन्ध नामक पुत्र को प्राप्त किया था। इसी प्रकार परिणतअवस्था वाले राजा दशरथ ने विभाण्डक महामुनि के पुत्र ऋष्यशृंग की कृपा से श्री राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न आदि चार प्रतापी और यशस्वी पुत्रों को प्राप्त किया था।[1]

पुराणों एवम् महाभारत में अनेक स्थलों में पुत्र-जन्म की प्रशंसा की गयी है। पितरों के पावनार्थ पुत्रों की इच्छा की जाती थी।[2] इसी - लिए तीन एषणाओं में पुत्रैषणा भी समाज में तीव्रता से विद्यमान थी। पुत्र लाभ सभी लाभों से विशिष्ट माना जाता था।[3]

1- श्रूयते हि पुरा चण्डकौशिक प्रसादात् मगधेषु बृहद्रथो नाम राजा अतिभुज बलम् अप्रतिरथं जरासन्धं नाम तनयं लेभे। दशरथश्च राजा परिणतवया अपि विभाण्डक महामुनिसुतस्य ऋष्यशृंगस्य प्रसादात् चतुरः पुत्रान् अवाप।

— कादम्बरीकथा, पृ0 194

2- पुत्रानिच्छेत् पावनार्थम् पितृणाम्। — महाभारत आ0 68-47-69

3- पुत्रलाभो हि कौन्तेय सर्वलाभाद्विशिष्यते

— महाभारत अनु0पर्व 50-96-103

शारीरिक रचना तथा तज्जन्य दुर्बलता के कारण कन्याजन्म पिता के लिए कष्टकारक माना जाता था। शीलगुण से हीन कन्या से कुल के कलंकित होने का भय रहता है।[1] इसलिए कन्या जन्म को धिक्कारजनक शब्दों से स्मरण किया गया है।[2] कालिदास ने कन्या को परकीय अर्थ कहा है, पिता इसके परिगृहीता के अन्वेषण में चिन्तित रहता है और उसके योग्यतम परिग्रहीता के सौंपने पर राहत की सांस लेता है।[3] इसलिए उत्तररामचरितम् नाटक के प्रणेता कविवर भवभूति ने कहा है कि समाज में निर्भय होकर व्यवहार करना चाहिए नारी और वाणी की साधुता के सम्बन्ध में जन दुर्जन होते हैं।[4]

1- कृच्छ्रम् हि दुहिता कित'
— महाभारत आदिपर्व 147-11

2- धिक् कन्या प्ररोहणम्' — म0भा0उद्योगपर्व, 95-15-16

3- अर्थो हि कन्या परकीय एव
तामद्य सम्प्रेष्य परिगृहीतुः
जातो ममायं विशदः प्रकामम्
प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा,॥— अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 4-23

4- सर्वथा व्यवहर्तव्यम् कुतोह्यवचनीयता
यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः ॥ — उ0रा0, प्र.अं. 5

कन्या शब्द के पर्यायवाची 'दुहितृ' शब्द का वेदों से लेकर पुराणकाल एवम् महाकाव्यकाल और उसके परवर्ती काल तक प्रचुरता के साथ प्रयोग किया गया है। यास्क ने ई०पूर्व 400 वर्ष पहले 'दुहिता' शब्द की जो व्याख्या की है उससे भी दुहितृ(कन्या) जन्म के कष्टकारक होने की बात ध्वनित होती है। यास्क की इस व्याख्या के अनुसार बड़े दुःख से जिसका हित-साधन हो वह दुहिता है, अथवा जिसका हित दूर में स्थित है या जो पिता का अर्थदोहन करती है उसे 'दुहिता' कहते हैं।[1] महर्षि कण्व जैसे जितात्मा को अपनी दुहिता शकुन्तला के प्रतिकूल भाग्य के प्रशमनार्थ सोमतीर्थ जाना पड़ा था, अतएव कहा जाता है कि दुहिता कष्टकारिणी है।[2] राजा दुष्यन्त के द्वारा कण्व दुहिता शकुन्तला के परित्याग के बाद कण्वशिष्य शार्ङ्गरव की यह फटकार कि जिस प्रकार राजा दुष्यन्त तुम्हें स्वेच्छाचारिणी के रूप में चित्रित कर रहे हैं और तुम वैसी ही हो तो कुल कलंकिनी पुत्री से पिता को क्या लाभ होगा।[3] इस प्रकार उक्त सन्दर्भों से यह विदित होता है कि

1- दुहिता, दुर्हिता, दूरेहिता, दोग्धिपितरम् वा दुहिता' —

— यास्क — निरुक्त

2- कृच्छ्रं हि दुहिता किल, महाभारत, आदिपर्व, 147-11।

3- यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा।

त्वमसि किं पितुरुत्कुलया त्वया॥

— अभिज्ञान शाकुन्तलम्, 5-27 एवम्

पद्मपुराण

कन्या जन्म न केवल गृहस्थों के लिए कष्ट का स्रोत मानी जाती थी-प्रत्युत वीतरागी महर्षि कण्व जैसे महामुनि ने भी कष्ट का अनुभव किया था। इसी सन्दर्भ में कथा सरित्सागरकार का यह कथन भी द्रष्टव्य है कि कन्या शोक का कन्द है और पुत्र शरीरधारी आनन्द है।[1]

किन्तु उपर्युक्त सन्दर्भों से यह तात्पर्य बिल्कुल नहीं निकाला जा सकता कि पौराणिक काल और महाकाव्यकाल में समाज में कन्यायें नितान्त अप्रिय और अवांछित थीं। कन्याओं अथवा दुहिताओं को जो सामान्य रूप से कष्टकारक कहा गया है उसका कारण उनकी सुरक्षा विवाह और उनके भविष्य की चिन्ता रही है। पौराणिक काल में ऐसे भी सन्दर्भ प्राप्त होते हैं जिनसे प्रतीत होता है कि पिता को पुत्री उतनी ही प्रिय होती थी जितना उसे पुत्र प्रिय होता था। महाभारत 1-145-36 में बकासुर के कथानक में यह बात बतलाई गयी है कि पिता अपनी रक्षा के लिए न तो पुत्री का बलिदान करना चाहता है और न पुत्र का। उसका कथन है कि कुछ लोग पिता का अधिक स्नेह पुत्र में और कुछ लोग पुत्री में पिता का अधिक स्नेह मानते हैं किन्तु मेरे लिए तो पुत्र और पुत्री दोनों में बराबर का स्नेह है।[2]

1- शोककन्दः खल कन्या हि सानन्दः कायवान् सुतः। — कथासरित्सागर, 28-6

2- मन्यन्ते केचिदधिकं स्नेहं पुत्रे पितुर्नराः।
कन्यायाम् चैव तु पुनर्मम तुल्यौ उभौ मतौ॥
— महाभारत, 1-145-36

इसके अतिरिक्त इतिहास में पितृहन्ता पुत्र के उदाहरण तो प्राप्त होते हैं किन्तु माताऔर पिता की हत्या करने वाली पुत्री का उदा - हरण अप्राप्त है। बल्कि सन्दर्भों से यह विदित होता है कि कुन्ती ने अपनी सेवा द्वारा प्रसन्न कर दुर्वासा के क्रोध या शाप से अपने पिता कुन्तिभोज की रक्षा की थी।[1] इसी प्रकार लोपामुद्रा ने महर्षि अगस्त्य के क्रोध से अपने पिता तथा उसके साम्राज्य-रक्षा हेतु महर्षि के साथ अपने विवाह की स्वीकृति दी थी। इस प्रकार स्पष्ट है कि कन्या भी समाज में अभिनन्दित रही है और अपने माता-पिता के संकट के अवसर पर उनकी रक्षा के हेतु सदैव तत्पर और अग्रणी रही है।

पुराणों में जहाँ एक ओर कन्या जन्म से अधिक निराशा के विचार प्राप्त होते हैं वहीं दूसरी ओर कन्याजन्म से आनन्दित होने के भी उदाहरण हैं। राजा अश्वपति अपनी पुत्री सावित्री के जन्म से प्रसन्न हुआ था।[2] शुक्राचार्य को अपनी पुत्री देवयानी अत्यन्त प्रिय थी।[3]

1- महाभारत III 303

2- वही, अ0277-23-24 ब्रह्मवैवर्तपुराण अ0 15-28

3- आदिपर्व 155-45-46

महर्षि दम की कृपा से विदर्भ के राजा भीम को एक कन्या रत्न की प्राप्ति हुई थी, जिससे वह अत्यन्त प्रेम करता था।[1] पुत्र के अभाव में कन्या जन्म को निष्फल नहीं माना जाता था। गार्ग्य ऋषि अपनी मानसी पुत्री से अत्यन्त प्रसन्न हुए थे।[2] इसी प्रकार आश्रमवासी राजर्षि गाधि भी अपने यहाँ कन्या जन्म से आनन्दित हुए थे,[3] और देवल ऋषि की कन्यासुव - र्चला ने अपने जन्म से उन्हें सन्तुष्ट किया था।[4]

पुराणकाल में वंशवृद्धि के लिए पुत्री के अभाव में पुत्री के द्वारा ही पुत्र प्राप्त करने की प्रथा थी। सम्राट चित्रवाहन ने अपनी पुत्री चित्रांगदा से ही अपनी वंशपरम्परा चलाई थी।[5] जैसे दूसरों के पुत्रों को गोद लेकर दत्तक पुत्र के द्वारा वंशवृद्धि की व्यवस्था थी, वैसे ही सन्तान - हीन दम्पति दूसरों की पुत्री को अपनी दत्तक पुत्री बनाकर उससे अपनी वंश - वृद्धि चाहते थे, तथा उससे अत्यन्त प्रेम करते थे। सम्राट् कुन्तीभोज ने शूर- सेन से उनकी बड़ी पुत्री को लेकर अपनी दत्तक पुत्री बनाया था जिसका नाम

1- महाभारत, आरण्यकपर्व 50-3

2- वही, शल्य 51-3-4

3- वही, अनुशासन - 7-7

4- वही, शान्ति, परिशिष्ट पेज 2036-50

5- वही, आदिपर्व 207-19 -20

कुन्ती था। बाद में कुन्ती ने सेवा के द्वारा महर्षि दुर्वासा को प्रसन्न कर अपने पिता कुन्तीभोज की रक्षा की थी।[1] सम्राट शान्तनु ने पुत्र कृप और पुत्री कृपी का एक साथ लालन और पालन किया था तथा दोनों पर उसका समान प्रेम था।[2] इसी प्रकार महर्षि कण्व ने शकुन्तला को अपनी पुत्री बना कर उसका अत्यन्त स्नेह से लालन पालन किया था।[3] कविवर कालिदास ने अपने प्रसिद्ध नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम में लिखा है कि वह शकुन्तला कुलपति कण्व का प्राण थी।[4] शकुन्तला की विदाई में महर्षि कण्व की आँखे अश्रुपूरित हो गयी थी, हृदय तज्जनित वियोग दुःख से दुःखी हो गया था और कण्ठ स्तम्भित हो गया था और उनकी विकलता पुत्री के स्नेह से अत्यधिक बढ़ गई थी।[5]

1- महाभारत, आदिपर्व, 104-2

2- आरण्यक, 94-16-21

3- आदिपर्व, 120-16

4- सा खलु कुलपतेः कण्वस्य उच्छ्वसितम्।

— अभिज्ञान शाकुन्तलम्, चतुर्थ अंक,

5- यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठस्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यम् मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनया विश्लेषदुःखैर्नवैः ॥— शाकुन्तलम्, च0अंक

भारतीय संस्कृति में कन्या को विशेष आदर प्राप्त था। महाभारत में एक स्थल पर यह कहा गया है कि कन्याओं के रूप में लक्ष्मी घरों में नित्य निवास करती है।[1] इसी प्रकार प्रवास से लौटने पर अयोध्या में कन्याओं को आगे करके श्री राम की अगवानी की गयी थी और श्री राम का अभिषेक सर्वप्रथम कन्याओं के हाथों से ही हुआ था।[2]

जिस प्रकार पुत्र इहलोक और परलोक को सुख का साधन समझा जाता है उसी प्रकार कन्या भी माता-पिता के लिए सुख का साधन रही है, आपत्तियों से रक्षा करने के लिए ही अपत्य की आकांक्षा की जाती रही है, रक्षा का यह कार्य (अपत्य रूप) पुत्र और पुत्री दोनों करते रहे हैं। अनेक पुराणों में प्राप्त कथानकों से विदित होता है कि जरत्कारु कुन्ती, लोपामुद्रा, माधवी, सुकन्या, शर्मिष्ठा आदि ने अपने स्वार्थ त्याग कर पितृकुल की रक्षा की थी। इससे स्पष्ट है कि पुराण काल में पुत्र की भांति पुत्रियों का भी महत्त्व था। पुत्री अपने शील और सदाचार से अपने पितृकुल का नाम उज्ज्वल करती थी और विपत्ति में पुत्र की भांति अपने कुल की रक्षा करती थी ।

1- नित्यं निवसते लक्ष्मीः कन्यकासु प्रतिष्ठिता।
— महाभारत, 13-11-14

2- रामायण, । 131, 18, 6।

3- इत्यर्थम् इष्यते पत्यं तारयिष्यति मामिति, — महा0आदिपर्व, 147-4

पुत्रियाँ को अपने कुल के चरित्र की निकषोपल(अर्थात् चरित्रकसौटी) मानी जाता था।[1] वह पुत्र के अभाव में परम्परया वंशवृद्धि का कारण होनेके कारण पुत्र के समान ही समझी जाती रही है। मातामह के घर में दौहित्र(दुहिता के पुत्र) का अतिशय सम्मान होता था। दौहित्र को मातामह के लिए पिण्डदान करने का अधिकार होने के कारण वह पुत्र के समान प्रिय होता था।[2] मातामह के श्राद्ध में दौहित्र की उपस्थिति अत्यन्त पवित्र और श्लाघनीय मानी जाती थी।[3]

कन्यायें जहाँ एक ओर अपने माता-पिता के लिए कल्याण का साधन होतीं थी वहीं दूसरी ओर वे उनके पुण्य का साधन भी बनती थी। कन्यादान को महादान या पृथ्वीदान के समान माना जाता था, इसलिए माता-पिता कन्यादान से पुण्यलाभ प्राप्त करते थे।[4] इसलिए कथा सरित्सागरकार' का कथन है कि पुत्र जन्म से अति आनन्दित और कन्या जन्म से दुःखी होने का कोई कारण नहीं है।[5] अनेक पौराणिक राजाओं — निमि, मरुत, मनिराज

1- महाकुलस्य चारित्र्यवृत्तेन निकषोपलम् —
महाभारत, अनु0 पर्व 55-20

2- पुत्रदौहित्रयोरेव विशेषो नास्ति धर्मतः —
महाभारत, अनु0 पर्व 80-13

3- अनुशासन पर्व, महाभारत, 238-14

4- पोजीशन आफ वूमेन इन हिन्दू सिविलीजेशन, आल्तेकर, पृ0 5

5- कथासरित्सागर, 28-27

भगीरथ और लोमपाद आदि नेमहर्षियों को अपनी कन्याओं का दान कर पुण्य प्राप्त किया था। वैसे भी समाज में कन्या को देवी या शक्ति का रूप माना जाता था। नवदुर्गा के प्रतीक के रूप में कन्याओं का वन्दन, अर्चन और पूजन पुराणकाल से आज तक होता चला आ रहा है।[1] कन्याओं का रूप अत्यंत मांगलिक माना जाता रहा है। राज्याभिषेक रणप्रयाण, तथा समाज के अन्य मांगलिक और धार्मिक कार्यों में कन्यादर्शन औरउसकी उपस्थिति वन्दनीय मानी जाती रही है। आज भी हिन्दू समाज में विवाह के अवसर पर मंगलार्थ प्रथम सिन्दूर दान और आभूषण अलंकरण आदि कन्या द्वारा ही विवाहोद्यता युवती के लिए किया जाता है।

सम्यकुलों में तो विदुषी और सर्वगुण सम्पन्न कन्याओं को विशेष आदर प्राप्त रहा है। कविवर कालिदास ने कुमारसंभव में पार्वती के लिए कहा है कि यह कन्या तो कुल का प्राण ही है।[2]

किन्तु पिता के लिए कन्या का जन्म जो कष्टकारक कहा गया है उसका कारण उसका भावी जीवन है।[3] उसका विवाह किसके साथ किया

1- मार्कण्डेयपुराण,

2- कनीयम् कुल जीवितम्, — कुमारसम्भवम्, 6-63

3- पुत्रीतिजाता महतीह चिन्ता
कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः
गत्वा सुखं प्राप्स्यति वा न वेति
कन्या पितृत्वं खलु नाम कष्टम्॥— पंचतंत्र मित्रभेद, 5

जाय? वह अपने पति के घर जाकर सुख प्राप्त करेगी अथवा नहीं?उसका भावी जीवन सुखी रहेगा अथवा नहीं? ये प्रश्न ही माता-पिता को सालते रहे हैं। एक बार कन्या अपने भावी जीवन में सुस्थापित हो जाय तो फिर माता-पिता की चिन्ता निर्मूल हो जाती है। यह आम धारणा रही है कि कन्या का पिता लोक में या तो अपने सदृश व्यक्ति से अथवा अपने से हीनतर वाले व्यक्ति से अवश्य ही अपमान को प्राप्त होता है, चाहे वह इन्द्र के समान ही इस लोक में क्यों न हो।[1]

इसलिए कन्या के सम्बन्ध में यही चिन्ता ही माता-पिता के लिए कष्टकारक रही है, अन्यथा कन्या जन्म पुत्र जन्म की भांति अभिनन्दनीय रहा है। कन्या पुण्यस्वरूप सुमांगलिक और माता-पिता के लिए सुख का हेतु होने के कारण समाज के लिए अभीप्सित रही है।

कन्या के बाद विवाहोत्तर उसका द्वितीय रूप भार्या का आता है वह जाया का रूप धारण करती है। पति और पत्नी का यह साहचर्य दाम्पत्य के रूप में परिणत हो जाता है। मनुस्मृति और आपस्तम्ब धर्मशास्त्र के अनुसार जाया और पति में कोई विभाग नहीं होता। पाणिग्रहण के बाद

1- रामायण, वाल्मीकि, 2-119-35-36

समस्त कार्यों में दोनों का सहभागित्व होता है, चाहे वे धर्म के कार्य हों अथवा अर्थलाभ आदि के कार्य हों।[1] वैदिक साहित्य का तो यह कथन है कि जब तक व्यक्ति का विवाह नहीं हो जाता तब तक वह अपूर्ण है और जब उसका विवाह हो जाता है और पिता बनता है वह पूर्ण होता है। वस्तुतः गृहस्थाश्रम के सुख का आधार अनुकूल दाम्पत्य जीवन ही है। उत्तर-रामचरितम् नाटकम् में कविवर भवभूति ने श्रीराम के द्वारा उत्तम और आदर्श दाम्पत्य की सम्बन्ध में जो बात कही है वही गृही जनों के सुख का मूल है, तदनुसार वह दाम्पत्य सुख और दुःख में अद्वैत अर्थात् एक रूप रहने वाला, सुख दुःख की सभी दशाओं के साथ रहने वाला, हृदय को विश्राम देने वाला, वृद्धावस्था के द्वारा अहार्य रस वाला और विवाहकाल से लेकर मृत्यु पर्यन्त परिपक्व प्रेम के सार वाला होता है।[2] ऐसे सुख के सार वाले दाम्पत्य में पुरुष के साथ नारी का सहभागित्व होता है। यह

1- अर्धो वा एष आत्मनस्तस्माद्यावज्जायां न विन्दते अर्धो तावद् भवति, अथ यदैव जायां विन्दतेऽथ प्रजायते तर्हि सर्वो भवति। — शतपथब्रा० 5-16-10

2- अद्वैत सुखदुःखयोरनुगतम् सर्वा स्ववस्थासुयत् विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः। कालेनावरणात्ययात् परिणते यत्स्नेहसारे स्थितम् भद्रतस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते॥

— भवभूति, उत्तररामचरितम्, 1-39

कहना सार्थक होगा कि गृहस्थाश्रम रूपी रथ के नारी और पुरुष दो पहिए हैं जिनके बिना यह रथ गतिमान नहीं रह सकता। मनु का कथन है कि विप्रों के अनुसार भर्ता और जाया अर्थात् दम्पति एक रूप होते हैं।[1]

पद्मपुराण का कथन है कि यदि जाया और पति में पूर्णरूप से अनुकूलता है तो धर्म, अर्थ और काम(त्रिवर्ग) की प्राप्ति सहज होती रहती है। अनुकूल कलत्र जिस घर में विद्यमान है वह घर स्वर्ग है। गृहस्थाश्रम सुखार्थ होताहै और गृहस्थाश्रम का सुख पत्नीमूलक होता है।[2] महाभारतकार का कथन है कि चाहे घर पुत्रों, पौत्रों वधुओं और सेवकों से क्यों न भरा हो तो भी भार्या से रहित वह घर गृहस्थ के लिए शून्य ही होता है।[3] जिस घर में भार्या और भर्ता परस्पर वशवर्ती होते हैं वहां धर्म अर्थ और काम की वर्षा होती है।[4]

1- विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्ता। सा स्मृताङ्गना। –मनुस्मृति 9-45

2- आनुकूल्यम् हि दाम्पत्योस्त्रिवर्गोदय हेतवे।
अनुकूलं कलत्रं चेत् त्रिदिवेन किंततः॥
गृहाश्रमः सुखार्थाय पत्नीमूलं हि तत्सुखम्॥
— पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, 223-36-7

3- पुत्रपौत्रवधूभृत्यैराकीर्णमपि सर्वतः
भार्याहीनगृहस्थस्य शून्यमेव गृहं भवेत्॥ –महाभारत 10-4-4

4- यदा भार्या च भर्ता च परस्परवशानुगौ।
तदा धर्मार्थकामानां त्रयाणामपि संगतम्॥ –मार्कण्डेय पुराण 7-7।

भार्या की प्रशंसा में और उसके गौरवगान में अनेक सुन्दर-सुन्दर कथन प्राप्त होते हैं। भार्या पुरुष का अर्धांग है।[1] इसीलिए शिव के अर्धनारीश्वर रूप का साहित्य में उदात्त वर्णन प्राप्त होता है। रोगार्त होने पर भी भार्या के समान उत्तम कोई वैद्य नहीं होता, वह सभी प्रकार के दुःखों में औषधि का कार्य करती है।[2] इसीलिए यह सत्य कहा गया है कि घर को घर नहीं कहा जाता है, वस्तुतः गृहिणी को ही घर कहा जाता है, गृहिणी से हीन घर वस्तुतः निर्जन वन के समान है।[3]

कविवर कालिदास ने तो गृहिणी को अपने पति की सचिव, सच्ची मित्र और ललितकलाओं में 'प्रिय शिष्या' के रूप में चित्रित किया है।[4] इसलिए धर्मशास्त्रों में यह सलाह दी गयी है कि पति को कभी भी अपनी भार्या से अप्रिय वचन नहीं बोलना चाहिए क्योंकि रति, प्रीति और धर्म भार्या के अधीन होता है।[5]

1- अर्धम् भार्या मनुष्यस्य । महाभारत आदिपर्व, 68-36

2- न च भार्यासमं किंचित् विद्यते भिषजां मतम्।
औषधं सर्वदुःखेषु सत्यमेतद् ब्रवीमिते॥ — महाभारत, 3-58-29

3- न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते।
गृहं तु गृहिणीहीनम् कान्ताराद् अतिरिच्यते॥ महाभारत, 10-144-6

4- गृहिणीसचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ। —रघुवंश08-67

5- अप्रियोक्तोऽपि दाराणां न ब्रूयादप्रियं बुधः
रतिं प्रीतिं च धर्मं च तदायत्तमवेक्ष्य च॥— महाभारत, 1-98-39

नारी का भरण-पोषण करने के कारण ही वह भर्ता कहा जाता है और उसका पालन करने के कारण उसे पति कहा जाता है तथा यदि उक्त गुण उस पुरुष में नहीं है तो न ही उसे भर्ता कहा जायेगा और न पति ही कहा जायेगा।[1]

ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार जाया पति की सर्वोत्तम मित्र है।[2] उधर महाभारत भी भार्या को दैवकृत सखा मानते हुए[3] उसे व्यक्ति के मित्रों में सर्वश्रेष्ठ सखा घोषित किया है[4] और सर्वोपरि सप्तपदी के अवसर पर अग्नि को साक्षी देकर इस अटूट मैत्री की पूर्व सन्ध्या पर दम्पति द्वारा की गयी सहधर्मचरण की प्रतिज्ञा मरणान्तक होती है। परस्पर साथ रहने और सुख दुख में समान रहने का पति-पत्नी के इस धर्म का उल्लंघन नहीं किया जा सकता, यह दम्पति का परम धर्म है।[5]

फिर वही आदर्श नारी है जिसका पति जिससे सन्तुष्ट रहता है।[6] यह नारी का सर्वोपरि कर्तव्य होता है कि वह अपने पति को सदैव प्रसन्न रखे क्योंकि वह उसे अमित सुखों को देने वाला होता है।[7]

1- भरणाद् हि स्त्रियो भर्ता पालनाच्चहि पतिः स्मृतः ।
गुणस्यास्य निवृत्तौ तु न भर्ता न पुनः पतिः ॥— महाभारत, 12-272-97

2-सखा ह जाया ऐतरेयब्राह्मण, 7-3-13

3- भार्या दैवकृतः सखा, महाभारत, 1-37-73

4- भार्या च सुहृदाम वरा । महाभारत, 4-22-17

5- अन्योन्यस्याव्यभीचारो भवेदामरणान्तिकः
एष धर्म, समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः ॥ — मनुस्मृति 9-101

6- सा हि स्त्रीत्यवगन्तव्यायस्यां भर्ता नु तुष्यति, महा0 12-155-20

7- अमितस्य च दातारं भर्तारं कानसेवते। 'रामायण, 2-40-3

जिस प्रकार काव्य अपने मधुर मधुर शब्दार्थ से अपने पाठकों को आकर्षित कर उसे कुमार्ग से सन्मार्ग की ओर ले जाता है उसी प्रकार कान्ता अपने मधुर वचनों से अपने पति को प्रभावित कर उसे सन्मार्ग की ओर ले जाती है।[1]

किम्बहुना नारी के भार्यात्व की प्रशंसा पुराणों और महाकाव्यों में बहुशः प्राप्त होती है। भार्या के समान पुरुष का कोई दूसरा मित्र नहीं है।[2] पुरुष ही भार्या का आश्रय लेकर पुत्र रूप में जन्म लेता है। इसलिए भार्या का 'जाया' यह नाम सार्थक है। 'जाया' पुत्र रूप फल की जननी है।[3] नगर हो या वन सर्वत्र मनुष्य को विश्राम देने वाली भार्या होती है। भार्या के बिना पुरुष का लोक में विश्वास नहीं किया जाता है। इसलिए तीन प्रकार की लोकैषणाओं में भार्यैषणा' की तीव्रता भी समाज में प्रचुरता से विद्यमान रही है। भार्या के साथ ही मनुष्य धार्मिक क्रियाओं को सम्पादित कर सकता

1- काव्यं यशसे र्थकृते ·········· कान्तासीमततयोपदेशयुजे'—
— काव्यप्रकाश, 1-2

2- नास्ति भार्यासमं मित्रम्। बृहद्धर्मपुराण, पूर्वखण्ड 2-36

3- भार्यावन्तः क्रियावन्तः सभार्या गृहमेधिनः।
भार्यावन्तः प्रमोदन्ते भार्यावन्तः श्रियान्विताः ॥
— महाभारत — आदिपर्व 68-4।

है। भार्या से युक्त पुरुष आनन्दित होते हैं और धन-धान्य से परिपूर्ण होते हैं।[1] एक आदर्श गृहिणी के लक्षण निम्नवत् बताये गये हैं – अपने प्रियतम के प्रति समर्पित हृदय वाली, उसके बन्धुओं और बहिनों के प्रति आदरभाव रखने वाली उसकी माँ के प्रति श्रद्धा और भक्तिभाव रखने वाली उसके सम्बन्धियों के प्रति प्रेम और सेवकों के प्रति उदार उसकी सपत्नियों के प्रति मुस्कानयुक्त, मित्रों के प्रति नम्र और उसके शत्रुओं से घृणा करने वाली होती है।[2]

उपर्युक्त गुणों से युक्त भार्या को पतिव्रता की संज्ञा दी गयी है। पुराणों तथा संस्कृत-साहित्य के अन्य ग्रन्थों में पतिव्रता नारी की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। जिस प्रकार गंगा के जल में स्नान करने से शरीर पवित्र हो जाता है उसी प्रकार पतिव्रता नारी का दर्शन लाभ कर घर पवित्र हो जाता है।[3] पतिव्रता नारी का चरण जिस जिस भूभाग का स्पर्श करता है वह स्थान तीर्थ हो जाता है।[4] वस्तुतः गृहस्थ उसी को समझना चाहिए

1- भार्यावन्तः क्रियावन्तः सभार्या गृहमेधिनः।
   भार्यावन्तः प्रमोदन्ते भार्यावन्तः श्रियान्विताः ॥–महाभारत, आदि 068-4।

2- निर्व्याजदयिते ननान्दृषु नता श्वश्रूषु भक्ता भव।
   स्निग्धा बन्धुषु वत्सला परिजने स्मेरा सपत्नीष्वपि।
   पत्युर्मित्रजने सनम्रवचना खिन्ना च तद्द्वेषिषु
   स्त्रीणां संवननं नतभ्रु तदिदं वीतौषधं भर्तृषु॥–बालरामायण, 4-44

3- यथा गंगावगाहेन शरीरं पावनं भवेत्। तथा पतिव्रतां दृष्ट्वा सदनं पावनं भवेत्।
   स्कन्दपुराण, ब्रह्म0 7-13

4- पतिव्रतायाश्चरणो यत्र यत्र स्पृशेद् भुवम्।
   सतीर्थभूमिर्मान्येति नात्र भारोऽस्ति, पावनः ॥ वही, 7-9

जिसके घर में पतिव्रता नारी है।[1] इस पृथ्वीतल में जितने भी तीर्थ दिखाई देते हैं वे सभी सती नारी के चरणों में विद्यमान हैं और सभी देवताओं का तेज, मुनियों का वर्चस सती के शरीर में स्थित है। सती के चरणरज से वसुन्धरा पवित्र और धन्य बनी हुई। सती नारी की उपस्थिति मात्र से सभी पाप विलीन हो जाते हैं।[2]

पतिव्रता नारी सीता का लंका की भूमि पर अश्रुपात राक्षस - राज रावण के विनाश का कारण बनता है।[3]

पतिव्रता नारी महापुण्यवती होती है। वह अपने तेज से क्षण भर में त्रैलोक्य को भी भस्मसात् करने में समर्थ है।[4] सैकड़ों जन्मों के पुण्यों से किसी के घर में पतिव्रता का जन्म होता है, पतिव्रता को जन्म देने वाले माता और पिता धन्य और वन्दनीय हैं।[5]

इसी प्रकार माता के रूप में नारी की अतिशय वन्दना की गयी है। वैदिक काल में 'मातृदेवोभव' यह उद्घोष ही उसकी देवता के

1- गृहस्थः सतु विज्ञेयो यस्य गेहे पतिव्रता। – स्कन्दपुराण, ब्रह्मखण्ड, 7-14

2- पृथिव्यां यानि तीर्थानि सतीपादेषु तान्यपि।
तेजश्च सर्वदेवानां मुनीनां च सतीषु वै।
सतीनां पादरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा॥ ब्रह्मवैवर्तपुराण, 3-5-119, 127

3- प्रवादः सत्य स्वायं त्वां प्रति प्रायशोनृप।
पतिव्रतानां नाकस्मात् पतन्त्यश्रूणि भूतले॥ रामायण 6-114-65

4- त्रैलोक्यभस्मसात् कर्तुम् क्षणेनैव पतिव्रता।
स्वतेजसा समर्था सा महापुण्यवती सदा॥ – वाराहमिहिर, बृहत्संहिता पृ 5

5- शतजन्म सुपुण्यानां गेहे जाता पतिव्रता। पतिव्रता प्रसूः पूता जीवन्मुक्तः पिता तथा॥
वही, पृ06

रूप में स्तुति होने की सूचना देता है।[1] पृथ्वी, अदिति और श्रद्धा आदि की माता के रूप में स्तुति की गयी है।[2]

पुराणों में कहा गया है कि पुत्र के लिए माता के समान कोई दूसरा गुरू नहीं है। पुत्र के लिए यह आदेश है कि प्रथम वह माता की चरण वन्दना करे पश्चात् पिता को प्रणाम करे क्योंकि पिता से माता का स्थान श्रेष्ठ है।[3]

जिस प्रकार पल्लवों में तुलसीदल श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार गुरुओं के मध्य माता का स्थान श्रेष्ठ गुरू के रूप में प्रतिष्ठित है।[4]

भारतीय संस्कृति में माता का स्थान अद्वितीय है। सन्तान को शरीर में धारण करने वाली माता यदि धात्री रूप है तो उसे जन्म देने के कारण वह जननी रूप है, वह अम्बा है, मान्या है, वदान्या है।[5] उसका पुत्र बालक के समान रहता है। वह व्यक्ति तभी वृद्ध होता है, तभी दुःखी माना

1- तैत्तिरीय उपनिषद, पृ0 2

2- अदितिमाता, ऋग्वेदसंहिता विश्वेदेवसूक्त 10

3- पितुरप्यधिका माता गर्भधारण पोषणात्।
अतो हि त्रिषु नास्ति मातृसमो गुरू॥ --- बृहद्धर्मपुराण, पूर्वखण्ड, अध्याय

4- गुरूणां चैव सर्वेषां माता परमो गुरूः॥ महाभारत, 1-211-10

5- महाभारत, शान्तिपर्व, 258-24

जाता है और उसके लिए यह सम्पूर्ण जगत् तभी शून्य हो जाता है जब वह अपनी माँ से वियुक्त हो जाता है।[1] माता के समान कोई दूसरी छाया नहीं होती, माता के समान कोई दूसरी गति नहीं है, माता के समान कोई दूसरी रक्षक नहीं है और माता के समान प्रिय भी कोई नहीं होता।[2]

ब्रह्मवैवर्तपुराण का कथन है कि जिसके घर में माता नहीं है, अथवा प्रियवादिनी भार्या नहीं है उसे जंगल चला जाना चाहिए, उसके लिए जैसे निर्जन वन वैसे ही शून्य घर।[3] जो देवी समस्त भूतों में माता के रूप में प्रतिष्ठित है, वह वन्दनीय है।[4]

माता की प्रशंसा में कहा गया है कि जिस प्रकार आचार्य दश श्रोत्रियों में श्रेष्ठ होता है, उपाध्याय(गुरु)दश आचार्यों से, पिता दश उपाध्यायों से श्रेष्ठ होता है उसी प्रकार माता दश पिताओं से श्रेष्ठ होती है।[5] इसलिए

1- तदा स वृद्धो भवति तदा भवति दुःखितः
तदा शून्यं जगत् तस्य यदा मात्रा वियुज्यते॥—महाभारत, 13-368-30

2- नास्ति मातृसमा छाया नास्ति मातृसमा गतिः।
नास्ति मातृसमं त्राणं नास्ति मातृसमा प्रियः॥— वही, 258, 25, 29

3- यस्य माता गृहे नास्ति गृहिणी वा सुभाषिता।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम्॥ — ब्र०वै०पु०

4- या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥—मार्कण्डेयपु०, दुर्गासप्त०) 5-9-82

5- दशैव तु सदाचार्यः श्रोत्रियानतिरिच्यते।
दशाचार्यानुपाध्याय उपाध्यायान् पिता दश
पितॄन् दश तु मातैका सर्वां वा पृथिवीमपि
गुरुत्वेनाभिभवति नास्ति मातृसमो गुरुः॥ — महाभारत, शान्तिपर्व, 109-15-16

इस लोक में माता के समान कोई दूसरा पूजनीय नहीं है। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।' तथा गुरूणां चैव सर्वेषां माता परमको गुरुः'। इत्यादि कथनों से यही बात सिद्ध होती है। कि समाज में नारी के माता रूप की प्रतिष्ठा थी। माता की जो सेवा करता है, आदर और पूजा करता है, उससे देवता और देवियाँ प्रसन्न होती हैं।[1] भारतीय संस्कृति की यह मान्यता रही है कि जो व्यक्ति अपने माता और पिता को प्राण के समान मानता है, उसे लोक में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों ही पदार्थ हस्तामलक होते हैं।[2]

इसीलिए धर्मशास्त्रों में माता के गौरवगान में माता को पृथ्वी की मूर्ति कहा गया है।[3] प्राणियों की उत्पत्ति में माता और पिता जिस क्लेश को सहन करते हैं, सौ वर्षों में भी उनके उस क्लेश का बदला नहीं चुकाया जा सकता।[4] माता तो पिता से एक हजार गुना श्रेष्ठ मानी जाती है।[5]

1- महाभारत, अनुशासन पर्व 233-27

2- चार पदारथ करतल ताके।
गुरु पितु मातु प्राण सम जाके॥— रामचरितमानस, बालकाण्ड,
आरण्यकपर्व 196-19
मनुस्मृति, 2-228

3- माता पृथिव्या मूर्तिः।— मनुस्मृति, 2-226

4- यं माता पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥— मनुस्मृति 2-145

5- सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते।— वही, 2-145

इस प्रकार समाज में साध्वी नारियां सदैव प्रतिष्ठा प्राप्त करती रहीं है। गृहस्थाश्रम के लिए तो स्त्रियां मेरुदण्ड हैं और ऐसा आधार हैं जिसके बिना यह आश्रम नहीं चल सकता। इसलिए पुण्यरूपा, गृह को प्रकाशित करने वाली, गृहलक्ष्मी नारी का आदर सभ्य समाज का आभूषण है।[1] कुल की वृद्धि का हेतु नारी है, घर में पोषण करने वाली नारी है। प्रीतिरीति, रति, संतति और श्री प्रदान करने वाली नारी सदैव वन्दनीय रही है। इसलिए मनु का यह कथन है कि जहां पर नारियों की पूजा होती है, देवता वहां रमण करते हैं अर्थात् देवताओं का आशीर्वाद उन्हें प्राप्त होता है और सभी प्रकार की सफलता वहां ही रहती है और जहां पर नारियों को अपमानित किया जाता है वहां की समस्त क्रियाएं निष्फल हो जाती हैं।[2]

नारी के प्रसन्न रहने से सम्पूर्ण कुल दीप्तिमान होता है परन्तु स्त्री यदि असन्तुष्ट हो तो सम्पूर्ण कुल मलिन हो जाता है।[3] साधुशाली नारियां कुल का वर्धन करती हैं वे घर की परा पुष्टि हैं वे घर की साक्षात् लक्ष्मी ,

---

1- पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद्रक्ष्या विशेषतः ।। -मनु0 9-26

2- यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः
यत्र नैतास्तु पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥— मनुस्मृति, 3-56

3- स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वम् तद्रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते।। — मनु0 3-62

रति और संतति की प्रतिष्ठा है। इसलिए लोक में पुरुषों के लिए स्त्रियाँ तुष्ट करने वाली, पुष्ट करने वाली और पुत्र-सेतु का निर्माण करने वाली नारियाँ लोक में आदर की पात्र हैं।[1]

इसलिए मनु का कथन है कि जैसे नीच से भी उत्तम विद्या ग्रहण करने का विधान है और चाण्डाल से भी मोक्षधर्म की शिक्षा लेने में कोई दोष नहीं होता उसी प्रकार नीच कुल से भी स्त्रीरत्न को ग्रहण कर लेना चाहिए। किम्बहुना स्त्री, रत्न, विद्या धन पवित्रता, मधुर वचन, विविध प्रकार के शिल्प आदि जहाँ से प्राप्त हों, ग्रहण कर लेना चाहिए।[3]

इस प्रकार स्वल्प मन्त्रों वाली, अबला मित्रता का व्यवहार करने वाली और सत्य परायण नारियाँ सम्मान के योग्य हैं।[4] पुरुष का कर्तव्य है कि स्त्रियों को सदा भूषण, वसन और भोजन से सन्तुष्ट करना चाहिए, जिस

1- स्त्रियस्तोषकरा नृणां स्त्रियः पुष्टिप्रदाः सदा
पुत्रसेतु प्रतिष्ठाश्च स्त्रियो लोके महाद्युते॥— महाभारत, अनु0 58-1।

2- श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि॥— मनु0 2-238

3- स्त्रियो रत्नान्यथो विद्याधर्मः शौचं सुभाषितम्
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः॥— मनु0 2-240

4- अबलाः स्वल्पकौपीनाः सुहृदः सत्यजिष्णवः।
स्त्रियस्तु मानमर्हन्ति ता मान्यत मानवाः।। —म0अ08।-8-9

कुल में नारियाँ सन्तुष्ट होती हैं उस कुल का सदैव कल्याण होता है।[1]

महाभारत में भी नारियों के सम्मान और प्रतिष्ठा के बहुशः उल्लेख प्राप्त होते हैं, तदनुसार नारियों का नित्य आदर करना चाहिए, तदनुसार वे सदैव अनुराग के योग्य होती हैं, जहाँ पर नारी का सम्मान और समादर होता है, वहाँ देव आनन्दित होते हैं और उस कुल पर कृपा करते हैं।[2]

जिस प्रकार लोक में अमृत और विष, गुण और दोष, प्रकाश और अन्धकार का सहअस्तित्व प्राप्त होता है, वैसे ही नारी के सम्बन्ध में जहाँ एक ओर प्रशंसात्मक वर्णन उपलब्ध होते हैं वहीं दूसरी ओर उसके विषय में कतिपय निन्दापरक वर्णन भी उपलब्ध होते हैं।

कुभार्या, अप्रियवादिनी, युवती व्यभिचारिणी और कुपथगामिनी नारियाँ निन्दा की पात्र तथा अविश्वसनीय मानी गयी हैं।[3] राजकुल की

1- तस्मादेताः सदा पूज्याभूषणाच्छादनाशनैः ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥ - मनुस्मृति 3-59-60

2- पूज्या लालयितव्याश्च स्त्रियो नित्यं जनाधिप।
स्त्रियो यत्र च पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।। - म0भा0अ0 8-5-6

3- कुभार्याम् कुतो रतिः महाभारत, शान्तिपर्व, 137-89

भांति अन्त दुर्गुणों से युक्त नारियां विश्वसनीय नहीं होतीं।[1] जिस प्रकार पुरुष का भाग्य अबाध्य होता है उसी प्रकार नारी चरित्र भी अचिन्त्य कहा जाता है।[2] इसलिए स्त्रियों में, राजा में, सर्पों में, शत्रुसेवित स्वाध्याय में, भोग और आयु में कौन विद्वान् विश्वास करेगा?[3] जिस प्रकार काष्ठों में अग्नि, नदियों से समुद्र, समस्त प्राणियों के भोजन से यमराज अर्थात् मृत्यु तृप्त नहीं होते उसी प्रकार अनेक पुरुषों से भी वामलोचनायें तृप्त नहीं होती हैं।[4] एकान्त स्थल, अवसर और प्रार्थयिता पुरुष के अभाव में ही नारियों का सतीत्व बना रहता है।[5]

1- विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च।
— हितोपदेश

2- स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवा न जानाति कुतो मनुष्यः।।
— हितोपदेश

3- स्त्रीषु राजसु सर्पेषु स्वाध्याये शत्रुसेविते।
भोगे कार्ये चायुषि विश्वासं कः प्राज्ञः कर्तुमर्हति॥
— म०भा०उ०पर्व, 37-53

5- नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचनाः॥
— म०भा०अ०पर्व 73-26

5- स्थलं नास्ति क्षणं नास्ति नास्ति प्रार्थयिता जनः
तेन नारद नारीणां सतीत्वम् उपजायते॥— पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, 49-20

यह कहा जाता है कि यदि किसी व्यक्ति के एक हजार जिह्वायें हों और वह सैकड़ों वर्ष तक जीवित रहे तथा स्त्री के दोषों की गणना मात्र का ही कार्य करे तो भी वह बिना कार्य पूरा किये ही स्वर्ग-वासी हो जायगा।[1] यदि एक ओर अन्तक मृत्यु, पाताल, वडवाग्नि, क्षुर-धारा, विष, सर्प और वह्नि हो और दूसरी ओर स्त्री हो तो दोनों को समान समझना चाहिए। यह दृढ़तापूर्वक कहा गया है कि लोक में स्त्री-स्वभाव चंचल दिखाई देता है।[2] इसीलिए मनु ने नारी-स्वतंत्रता की अनुमति प्रदान नहीं की है। तदनुसार कौमार्यावस्था में उसकी रक्षा पिता करता है, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्रगण उसकी रक्षा करते हैं।[3]

किन्तु जिस प्रकार दर्शनशास्त्र के शास्त्रीय विवेचन में एक पूर्वपक्ष होता है और दूसरा सिद्धान्त पक्ष होता है उसी प्रकार नारी निन्दा

1- यदि जिह्वासहस्रम् स्यात् जीवेच्च शरदां शतम्।
अनन्यकर्मा स्त्री दोषाननुक्त्वा निधनं व्रजेत्॥
— महा०अनु०पर्व, 73-30

2- स्त्रीस्वभावश्चलो लोके — म०आ० 69-6

3- पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति॥
— मनुस्मृति 9-3

का जो वर्णन प्राप्त होता है उसे उनके जीवन का पूर्वपक्ष ही समझना चाहिए जो ग्राह्य नहीं है, वस्तुतः नारी सद्गुणों और सुखों का आधार है फिर वह माता होकर कभी कुमाता नहीं हो सकती है तथा मानव समाज में पुरुष हो या नारी गुण और दोष का विवेचन दोनों में समान रूप से हो सकता है फिर विधाता ने तो इस दुनिया का निर्माण गुणदोषमय ही किया है। गीता के अनुसार तो संसार के सर्वारंभ अर्थात् सभी कार्य किसी न किसी दोष से उसी प्रकार आवृत हैं जैसे अग्नि, धूम रूपी दोष से आवृत है।[3]

दूसरी ओर विरागी अर्थात् वीतरागियों का एक सम्प्रदाय रहा है जो धर्म, अर्थ और काम की निन्दा करता है और केवल मोक्षमार्ग का ही अनुसरण करने बल देता है जिसके अनुसार पुत्र कलत्र, कुटुम्ब, शरीर धन - आदि विनश्वर हैं और अपने नहीं हैं, तथा अन्त तक साथ नहीं जा सकते। पुण्य और पाप ही साथ जाते हैं। धन पृथ्वी पर गड़ा रह जाता है, पशु गोशाला में बंधे रहते हैं नारी घर के दरवाजे तक रोती रहती है, स्वजन श्मशान भूमि तक जाते हैं जीव के साथ तो केवल पुण्य या धर्म ही जाता है।[4]

1- कुपुत्रो जायते क्वचिदपि कुमाता न भवति।, -शंकराचार्य, क्षमापन स्तोत्र, 2

2- [illegible] हरष विषाद राग रोष गुन दोषमयी।
   बिरची बिरंचि सब देखियत दुनियै।।- तुलसीदास, हनुमानबाहुक 40

3- सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृता।- श्रीमद्भगवद्गीता -

4- धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे, नारीगृहद्वारि जनाः श्मशाने।
   देहश्चितायां परलोकमार्गे, धर्मानुगो गच्छति जीव एकः ॥हितोपदेश पृ0 50

वस्तुतः नारी की निन्दा के सम्बन्ध में जो विचार यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं वे एकांगी हैं और नारी के चरित्र को एकतरफा कलंकित करने के लिए ही कहे गये समझना चाहिए। सुप्रसिद्ध विद्वान् वराहमिहिर का यह कथन है कि जो भी लांछन नारी जाति पर लगाये गये हैं वे सभी पुरुषों में भी दिखाई देते हैं।[1] नारियों में जो पुरुषों की अपेक्षा अधिक कामातुरता का दोष लगाया जाता है वह भी झूठा है। 100वर्षों तक भी पुरुषों की कामातुरता शान्त नहीं होती, पत्नियों के निधन के बाद भी वे वृद्धावस्था में दूसरा विवाह करते देखे जाते हैं। अशक्ति के कारण ही वे काम से निवृत्त होते हैं किन्तु नारियाँ धैर्य से, काम से विरत हो जाती हैं।[2] और वे पति के महाप्रयाण करने पर अग्नि में प्रवेश कर जाती हैं। इसलिए तुलनात्मक रूप से पुरुष के चरित्र से नारी का चरित्र श्रेष्ठ है।

अन्त में वराहमिहिर आचार्य वर का कथन है कि निष्पाप और निष्कलंक नारियों की निन्दा करने वाले दुर्जनों की धृष्टता उसी प्रकार है

1- प्रब्रूत सत्यं कतमो ङ्गनानां दोषो स्ति यो

नाचरितो मनुष्यैः ।।— बृहत्संहिता —6

2- न शतेनापि वर्षाणामपैति मदनाशयः ।

तत्राशक्त्या निवर्तन्ते नरा धैर्येण योषितः ॥

— बृहत्संहिता—16-17

जैसे कोई चतुर चोर अपने चुराये हुए धन को अन्यत्र छिपा दे और बाद में निर्दोष लोगों पर चोरी का मिथ्या दोषारोपण करे।[1]

वैराग्य के बहाने जो लोग नारी की निन्दा करते हैं और नारी के गुणों पर धूलि प्रक्षेप करते हैं वे वस्तुतः दुर्जन हैं। नारी के संबंध में उनके द्वारा कहे हुए वचन सद्भावना से भरे नहीं हैं।[2]

योगवाशिष्ठ के शब्दों में उक्त विषय का उपसंहार किया जा सकता है कि दोनोंलोकों के सुखों की प्राप्ति हेतु कुलांगनायें भर्ता के लिए, स्नेह की वर्षा करने वाली, सखा, भ्राता, मित्र, सेवक, धन, सुख शास्त्र, गृह, दास सब कुछ हैं, इस लिए इस प्रकार की कुलांगनाओं का सर्वदा, आदर और सत्कार सम्मान करना चाहिए।[3]

1- अहो धार्ष्ट्यमसाधूनां निन्दतामनघाः स्त्रियः।

मुष्णतामिव चौराणां तिष्ठ चौरेति जल्पताम्॥

— बृहत्संहिता- 17

2- ये ह्यङ्गनानां प्रवदन्ति दोषान् वैराग्यमार्गेण गुणान्विहाय।

ते दुर्जना मे मनसो वितर्कः सद्भाववाक्यानि न तानि तेषाम्॥

— बृहत्संहिता — 74-5

3- यथैताः स्नेहशालिन्यो भर्तॄणां कुलयोषितः।

सखा भ्राता सुहृद् भृत्यो गुरु मित्रं धनं सुखम्।

शास्त्रमायतनं दासः सर्वं भर्तुः कुलाङ्गनाः।

लोकद्वय सुखं सम्यक् सर्वं यासु प्रतिष्ठितम्॥- योगवाशिष्ठ, 6-109

कविवर भवभूति के शब्दों में भारी मन से यही कहना पड़ेगा कि निर्दोषिता कहीं नहीं है इसलिए सर्वथा व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि नारी और वाणी की पवित्रता के सम्बन्ध में प्रायः जन दुर्जन होते हैं।[1]

ब्रह्मपुराण के प्रमुख नारी-पात्र

सम्प्रति प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अध्ययन विषयीभूत पंचपुराणों में से सर्वप्रथम ब्रह्मपुराण के प्रमुख नारी-पात्रों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है –

देवमाता अदिति –

दक्ष प्रजापति की तनया अदिति महर्षि कश्यप की धर्मपत्नी हैं। दक्ष की श्रेष्ठ सुताओं में अदिति का स्थान प्रथम है। वे साठ पुत्रियों के पिता थे। उनमें अदिति, दिति, दनु और विनतादि उनकी प्रमुख पुत्रियाँ थीं। दक्ष ने अपना प्रथम ज्येष्ठ कन्याओं का दान महर्षि कश्यप को कर दिया था।[2]

1- सर्वथा व्यवहर्तव्यम् कुतो ह्यवचनीयता।
यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः॥
— भवभूतिः उत्तररामचरितम्, 1-5

2- दक्षस्य हि सुताः श्रेष्ठा बभूव षष्ठि शोभनाः।
अदितिर्दितिर्दनुश्चैव विनताद्यास्तथैव च॥
— ब्रह्मपुराण – 32- 3

अदिति सात्विक स्वभाव और धर्मपरायणा थीं। वे तन, मन, वचन और कर्म से पति की सेवा किया करती थीं। अदिति ने त्रिभुवन पति देवताओं को जन्म दिया था।[1] देवताओं को आदित्य इसीलिए कहा जाता है क्योंकि वे अदिति के पुत्र हैं। अदिति स्वभाव से सात्विक हैं इसलिए उनके पुत्र देवगण भी स्वभाव से सात्विक हैं। सत्व स्वभाव के कारण ही विश्व में देवताओं का अर्चन और पूजन होता है और अदिति पुत्र देवगण यागादि धार्मिक अनुष्ठानों में भी प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं और पुरोहित तथा यजमान उन्हें यज्ञ भाग देते हैं।[2]

दूसरी ओर अदिति की दूसरी बहिन दिति के पुत्र दैत्य तमोगुणी और रजोगुणी प्रकृति के हैं। दैत्य स्वभाव से ईर्ष्यालु हैं। वे देवताओं के वैभव, ऐश्वर्य मान, सम्मान और प्रतिष्ठा से चिढ़ने लगते हैं। वे देवताओं के वैभव को बलपूर्वक छीन लेते हैं और देवताओं को परास्त कर देते हैं। फलस्वरूप देवगण स्वर्ग छोड़ देते हैं और भागकर अरण्यों, पर्वतकन्दराओं में शरण लेते हैं।[3]

1- अदितिर्जनयामास देवांस्त्रिभुवनेश्वरान्। — ब्रह्मपुराण, 32- 4

2- तेषां कश्यपपुत्राणां प्रधाना देवतागणाः ।
सात्विका राजसाश्चान्ये तामसाश्चगणाः स्मृताः ॥— ब्रह्मपुराण, 32-6

3- तान्बाधन्त सहिताः सापत्न्याद्दैत्यदानवाः
ततो निराकृतान् पुत्रान्दैतेयदानवैस्तथा।
हृतं त्रिभुवनं दृष्ट्वा अदितिर्मुनिसत्तमाः ।
आक्रन्दयन्नगाविव क्षुधासम्पीडितान् भृशम्॥—ब्रह्मपुराण, 32-9-10

यह देखकर देवमाता अदिति अत्यन्त दुःखी होती हैं। वे स्वभाव से तपस्विनी हैं। अपनी कठोर तपस्या से वे भगवान् सूर्य की आराधना करती हैं और भगवान् सूर्य से वे देवताओं के शत्रुओं के विनाश हेतु प्रार्थना करती हैं। भगवान् सूर्य उनकी कठोर तपस्या से प्रसन्न होते हैं और कहते हैं कि शत्रुदलन हेतु वे स्वयम् उनके गर्भ से पुत्ररूप में जन्म लेंगे।[1] इसके बाद वे एक बार पुनः गर्भवती होती हैं और वे कृच्छ्र तथा चान्द्रायण जैसे कठोर व्रतों का पालन करने लगती हैं। इस पर क्रुद्ध होकर महामुनि कश्यप उससे कहते हैं कि तुम उपवासादि रहकर गर्भस्थ शिशु को क्यों मारे डाल रही हो?[2] उसी समय देव - माता अदिति ने कहा कि मैंने बालक को नहीं मारा, यह रहा यह बालक। मुनि द्वारा अदिति से यह कहने पर कि 'त्वया मारितम् अण्डम्', इसलिए इस बालक का नाम 'मार्तण्ड' हुआ।[3] अदिति ने मार्तण्ड-माता होने का गौरवपद प्राप्त किया। मार्तण्ड के नेतृत्व में देवसेना दैत्यों पर विजय प्राप्त करती है। देवता अपना वैभव पुनः प्राप्त कर लेते हैं और सूर्य के मार्तण्ड रूप में अवतार लेने का कार्य पूरा होता है।

1- सहस्रांशेन ते गर्भः सम्भूयाहमशेषतः ।
त्वत्पुत्रशत्रून् दक्षो हं नाशयाम्यशेषतः ॥- ब्रह्मपुराण 32-30

2- किं मारयसि गर्भाण्डमिति नित्योपवासिनी।
सा च तं प्राह गर्भाण्डमेतत्पश्येति कोपना।
न मारितं विपक्षाणां मृत्युरेव भविष्यति।- ब्रह्मपुराण, 32-35

3- मारितमिति यत् प्रोक्तमेतदण्डं त्वयादितेः
तस्मान् मुने सुतस्तेऽयं मार्तण्डाख्यो भविष्यति॥- वही, पृ0 32-40

कालचक्र तेजी से आगे बढ़ा और एकबार पुनः दैत्यों ने देवताओं को पराजित कर दिया जिस पर पुनः देवमाता अदिति को दुख हुआ। अदिति पतिव्रता थीं और पति को भगवान् मानती थीं। इसलिए उन्होंने अपने पति के बताये हुए मार्ग से अनन्त प्रभु का अनुष्ठान किया और तब प्रभु ने वामनरूप से अवतरित होकर असुर सम्राट बलि का बन्धन करते हैं तथा देवताओं के दुःख दूर करते हैं।

उक्त उपलब्ध प्रामाणिक सन्दर्भों से स्पष्ट रूप से विदित होता है कि देवमाता अदिति पतिपरायणा और पुत्रवत्सला है। वे कर्मनिष्ठ और कर्मठ महिला हैं। पुत्रों पर आये हुए संकटों के निवारणार्थ वे कठोर तपस्या और अनुष्ठानों से अपने पति और जगदाधार परमेश्वर को प्रसन्न कर लेती हैं। इस प्रकार वह अन्याय का विरोध और न्याय की स्थापना, अधर्म का विनाश और धर्म की विजय का प्रयत्न करती हैं तथा इस कार्य में सफल होती हैं।

सती सुभद्रा —

ब्रह्मपुराण के अन्तर्गत कृष्णकथा प्रसंग में वर्णित सुभद्रा श्रीकृष्ण की बहिन हैं। वीरवर अर्जुन की धर्मपत्नी और वीर अभिमन्यु की माता हैं। वे शरणागतवत्सला हैं। उन्होंने अवन्तिपति दण्डिराज को शरण दिया था और उसे अभय कर दिया था। उनमें पतिभक्ति कूट-कूट कर भरी थी। वे धर्म पर सदैव विश्वास करती थीं। वे ज्येष्ठ पूर्णिमा के पर्व पर अर्धरात्रि में गंगास्नान

हेतु जाया करती थीं। सुभद्रा वीरकन्या, वीरपत्नी और वीरजननी भी हैं। सुभद्रा में अभियोचित नारी के सभी गुण विद्यमान हैं। उनका पुत्र वात्सल्य उस समय फूट पड़ता है जब अभिमन्यु वीरगति को प्राप्त करता है। पुत्र - शोक का करूणा सागर उसके लिए दुस्तर हो जाता है।

सती पार्वती —

ब्रह्मपुराण के अन्तर्गत रूद्रोपाख्यान और पार्वती उपाख्यानके अन्तर्गत सती पार्वती का सविस्तर वर्णन प्राप्त होता है।

पार्वती पूर्वजन्म में दक्ष प्रजापति की कन्या थीं और वे लोक में सती के रूप में प्रसिद्ध हुईं। वे पूर्व जन्म में शंकर जी की धर्मपत्नी थीं। कालान्तर में दक्ष यज्ञ में शिव जी का तिरस्कार देखकर वे अपने दक्षोद्भव शरीर का परित्याग कर देती हैं और हिमालय तथा मेनका के यहां पुत्री के रूप में जन्म ग्रहण करती हैं। पर्वतोद्भव होने के कारण इनका नाम पार्वती होता है।

यह कहा जाता है कि जन्मान्तर में भी सती स्त्री और प्रकृति उसी पुरूष का वरण करती है जिस पुरूष के साथ वह पूर्वजन्म रही है।[1]

1- सती च योषित् प्रकृतिश्च निश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि।।

— शिशुपालवधम्, माघ, प्रथमसर्ग

इस प्रकार पार्वती अपने दूसरे जन्म में भी उसी पतिअर्थात् शिव की प्राप्ति के लिए अपने माता और पिता की अनुमति प्राप्त कर कठोर तपस्या करती हैं। शिव जी को पति के रूप में प्राप्ति हेतु पार्वती की कठिन तपश्चर्या को देखकर ब्रह्मा ने उनसे कहा वह शिव स्वयं आकर तुम्हारा वरण करेगा।[2]

देवताओं ने तपस्या करती हुई पार्वती से कहा कि शिव तुम्हें पति के रूप में प्राप्तहोगा इसलिए तुम्हें तप करने की आवश्यकता नहीं है। इसके पश्चात्विकृत वेषधारी शंकर जी पार्वती के आश्रम में उपस्थित होते हैं और वे पार्वती से कहते हैं कि धर्मपत्नी के रूप में मैं तुम्हारा वरण करता हूँ। इस पर देवी पार्वती कहती हैं कि हे भगवन् मैं स्वतंत्र नहीं हूँ कन्या दान करने में मेरे पिता ही समर्थ हैं आप मेरे पिता शैलराज से मुझे प्राप्त करने के लिए याचना कीजिए, यही मार्ग मेरे लिए उचित है।[3] शिव नेहिमालय से अत निवेदन किया जिसके उत्तर में विनम्रतापूर्वक शैलराज ने कहा –

1- उमा तु या मया तुभ्यम् कीर्तिता वरवर्णिनी।
अथ तस्यास्तपो योगात् त्रैलोक्यमखिलं तदा।
प्रधूपितमिहात्यर्थ वचस्तामहमब्रुवम्।। — ब्रह्मपुराण, 34-93-94

2- ततस्तामब्रुवम् चाहं यदर्थं तप्यसे शुभे।
स त्वं स्वयमुपागम्य इहैव वरयिष्यति।। — वही, 34-98

3- भगवन्न स्वतन्त्राहं पिता मे त्वग्रणीगृहि।
स प्रभुर्मम दाने वै कन्याहं द्विजपुंगव।—ब्रह्मपु0 35-9
गत्वा याचस्व पितरं मम शैलेन्द्रमव्य यम्।
स चेद्ददाति मां विप्र तुभ्यं तदुचितं मम।।- वही, 35-10

कि मैंने पूर्व में यह विचार सुस्थापित कर लिया था कि स्वयंवर में जिसे भी मेरी कन्या वरण करती है वही उसका पति होगा।[1] यह सुनकर शिव पार्वती के पास आते हैं और उनके पिता शैलराज की स्वयंवर आयोजित करने की इच्छा बतलाते हैं और यह कहकर चलना चाहते हैं कि तुम सुन्दर रूपमान वर का वरण करोगी मैं विकृत वेषधारी विरूप त्रिलोचन होने के कारण तुम्हारे द्वारा वरण नहीं किया जाऊँगा इसलिए मैं यहाँ से चलता हूँ।[2]

इस पर पार्वती उन्हें वरण करने का आश्वासन देती हैं और कहती हैं कि मानसिक रूप से मैं अभी आपका वरण किये लेती हूँ और एक पुष्पस्तवक लेकर पार्वती शम्भु के स्कन्ध में रखकर कहती हैं कि हे देव, मैंने आपका वरण कर लिया है।[3]

1- स्वयम्बरो मे दुहितुः भविताविप्रपूजितः
वरयेद् यं स्वयं तत्र स भर्तास्या भविष्यति। ब्र0पु0 35-14

2- तदापृच्छ्य गमिष्यामि दुर्लभां त्वां वरानने।
रूपवन्तसमुत्सृज्य वृणोष्यसदृशम् कथम्॥- ब्र0पु0 35-17

3- गृहीत्वा स्तवकं सा तु हस्ताभ्यां तत्र संस्थिता।
स्कन्धे शम्भोः समाधाय देवी प्राह वृतोसि मे॥- वही, पु0 35-21।

शम्भु के वहाँ से चले जाने पर पार्वती अन्यमनस्क और वियोग व्यथा से व्याकुल सी दिखाई देती हैं और शम्भु की याद में विलीन मन वाली हो जाती हैं। तभी उस आश्रम के समीप में स्थित सरोवर में शम्भु बालरूप में प्रकट होते हैं और अपनी योगमाया के बल से ग्राहग्रस्त होकर अपनी रक्षा हेतु आवाज देते हैं।[1] पार्वती ग्राह से ग्रस्त उस बालक रूप शिव की रक्षा हेतु समुद्यत होती हैं और अपनी सम्पूर्ण तपस्या दाँव पर लगा देती हैं। और हर प्रकार से उस बालक की ग्राह से रक्षा करना चाहती हैं।[2] देवी पार्वती के इस प्रकार की दृढ़ इच्छाशक्ति को देखकर ग्राह बालक को मुक्त कर देता है और ग्राह तथा बालक दोनों ही वहाँ से विलीन हो जाते हैं। यह पार्वती के प्रेम की परीक्षा थी जो शम्भु द्वारा आयोजित की गयी थी।

इसके पश्चात् पिता हिमवान् पार्वती के स्वयंवर का आयोजन करते हैं जिसमें देश देशान्तर और दिग्दिगन्तर से आये हुए देवताओं के मध्य

1- मातु मांकश्चिदित्याह ग्राहेण हृतचेतसम्।
अन्तर्ग्राहेण ग्रस्तस्तु यास्यामि निधनं किल॥ - ब्रह्म0 35-38

2- जन्म प्रभृति यत् पुण्यं ममग्राह कृतं मया।
तत्ते सर्वं मया दत्तं बालं मुञ्च महाग्राह।। -वही, 35-49

3- ग्राहाय तप रूप त्वं बालं चेमं सुमध्यमे॥
— वही, 35-53

पार्वती अपने इष्टदेव शम्भु का वरण करती हैं।[1] और फिर देवी पार्वती और शम्भु का विवाहोत्सव सम्पन्न होता है।

शिव और शक्ति के इस विवाह में यदि शिव अज, विभु, परमात्मा, अमर अक्षर और प्रधान पुरुष हैं तो दूसरी ओर सती पार्वती महादेवी, आदि शक्ति और जगत की माता आदि प्रकृति हैं।[2] शम्भु शिव - रूप और पार्वती शक्ति रूप हैं। दोनों में अभेद सम्बन्ध उसी प्रकार का है जैसे वाणी और अर्थ परस्पर अभिन्न हैं। इसलिए कालिदास का कथन है कि वाणी और अर्थ की तरह सम्पृक्त जगत् के माता-पिता पार्वती-परमेश्वर वन्दनीय हैं।[3]

1- तस्य देवी तदा दृष्ट्वा समक्षं त्रिदिवौकसाम्।
पादयोः स्थापयामास स्रग्मालाममितद्युतिः ॥
-ब्रह्मपुराण, 36-53

2- अजस्त्वमजरो देवः स्रष्टा विभु परापरम्।
प्रधानं पुरुषो यस्तं ब्रह्म ध्येयं तदक्षरम्।
अमृतं परमात्मा च ईश्वरः कारणं महत्।
इयं च प्रकृतिर्देवी सदा ते सृष्टिकारणम॥ - वही 36-40-4।

3- वागर्थाविवसम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौवन्दे पार्वती परमेश्वरौ॥ -रघुवंशमहाकाव्यम्, 1-1

सती पार्वती पवित्र नारीधर्म की सृष्टि करने वाली हैं, इन्होंने अपने सदाचरण से महादेवी पद को प्राप्त किया है। कालान्तर में होने वाली पतिव्रता सती नारियों की प्रेरणास्रोत और मार्गदर्शन देने वाली सती पार्वती ही हैं।

महारानी कैकेयी –

ब्रह्मपुराण के रामतीर्थ वर्णन प्रसंग में महारानी कैकेयी के चरित्र का उज्ज्वल और उदात्त रूप देखने को मिलता है। महारानी कैकेयी कैकय नरेश की पुत्री थीं और महाराज दशरथ की छोटी महारानी थीं। कैकेयी रूप और गुणों से सम्पन्न थीं तथा पति सेवा-परायणा थीं इसलिए वे महाराज दशरथ की अत्यन्त प्रिय पत्नी थीं। एक समय की बात है महाराज दशरथ का शम्बरासुर से विकराल युद्ध हुआ इस युद्ध में कैकेयी भी उनके साथ थीं। दशरथ का जब सारथि मारा गया था तो सहसा महारानी कैकेयी ने उनके सारथि का कार्य संभाला और शत्रुओं का मुकाबला किया। इसके बाद दूसरा सारथि आया और पुनः युद्ध प्रारम्भ हुआ। इतने में शत्रु के बाण से महाराज दशरथ के रथ का धुरा कट गया, जिससे रथ चक्र इधर उधर हो जाते और महाराज दशरथ भूमि पड़े होते। यह देखकर महारानी कैकेयी रथ से सहसा कूद कर धुरे के स्थान पर अपनी भुजा का प्रयोग करती हैं, जिससे दुर्घटना टल जाती है और अन्ततः महाराज दशरथ को विजयश्री वरण करती है।

इस वृत्तान्त से स्पष्ट है कि महारानी कैकेयी वीरांगना थीं। वे युद्ध में जाकर अपने पति की प्राणरक्षा करने में सदैव अपनी वीरतापूर्ण भूमिका के लिए प्रसिद्ध रहेंगी और स्मरण की जायेंगी।

ब्रह्मपुराण के विभिन्न वर्णन प्रसंगों में वर्णित नारी पात्रों, माता अदिति, सती सुभद्रा, सती पार्वती, और महारानी कैकेयी के चरित्रों में दिव्यता और भव्यता विद्यमान है। ये कठिन से कठिन संकटकालीन परिस्थितियों में भी कदापि विचलित नहीं होती हैं प्रत्युत भीषण परिस्थितियों के निकषोपल में उनका चरित्र उत्तरोत्तर निखरता हुआ सा प्रतीत होता है।

ऐसी तपस्विनी, वीरपुत्रों को प्रसव करने वाली, अपने इष्ट पतिदेव पर समर्पित जीवन वाली और युद्ध में भी अपने प्राणों की चिन्ता न करने वाली नारियाँ वस्तुतः समाज की गौरव हैं। आपत्तियाँ विचलित नहीं कर पातीं, सम्पत्तियाँ उन्हें लुभा नहीं पातीं, शारीरिक कष्ट उन्हें झुका नहीं पाता। तपस्या उनके संयोग से धन्य हो जाती है। तपस्या से नारियाँ दुर्लभ से भी दुर्लभ वरों को प्राप्त कर सकती हैं। ऐसे अमर नारी चरित्रों की सृष्टि करने वाले हैं ये ब्रह्मपुराण में प्रसंगवश वर्णित नारी-पात्र। समाज को इन पर गर्व है।

उक्त नारीपात्र अपने सतीत्व और पातिव्रत्य के तेज से सदैव नारी समाज को आलोकित करते रहेंगे।

चतुर्थ अध्याय

पद्मपुराण के नारी-पात्र

चतुर्थ अध्याय

पद्मपुराण के नारी-पात्र

पुराणों में पद्मपुराण का अतिशय महत्व है। इसमें मुख्यरुप से पाँच खण्ड प्राप्त होते हैं –

(1) सृष्टिखण्ड

(2) भूमिखण्ड

(3) स्वर्गखण्ड

(4) पातालखण्ड

(5) उत्तरखण्ड

पद्मपुराण साध्वी नारियों की प्रशंसा में अग्रणी है। उसके अनुसार साध्वी और पतिव्रता भार्या के समान कोई तीर्थ नहीं होता है, और ऐसी भार्या के समान दूसरा कोई सुख नहीं है तथा दुःख से उद्धार करने एवम् हितसाधनार्थ भार्या के समान दूसरा कोई पुण्य नहीं होता है।[1]

सी नारियाँ अपनी सत्यनिष्ठा, पतिभक्ति और तपोमय जीवन से इस धरा को स्वर्ग बनाने में समर्थ होती हैं। यह बात पद्मपुराण में वर्णित

1- नास्ति भार्यासमं तीर्थम् नास्ति भार्यासमं सुखम्।
नास्ति भार्या समं पुण्यम् तारणाय हिताय च।।
— पद्मपुराण-सृष्टिखण्ड

नारियों के जीवन से सिद्ध हो जाती है।

पद्मपुराण में उल्लिखित साध्वी नारियों में सती सुकला का जीवन अत्यधिक प्रेरणादायक हमारे राष्ट्र के गौरव को बढ़ाने वाला और भारतीय नारी की अस्मिता के संरक्षक प्रतीक के रूप में स्मरण किया जाता है। आधुनिक भारतीय जीवन में जहाँ परस्पर में कलह, प्रमाद और अशान्ति विराजमान है और सर्वत्र अन्धकार का साम्राज्य दिखाई देता है, वहाँ सती सुकला का चरित और जीवन सूर्यबिम्ब के समान अन्धकार को दूर करने वाला है, कलह प्रमाद और अशान्ति को दूर कर शान्ति स्थापित करने वाला है।

अपनी पवित्रता से दूसरे को पवित्र कर देने वाले को तीर्थ की संज्ञा दी जाती है। इस दृष्टि से पतिव्रता नारी भी एक पवित्र तीर्थ के समान है। पतिव्रता नारी अपने पातिव्रत्य धर्म के प्रभाव से मातृकुल, पितृकुल और पतिकुल तीनों का ही उद्धार करती है। सती और साध्वी नारी शिरोमणि सुकला निश्चय ही ऐसी पवित्र नारीरत्न है और तीर्थ के समान पवित्र है। इन्होंने अपने त्याग और तपोमय जीवन से जिस नारीधर्म का प्रतिपादन किया है वह सभी नारियों के लिए अनुकरणीय है। पद्मपुराण अति सुन्दरता से सती सुकला के जीवन पर प्रकाश डालता है।[1]

1- पद्मपुराण, भूमिखण्ड, ।

सती सुकला :-

काशी नगरी के निवासी कृकल वैश्य की धर्मपत्नी सती सुकला हैं। जिस प्रकार उनके पति कृकल धर्मशास्त्री गुणवान् और विचारवान् थे, उसी प्रकार उनकी पत्नी सती सुकला भी साध्वी, पतिपरायणा, सत्यवादिनी और धर्मपरायणा थीं। सुकला अपने नाम के अनुसार गुणवती थीं। कुछ व्यक्तियों और नारियों के जीवन में 'यथा नाम तथा गुणः' यह लोकोक्ति चरितार्थ हो जाया करती है, उनमें सती सुकला भी एक हैं। सती सुकला का जीवन पतिप्रेम था। पति ही उनके लिए तीर्थ, व्रत देवता और ईश्वर सब कुछ थे। उसके जीवन का प्रयोजन पतिसेवा ही प्रतीत होता था।

एक समय की बात है कि धर्मात्मा कृकल अपनी धर्मपरायणा पत्नी सुकला को घर में ही छोड़कर अकेले ही तीर्थ यात्रा के प्रसंग में जाना चाहते थे। इस पर पतिव्रता सुकला ने कहा कि 'प्राणनाथ, मैं आपकी धर्म-पत्नी हूँ अतः आपके साथ रहकर पुण्य करने का मेरा भी अधिकार है, आप एकाकी तीर्थ करने जा रहे हैं किन्तु मेरे तीर्थ तो आप ही हैं, आपके चले जाने से मेरा तीर्थ सेवन छूट जायेगा। स्वामी दाहिना चरण प्रयाग और बाँया चरण पुष्कर होता है।[1]

1- सव्यं पादं स्वभर्तुश्च प्रयागं विद्धि सत्तम।
वामं च पुष्करं तस्य या नारी परिकल्पयेत्॥-पद्मपुराण, भूमिखण्ड, 41-13

जिस नारी का ऐसा विश्वास होता है और इसी विश्वास के अनुसार अपने पति के चरणोदक से नहाया करती है वह नित्य ही प्रयाग और पुष्कर तीर्थ में स्नान करती है।[1] नारियों के लिए पति समस्त तीर्थों के समान होता है और सम्पूर्ण धर्मों का स्वरूप होता है। पद्मपुराण में यह बात कही गयी है कि यज्ञ यागादि का अनुष्ठान करने वाले पुरुष को जो पुण्य लाभ हुआ करता है, नारी अपने पति की सेवा से ही वही पुण्य प्राप्त करलेती है।[2] इसलिए सुकला ने अपने पति से कहा कि हे पतिदेव, मैं भी आपके साथ तीर्थ यात्रा में चलूंगी। आप मुझे घर में अकेले छोड़कर मत जाइये।

वस्तुतः धर्मात्मा कृकल का अपनी पत्नी पर अत्यधिक प्रेम था। उसके मन में यह बात गहराई से बैठ गयी थी कि वह अत्यधिक कोमल और सुकुमार है यदि वह तीर्थ यात्रा में जायगी तो कठोर मार्ग और यात्रा के नाना प्रकार के कष्टों से इसे बहुत दुःख होगा। इसलिए रात में उसे सोता हुआ

1- तस्य पादोदकस्नानात् तत्पुण्यं परिजायते।
प्रयागपुष्करसमं स्नानंस्त्रीणां न संशयः ॥- पद्मपुराण, भूमि० 41-14

2- सर्वतीर्थसमोभर्ता सर्वधर्ममयः पतिः
मखानां यजनात् पुण्यं यद् वै भवति दीक्षिते।
तत् पुण्यं समवाप्नोति भर्तुश्चैव हि साम्प्रतम्॥- वही, 14-15, 16

छोड़कर वह अकेले ही तीर्थ यात्रा के लिए निकल पड़े। प्रातः काल जगने पर जब उसे उसके पति दिखाई नहीं दिये तो वह घबड़ा गयी और फूट-फूटकर रोने लगी। जब उसे वास्तविकता का पता चला कि वे अकेले ही तीर्थयात्राके लिए चले गये हैं तो उसने निश्चय किया कि जब तक पतिदेव घर नहीं लौट आयेंगे तब तक वह भूतल पर चटाई बिछाकर सोयेगी। घी, तेल, दूध, दही गुड़ पान और नमक आदि छोड़ देगी जिस प्रकार कालिदास ने दुष्यन्त के वियोग में शकुन्तला की स्थिति का चित्रण करते हुए कहा है कि वह धूलि-धूसरित वस्त्रों को धारण करती हुई आश्रम के कार्यों में अस्तव्यस्त नियमों से दुर्बल मुख वाली हो गयी है, और एक वेणी धारणकर रही है। कुछ इसी प्रकार की दशा सती सुकला की पति के वियोग में हो गयी है।[1]

सती सुकला का तपोमय जीवन —

अपने पतिदेव कृकल के अकेले ही तीर्थयात्रा में चले जाने पर सती सुकला ने सती नारी के लिए उचित जीवन को स्वीकार किया। उन्होंने श्रृंगार करना छोड़ दिया। कभी अंजन कर लेती और कभी उसका परित्याग

1- वसने परिधूसरे वसाना
नियमक्षामपुखैक वेणिः। — अभि0शा0 7-21

कर देती। भूमिशयन उपवास पतिवेष का निरन्तर स्मरण, सुन्दर वस्त्रों का परित्याग, एकाहार अथवा अनाहार आदि स्वीकार करने से उसका कोमलकान्त और सुदीप्त शरीर पाण्डुवर्ण का हो गया। वह अत्यन्त कृशकाय हो गयी। वह पतिवियोग में कभी रोती तो कभी निरन्तर विलाप करती। निरन्तर रोते रोते वह अनिद्रा का पात्र बन गयी और भोजनार्थ उसकी सम्पूर्ण रुचियाँ समाप्त हो गयीं।[1]

सती सुकला की उक्त दशा को देखकर उसकी सखियाँ बहुत दुःखी हुई और उसे जीवन धारण करने के लिए तरह-तरह से समझाया। किन्तु पतिव्रता सुकला ने सतीधर्म की महिमा का वर्णन कर उन सभी सहेलियों के मन में उसने पतिभक्ति के अंकुर उगा दिया। सुकला ने सखियों से कहा कि तुम लोगों ने जो कुछ कहा वह शास्त्र सम्मत नहीं है। जो नारी पति से दूर रहती है शास्त्र उसकी प्रशंसा नहीं करते। क्योंकि शास्त्रों में नारी के लिए पति को तीर्थ कहा है। इसलिए उसे सदैव शरीर से, मन से, वचन से अपने

1- सं0पद्मपुराण - भूमिखण्ड, पृ0 265

पति के सन्निकट रहना चाहिए। पति का आश्रय लेकर उसे गृहस्थ धर्म का पालन करना चाहिए और पति के साथ दान पुण्य और धर्मादि कार्यों के सम्पादन से अक्षय फल की प्राप्ति होती है जो पुण्य काशी, गंगा, पुष्कर, द्वारिका, अवन्ती के द्वार आदि स्थानों में जाकर प्राप्त नहीं किया जा सकता वही पुण्य उसे पतिदेव की सेवा और संयोग से प्राप्त हो जाता है। पति के प्रसाद से सुख, पुत्र सौभाग्य, भूषण, वस्त्र, तेज, यश, गुण आदि सब कुछ प्राप्त हो जाते हैं। पति नारी को अमित सुख प्रदान करता है।[1] पति के होते हुए जो नारी पतिधर्म को छोड़कर किसी अन्य धर्म को ग्रहण करती है, उसके सब धर्म निष्फल हो जाते हैं। पति हीना नारी संसार में सदा दुर्भाग्य और दुःख भोगती है। पति के प्रसन्न रहने से समस्त देवता नारी से प्रसन्न रहने से समस्त देवता नारी से प्रसन्न रहते हैं। देव, यक्ष, ऋषि, किन्नर, नर सभी पति के सन्तुष्ट रहने से सन्तुष्ट रहते हैं। इसलिए शास्त्रों में कहा गया है कि पति ही नारी का स्वामी, पति ही गुरु पति ही देवता और पति ही नारी का तीर्थ है।[2]

1- सं0पद्मपुराण, 268

2- भर्ता नाथो गुरु भर्ता देवता दैवतैः सह।

भर्ता तीर्थम् च पुण्यं च नारीणां नृपनन्दन॥

— पद्मपुराण, भूमिखण्ड, 41- 75

जैसा कि धर्मशास्त्रों में वर्णित है, देवता परधर्मभीरु होते हैं। सती सुकला के सतीत्व की कीर्ति जब देवलोक में पहुँची तो देवराज इन्द्र ने सती सुकला के सतीत्व-धर्म की परीक्षा लेने का संकल्प लिया। रति और कामदेव ने भी इस कार्य में इन्द्र को सहयोग देने का वचन दिया। फलस्वरूप इन्द्र एक तरुण का रूप धारण करता है और सती सुकला के घर जाकर उसे अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करता है। किन्तु उसे इस कार्य में सफलता नहीं मिलती है। तब इन्द्र इस कार्य हेतु एक दूसरी योजना बनाता है। वह इस कार्य हेतु एक स्त्री को दूती बनाकर सुकला के पास भेज देता है। दूती सुकला के पास जाती है और उसके सत्य, धैर्य, रूप और कान्ति की प्रशंसा करती है तथा उससे उसका परिचय पूछती है। सती सुकला उसे अपने सत्य-वृती धर्मात्मा पति का सविस्तर परिचय देती है।

इसके बाद इन्द्र द्वारा प्रेषित वह दूती उसके पति की आलोचना करती हुई कहती है कि वह निर्दयी और कठोर है तुम्हें सोने के समान अपने कंचनवर्णी शरीर को निष्फल नहीं व्यतीत करना चाहिए। यौवन काल ही सुख और भोग प्राप्ति का काल है। इसे तुम्हें यों ही पति-वियोग में व्यर्थ नहीं समाप्त कर देना चाहिए और तब वह एक समक्ष उपस्थित रूपगुण, शीलवान् पुरुष से प्रेम हेतु प्रस्तावित करती है।[1]

1- सं0पद्मपुराण, पृ0279 2- सं0पद्मपुराण, पृ0279

यद्यपि दूती अनेक प्रकार से सुकला के मन को उसकी पति की ओर से हटाने के लिए प्रयत्न करती है और उस के मन में परपति-विषयक रति उत्पन्न करने की कुचेष्टा करती है किन्तु उसके सभी प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं। सती सुकला उसे सच्चा विवेक देती है, शरीर की सार-हीनता और जीवात्मा की अजरामरता का उसे उपदेश देकर वह अपनी [illegible]-निष्कामता प्रकट कर देती है। वह दूती से कहती है कि समस्त चराचर में एकमात्र आत्मा ही वास करती है, वह अरूप है, वही रूपवान् भी है। वह दिव्य है, वह सब में समाप्त है, वही आत्मा ही शुद्ध और पवित्र है। जिस प्रकार घड़ों में जल रहता है, उसी तरह वह सब में निवास करता है। जिस तरह घड़ों के फूट जाने पर सब जल एक हो जाता है उसी प्रकार पिण्ड समूह का नाश हो जाने पर आत्मा एकत्व को प्राप्त करता है। इस प्रकार सभी संसार के पुरुषों में उसे केवल वही आत्मतत्व दिखाई देता है। उसी आत्मा की सुन्दरता दिखाई देती है। इस प्रतिक्षण नाश को प्राप्त होने वाले शरीर में सुन्दरता कहाँ है।[1]

1- सती सुकला, पृ0 5।

पतिव्रता सुकला उस दूती को समझाती हुई पुनः कहती है कि सत्य सुन्दर होता है और सुन्दर सत्य होता है। शरीर में वर्ण या उसके रंग में सौन्दर्य वस्तुतः नहीं होता है। क्योंकि वाह्यरूप में सुन्दर प्रतीत होने वाले शरीर जब रोग और जरा से ग्रस्त हो जाते हैं और उनमें दुर्गन्ध पैदा हो जाती है तो उसकी सुन्दरता विलीन हो जाती है। इसी प्रकार शरीर में जब कुष्ठादि रोग, चकत्ते, खुजली और फोड़े पड़ जाते हैं तो भी सुन्दर दिखाई देने वाला शरीर असुन्दर लगता है और वह तब घृणा का पात्र हो जाता है। सुन्दरता तो वह है जो तीनों कालों में अबाधित होती है, शरीर में ऐसी सुन्दरता नहीं होती। त्रिकालाबाधित सुन्दरता का धनी तो केवल आत्मतत्व ही है। इसलिए सुकला ने दूती से कहा कि जो तुमने परपुरुष के साथ रति का प्रस्ताव मेरे सामने प्रस्तुत किया है वह सारहीन है और उसमें कुछ भी नयापन नहीं है। इसलिए तुम अपने घर वापस जा सकती हो क्योंकि तुम्हारे प्रस्ताव में कुछ अपूर्व बात नहीं है जिसके करने का लोभ उत्पन्न हो।[2] सुकला के पास से सर्वथा निराश दूती इन्द्र के पास लौट आती है और संक्षेप में वहाँ की उपर्युक्त सम्पूर्ण बातें इन्द्र से कह देती है।

1- सं0पद्मपुराण, पृ0 290

2- सती सुकला, पृ0 5।

इन्द्र इस पर भी विराम नहीं लेता है और पतिव्रता सुकला को सत्य से भ्रष्ट करने हेतु कामदेव की सहायता लेता है। कामदेव 'क्रीडा' और 'प्रीति' नामक दो कुट्टनियों को सती सुकला के पास भेजता है किन्तु वे भी उसे विचलित करने में समर्थ नहीं होतीं। सत्य और धर्म साक्षात् उसकी रक्षा करते हैं।

इतने पर भी इन्द्र अपनी कुचेष्टा नहीं छोड़ता है। वह सामने आकर उसे अपने रूप से लुभाने और आकर्षित करने की चेष्टा करता है। इस पर सुकला बड़े साहस के साथ कहती है कि धर्म और सत्य से मैं सुरक्षित हूँ। साक्षात् इन्द्र भी मुझे जीतने में समर्थ नहीं हो सकता। यदि महापराक्रमी साक्षात् कामदेव भी क्यों न आ जायें तो भी वे मुझे प्रकम्पित नहीं कर सकते। क्योंकि मैं सदैव सतीत्वरूप कवच से सुरक्षित हूँ।[1]

उसका कथन है कि उसको लक्ष्य करके चलाये गये कामदेव के बाण निरर्थक हो जायेंगे, उसे अत्यधिक पीड़ित किये जाने पर मेरे सहायक सत्य धर्म आदि महाबली के रूप में उन्हें ही नष्ट कर देंगे। इसलिए हे पुरुष

1- अहं रक्षा परा नित्यं धर्म शान्ति परायणा।
न मां जेतुं समर्थश्च अपि साक्षात् शचीपतिः।
यदि वा मन्मथो वापि समागच्छति वीर्यवान्।
रक्षिताहं सदा सत्यमत्याकष्टेन सर्वदा॥

— पद्मपुराण, भूमिखण्ड, 58/32-33

तुम मेरे सामने से शीघ्र ही दूर हट जाओ, मेरे समक्ष न रहो यदि मना करने पर भी खड़े रहोगे तो जलकर भस्म हो जाओगे।[1] पतिव्रता धर्मपरायणा सती सुकला का यह दृढ़ विचार है कि यदि वह उसके पति की अनुपस्थिति में उसके शरीर पर कुत्सित दृष्टिपात करेगा तो जिस प्रकार अग्नि सूखी लकड़ी को जलाकर भस्म में परिवर्तित कर देता है उसी तरह वह भी भस्मीभूत हो जायगा।[2]

सुकला के अत्त दृढ़ और अभेद्य स्वरूप को देखकर इन्द्र और कामदेव वहाँ से डरकर शीघ्र भाग जाते हैं और इस प्रकार सती सुकला अपने सतीत्व बल से काम और इन्द्र को पराजित करने में पूर्णतया समर्थ होती है। तदनन्तर इन्द्र असफल होकर अपने दल बल के साथ सुरधाम को लौट जाते हैं और इधर कृकल की तीर्थयात्रा समाप्त होती है, वे अपने घर की ओर लौटते हैं मार्ग में उसे एक दिव्य पुरुष दिखाई देता है जो उसके पितृ-पितामहों को बन्धन से बांधे हुए है। कृकल उन्हें इस बन्धन युक्त अवस्था में देखकर उस दिव्य पुरुष से पूछता है कि मैंने अनेक तीर्थों के अर्चन वन्दन और

1- दूरं गच्छ पलायस्व नात्र तिष्ठ ममाग्रतः।
वार्यमाणो यदा तिष्ठेर्भस्मीभूतो भविष्यसि॥ - पद्मपुराण, भूमि0 50/34

2- भर्त्रा विना निरीक्षेत् मम रूपं यदा भवान्।
यथा दारु दहेत् वह्निस्तथाधक्ष्यामि नान्यथा॥ - वही, 58/36

और दर्शन किये हैं फिर मेरे पितृ-पितामह को आप क्यों वञ्चित किये हैं, क्या मेरी तीर्थयात्रायें विफल हो गयी हैं? वह दिव्य पुरुष साक्षात् धर्म थे। उन्होंने कहा कि जो व्यक्ति पुण्यस्वरूपा पतिव्रता धर्मपत्नी को घर में अकेला छोड़कर धर्म अर्जन करने हेतु एकाकी तीर्थयात्रा हेतु जाता है उसका किया हुआ सम्पूर्ण पुण्य व्यर्थ हो जाता है। क्योंकि साध्वी पत्नी के समान कोई तीर्थ नहीं होता है, पत्नी के समान कोई तीर्थ नहीं होता है और संसार से तारने और कल्याण साधनार्थ पत्नी के समान कोई दूसरा पुण्य नहीं होता है।[1] अपनी सती पत्नी को छोड़कर एकाकी ही तुमने तीर्थाटन किया है, इसलिए इसका फल तुम्हें नहीं मिला है। क्योंकि गृहस्थाश्रम में रहकर जो व्यक्ति पत्नी के बिना धर्म करता है वह निष्फल हो जाता है। पुरुष वेश में उपस्थित धर्म - राज के आदेश से वह अपनी साध्वी धर्मपत्नी को सान्त्वना देता है और उसके साथ पुण्यतीर्थों का स्मरण कर देवतार्चन, वन्दन और श्राद्धादि धार्मिक कार्य सम्पादित करता है जिससे उसकी तीर्थयात्रा सफल होती है। उसके सभी पितृ-गण बन्धनमुक्त हो जाते हैं और सभी देवगण व पितृगण दम्पति को दर्शन और वरदान देकर कृतार्थ करते हैं। उन दोनों पर पुष्पवर्षा होती है।

1- नास्ति भार्यासमं तीर्थम्, नास्ति भार्यासमं सुखम्।
नास्ति भार्यासमं पुण्यं तारणाय हिताय च॥— पद्मपु0, भूमि0, 59/24

जो स्वयं पवित्र होता है और दूसरों को भी पवित्र कर देता है, उसे ही तीर्थ कहा जाता है। इस दृष्टि से पतिव्रता नारी भी एक पावन तीर्थ है क्योंकि वह अपने पातिव्रत्य धर्म से और सतीत्व के बल से अपने माता-पिता तथा पति तीनों कुलों का उद्धार करती है। सती सुकला जैसी नारी जिस घर में विद्यमान होती है वह सदन उसी प्रकार पवित्र हो जाता है। जैसे गंगा-स्नान से शरीर पवित्र हो जाता है।[1]

महारानी सुदेवा –

सुदेवा काशी के राजा देवराज की पुत्री थीं, वे गुणों से युक्त और रूपवती थीं। मनु के पुत्र महाराज इक्ष्वाकु के साथ उनका विवाह हुआ था। महाराज इक्ष्वाकु जिस प्रकार ज्ञानवान थे और धर्मात्मा, महापुरुष थे, उसी प्रकार उनकी धर्मपत्नी महारानी सुदेवा पुण्यचरिता और पतिव्रता थीं। रानी सुदेवा अपने पति को बहुत प्रिय थीं इसलिए महाराज उससे अत्यधिक प्रेम करते थे। किसी नारी का अपने भर्ता का अतिशय प्रिय होना उसके लिए गौरव की बात होती है। नवविवाहिता दुहिता के लिए पिता के द्वारा अपने पति के अत्यधिक

1- यथा गंगावगाहेन शरीरं पावनं भवेत्।
   तथा पतिव्रतां दृष्ट्वा सदनं पावनं भवेत्॥-
   —स्कन्दपुराण, पृ07

159

प्रियपात्र होने का ही आशीर्वाद दिये जाने की परम्परा रही है।[1] सुदेवा सदैव छाया की भाँति अपने पति का अनुगमन करती थी।

एक समय की बात है कि महारानी सुदेवा के साथ महाराज इक्ष्वाकु मृगया हेतु वन की ओर गये थे। वे देरतक मृगया में व्यस्त रहे। इसी समय महाराज ने एक शूकर देखा। वह अपने पुत्र और पौत्रों से घिरा था और उसके साथ उसकी पत्नी भी थी। अन्ततोगत्वा महाराज इक्ष्वाकु के द्वारा शूकर का वध होता है और उसे सद्गति की प्राप्ति होती है। प्रतिशोध की अग्नि से धधकती हुई शूकर पत्नी शूकरी भी प्रत्याक्रमण करती है और एक व्याध के द्वारा जाती है। वह मूर्छावस्था में धराशायी हो गयी है, दयावश महारानी सुदेवा उसके घावों और व्रणों को साफ कर उपचार करती हैं और उसके मुख में शीतल जल कण डाल देती है जिससे उसकी मूर्छा समाप्त हो जाती है।[2] वह महारानी सुदेवा के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती है और कहती है कि आपके पाणिपल्लव के संस्पर्श से मेरे पाप दूर हो गये हैं तथा अन्त में महारानी सुदेवा के आग्रह पर वह अपने तथा स्वर्गीय पति की पूर्वजन्म की कथा बतलाती है कि उसके पति पूर्वजन्म में विद्याधर थे और वह भी वसुदत्त

1- भर्तुबहुमता भव — अभिज्ञानशाकुन्तलम्, (कण्व) चतुर्थ अंक

2- सं0 पद्मपुराण, पृ0 273

की पुत्री थीं। ऋषि पुलस्त्य के शाप से इन्हें यह योनि प्राप्त हुई थी जिसकी शाप निवृत्ति धर्मात्मा महाराज इक्ष्वाकु के तथा महारानी पतिव्रता सुदेवा के पाणिपल्लव से हुई।

महारानी सुदेवा अपने पति की सदैव सेवा करती थीं। नारी के लिए पति ही ईश्वर, तीर्थ और सभी धर्मों का आश्रय माना जाता है।[1] इस लिए पातिव्रत्य धर्म के प्रभाव से महारानी सुदेवा ने अपने कोमल करों के स्पर्श मात्र से शूकरी का उद्धार करने में समर्थ हो सकीं। महारानी सुदेवा का जीवन पतिभक्ता और पति परायणा नारियों के लिए सदैव अनुकरणीय रहेगा।[2] महारानी सुदेवा ने अपने पातिव्रत्य धर्म, सत्यनिष्ठा त्याग और तपस्या के द्वारा जो पुण्य अर्जित किया था, वह उनके तन, मन और वाणी में समाया हुआ था। उनके कृपा प्रसाद से इतर जीव भी सद्गति प्राप्त करते थे।[3]

1- सं0पद्मपुराण पृ0273

2- भर्ता नाथो गुरुर्भर्ता देवता दैवतैः सह।

भर्ता तीर्थं च पुण्यं च नारीणां नृपनन्दन॥

— पद्मपुराण, भूमिखण्ड, 41-75

3- सं0पद्मपुराण, पृ0 273

सती सुकन्या --

सती सुकन्या धर्मात्मा मनु के सुपुत्र राजा शर्याति की पुत्री है। उन्हें अपने पिता का अगाध प्रेम प्राप्त रहा है। राजा शर्याति जहाँ-जहाँ जाते प्रायः अपनी प्रिय पुत्री सुकन्या को साथ-साथ ले जाया करते थे। सुकन्या को साथ-साथ ले जाया जाया करते थे। सुकन्या आभूषण प्रिय थी। स्वर्णाभूषणों से वह अलङ्कृत रहती थी। जिससे स्वभाव से ही सुन्दर सुकन्या का सौन्दर्य सुन्दर परिधानों और अलंकारों से अत्यधिक बढ़ गया था।

एक समय की बात है कि राजा शर्याति अपने सैन्य और बल के साथ धर्मयात्रा के सम्बन्ध से महानदी नर्मदा के तट गये थे। उन्होंने नर्मदा में स्नान किया और देवताओं की पूजा की। वहाँ पर उन्होंने पितरों के श्राद्ध-तर्पण आदि धार्मिक क्रियाएँ भी सम्पादित की।[1]

जब राजा शर्याति नर्मदा तट पर धार्मिक कार्य सम्पादित कर रहे थे तो उधर सुकन्या अपनी प्रिय सखियों के साथ वन में इधर उधर भ्रमण करने लगी। सुकन्या ने उस वन में महान् वृक्षों से सुरक्षित एक विशाल वल्मीकि अर्थात् मिट्टी का ढेर देखा जिसके भीतर नेत्र के आकार का निर्निमेष आकार दिखाई देता था। राजकन्या सुकन्या कौतूहल वश वहाँ जाती है और उस नेत्राकार गोल तेजपुंज में शलाका का प्रवेश कर देती है जिससे वह फूट पड़ता है।

1- सं0पद्मपुराण, पृ0 424

फूटने पर उससे रुधिर की धारा प्रवाहित होने लगती है। रक्त की प्रवाहित धारा को देखकर राजकुमारी सुकन्या भयभीत हो जाती है और अनिष्ट की आशंका से घबड़ा जाती है। अपराध बोध से दबी होने के कारण वह इस घटना की सूचना अपने माता-पिता को नहीं दे सकी और स्वयं मन ही मन दुःखी रहने लगी। उस समय महर्षि च्यवन के क्रोध से पृथ्वी में कम्पन हो गया, दिशायें धूमिल हो गयी और सूर्य के चारों ओर घेरा सा पड़ गया, राजा शर्याति अनेक हाथी और घोड़े कालकवलित हो गये धन और रत्न विनष्ट होने लगे और परस्पर प्रीति के स्थान पर कलह उत्पन्न हो गया। राजा शर्याति को किसी प्रकार विदित हो गया कि महर्षि च्यवन का किसी ने अपराध कर दिया है। वे वहाँ गये,[1] और महामुनि अगस्त्य से प्रार्थना की। अगस्त्य ने राजा से कहा कि आपकी पुत्री सुकन्या ने मेरी आँखें फोड़ दी हैं जिससे यह रुधिर की धारा प्रवाहित हो गयी है मैं नेत्रों की पीड़ा से अपनी तपस्या नहीं कर पा रहा हूँ। इसी कारण यह सारा उत्पात हो रहा है आप इस उत्पात की शान्ति हेतु अब अपनी कन्या का दान मुझे कर दीजिये तब सम्पूर्ण उपद्रव शान्त हो जायेंगे। यद्यपि यह सुनकर शर्याति को अत्यधिक दुःख का अनुभव हुआ फिर भी उत्पातों को शान्त करने के लिए उन्होंने अपनी नवयौवनसम्पन्न, सुन्दर रूपवाली शुभ लक्षणसम्पन्ना प्रिय पुत्री का उस नेत्रहीन च्यवन ऋषि के साथ विवाह

1- सं०पद्मपुराण, पृ० 424-25

कर देते हैं। च्यवन का क्रोध शान्त हो जाता है और उनके क्रोध से उत्पन्न उत्पात भी शान्त हो जाते हैं किन्तु राजा भारी मन से अपनी राजधानी लौट जाते हैं।[1]

इस घटना से सुकन्या का जीवन-रथ ही बदल गया। वह राजकीय सुख वैभव को छोड़ देती है और एक तपस्विनी का जीवन अपना लेती है। वह महर्षि को मिट्टी के ढेर से बाहर निकालती है, घड़े में नदी से जल लाकर महर्षि को स्नान कराती है। वह नित्य महर्षि च्यवन की सेवा में मन लगाने लगती है। वह समिधा, कुश, कन्दमूल तथा जल का संग्रह, अग्नि को प्रज्वलित करना, हविष्य प्रस्तुत करना और आश्रम स्वच्छ रखना और पति की सभी छोटी-बड़ी सेवा करना प्रारम्भ कर देती है। वह यह भूल जाती है कि वह राजकुमारी है। सुकन्या का शरीर दुर्बल हो जाता है। हाथ में गड्ढे पड़ जाते हैं किन्तु पतिप्राणा सुकन्या कभी अशान्ति का अनुभव नहीं करती है और नहीं पति की सेवा में कोई प्रमाद करती है। जिस प्रकार शची इन्द्र की सेवा में तत्पर रहकर प्रसन्नता प्राप्त करती है उसी प्रकार सती सुकन्या अपने पतिदेव च्यवन की सेवा में आनन्द का अनुभव करती है। वह काम, क्रोध, दुर्बोध, लोभ भय और मद का परित्याग करके बड़ी सावधानी के साथ च्यवन मुनि को सन्तुष्ट रखने का प्रयत्न करती है।[2]

1- सं0 पद्मपुराण, पृ0 425

2- वही, पृ0 427

एक समय की बात है, च्यवन के आश्रम में देवताओं के वैद्य अश्विनी कुमार पधारते हैं। सुकन्या उनका भरपूर स्वागत और सत्कार करती है। अश्विनी कुमार प्रसन्न होते हैं। वे सुकन्या से वरदान माँगने का आग्रह करते हैं। सुकन्या अश्विनीकुमार से कहती है कि हे — देवता, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे पति को नेत्र प्रदानकीजिए। उन दोनों ने कहा कि महर्षि हमें यज्ञ में देवोचित भाग अर्पण करें तब महर्षि इस हेतु अपनी स्वीकृति प्रदान करते हैं। तत्पश्चात् सिद्धों द्वारा तैयार कुण्ड में महर्षि से गोता लगाने को कहते हैं तीनों साथ-साथ गोता लगाते हैं।कुण्ड से तीन पुरुषों का आविर्भाव होता है। तीनों समान रूप, आकृति और वर्ण वाले हैं और अत्यन्त सुन्दर तथा अपनी रूपमाधुरी से नारियों को मोहित करने वाले हैं। सुवर्ण के हार, कुण्डल और सुन्दर वस्त्र तीनों की शोभा बढ़ा रहे हैं सूर्य के समान तेजस्वी, रूपवान् और सुन्दर समान आकृति वाले उन तीनों में से सुकन्या अपने पति को नहीं पहिचान पाती है।[1] तब सुकन्या के सतीत्व और पातिव्रत धर्म से सन्तुष्ट होकर अश्विनी कुमार उसे उसके पति को दिखा देते हैं और दोनों ही देवताओं के वैद्य निज धाम चले जाते हैं।

इधर राजा शर्याति यज्ञ का आयोजन करते हैं और अपने जामाता उस यज्ञ में भाग लेने के लिए बुलाते हैं। अपनी पुत्री को एक नव-युवक के साथ देखकर वे उससे अप्रसन्न होते हैं तथा उसे कुलटा तक कह देते

1- सं०पद्मपुराण, पृ० 426

किन्तु सती सुकन्या के द्वारा अश्विनीकुमारों की चिकित्सा की बात सुनकर उनके दिव्य प्रभाव को समझकर उनकी अप्रसन्नता समाप्त हो जाती है और वे अपनी प्रिय बेटी सुकन्या और नवयौवन प्राप्त अपने जामाता महर्षि च्यवन का अभि - नन्दन करते हैं।[1]

महर्षि च्यवन के नेतृत्व में शर्याति यज्ञ प्रारम्भ करते हैं जिसमें सभी पतितपावन, देवताओं के साथ अश्विनीकुमारों के लिए सोमभाग अर्पित किया जाता है। इन्द्र इसका विरोध करते हैं किन्तु महर्षि च्यवन के तेज और साध्वी सुकन्या के सतीत्व के बल से इन्द्र का क्रोध शान्त हो जाता है।

सती सुकन्या का तपोमय जीवन, उसका पातिव्रत्य और उसकी अनन्य परायणा पतिनिष्ठा साध्वी नारियों का पथ आलोकित करती रहेगी। सती सुकन्या पद्मपुराण के नारी रत्नों में एक अद्वितीय नारीरत्न है।[2]

देवी पद्मावती :-

पद्मावती विदर्भ नरेश सत्यकेतु की कन्या है। उनका सौन्दर्य अद्वितीय था। वह अपने रूप के समान गुणों में भी अद्वितीय थी। साध्वी नारी के सभी गुण उसमें विद्यमान थे। वह साक्षात् लक्ष्मी के समान प्रतीत होती

1- सं०पद्मपुराण, 424-427

2- वही, भूमिखण्ड, 426

थी। उनका विवाह मथुरा नगरी के प्रतापी शूर और वीर राजा उग्रसेन के साथ हुआ था। महाराज उग्रसेन के सदैव उसे प्राणों से अधिक प्यार करते थे और सदैव अपने साथ रखते थे। दोनों परस्पर एक दूसरे से अत्यधिक प्रेम करते थे।[1]

पद्मावती के दिन ससुराल में अत्यधिक सुख चैन से बीत रहे थे किन्तु इधर माता और पिता अपनी प्रिय बेटी को सदैव याद करते रहते और उसे देखने को तरसते रहते थे। जब उन लोगों की उत्कण्ठा अत्यधिक बढ़ने लगी तो उन्होंने अपनी प्रिय बेटी को बुलाने के लिए एक दूत को मथुरा भेजा और उग्रसेन को उसे उसके साथ भेजने के लिए एक पत्र भेजा। तदनुसार उग्र - सेन ने पद्मावती को दूत के साथ मायके भेज दिया।[2]

पद्मावती अपने माता-पिता के घर आती है। वह मायके आकर अत्यन्त प्रसन्न होती है। घर में सखियों के साथ अत्यानन्द के साथ उसके दिन बीतने लगे। वह बचपन की तरह स्वच्छन्द रूप से नदी, पर्वत और वन में विहारार्थ जाया करती। इस प्रकार पति का ध्यान शिथिल होने लगा।[3]

1- सती सुकन्या, पृ0 31।

2- वही, पृ0 31-40

3- सं0पद्मपुराण, 273-77

एक दिन पद्मावती अपनी सखियों के साथ भ्रमणार्थ एक सुन्दर पर्वत पर जाती है। पर्वत से लगा हुआ एक सुन्दर वन था। वहां सुन्दर सरोवर थे, जहाँ पुष्प खिले थे, हंस आदि पक्षीगण अपने मधुर कलरव से वहां के वातावरण को मतवाला और सजीव बना रहे थे। वह सखियों के साथ सरोवर में जलविहार करने लगती है। यौवन सुलभ चपलता से मदमस्त होकर वह नृत्य सा करने लगती है।

संयोग से उस समय कुबेर का अनुचर दैत्य गोभिल आकाशमार्ग से जा रहा था। क्रीड़ा में अनुरक्त पद्मावती के रूप सम्पत्ति पर वह आकर्षित होता है। वह पद्मावती के सम्बन्ध में वासनाग्रस्त होता है। वह कामासक्त होने के कारण उग्रसेन का रूप धारण करता है और दिव्य मतवाली गन्धों से युक्त वह एक शिलाखण्ड पर बैठ वीणा के साथ सुमधुर गीत गाने लगता है। पद्मावती आकर्षित होती है और छद्मवेषधारी उस दैत्य को वह उग्रसेन समझ लेती है। उसके साथ वह सखियों से अलग, एकान्त स्थान में जाता है और इच्छानुसार वह पद्मावती का उपभोग करता है। पद्मावती को उसकी कुछ असमान और निर्लज्ज क्रियायें देखकर कुछ शंका होती है और छद्मरूप से उग्रसेन का रूप धारण करने वाले उस दैत्य पर क्रोध करती है किन्तु उसका सतीत्व नष्ट हो चुकता है। उसके माता पिता को जब यह वृत्तान्त विदित होता है तो चुपचाप वे उसे उसके

1- सं०पद्मपुराण, पृ० 275

पति के पास भेज देते हैं। कालान्तर में उसके गर्भ से मथुरा में उग्रसेन के घर कालनेमि का अवतारी कंस जन्म लेता है जो अन्ततः श्रीकृष्ण के हाथों मारा जाता है।

देवी पद्मावती के वृत्तान्त से यह बात सुस्पष्ट हो जाती है कि विवाह के पश्चात् कन्या को अपने पिता के घर स्वतंत्रतापूर्वक नहीं रहना चाहिए यदि विवाहिता पुत्री अपने पिता के घर चिरकाल तक रहती है तो लोग उसके सम्बन्ध में अन्यथा सन्देह करने लगते हैं।[1]

इस दृष्टि से पद्मावती का चरित्र अन्य सती नारियों के सम समक्ष खरा नहीं उतरता, भले ही उसके साथ धोखा हुआ हो। लेकिन कामान्ध होने के कारण ही उसकी ज्ञान की दृष्टि समाप्त हो जाती है जिससे वह उस छद्मवेषधारी दैत्य को पहचानने में असमर्थ हो जाती है।

सती शकुन्तला :-

शकुन्तला ऋषिप्रवर विश्वामित्र और मेनका की तनया है।[2] मालिनी नदी के तट पर तपस्यालीन विश्वामित्र के तप, प्रभाव के भय से इन्द्र द्वारा नियमभंग हेतु प्रेषित मेनका शकुन्तला की माता बनने का सौभाग्य प्राप्त करती है। शकुन्तला जन्म के समय से ही अपने जनक जननी के द्वारा

1- सातिकुलैकसंश्रयां जनो न्यथा भर्तृमती विशङ्कते।
— अभि०शा० 5

2- महाभारत, आदिपर्व, 67-74 अध्याय

वन में ही छोड़ दी जाती है। स्नानार्थ मालिनी नदी की ओर जाते हुए महर्षि कण्व को शकुन्तला प्राप्त होती है। शकुन्तला महर्षि कण्व की धर्मपुत्री है। शकुनों से लालित होने के कारण महर्षि कण्व ने विश्वामित्र मेनका- तनया का नाम शकुन्तला रखा था।[1]

कण्व की धर्मदुहिता शकुन्तला का स्थान सती नारियों के मध्य अद्वितीय है। शकुन्तला का जीवन सुख और दुःख की मिश्रित कथा है। इस कथा के ज्ञान का स्रोत महाभारत, पद्मपुराण और महाकवि कालिदास विर-चित अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक ही है किन्तु यहाँ सम्प्रति केवल पद्मपुराण में प्राप्त शकुन्तला वृत्तान्त को प्रस्तुत करना ही शोध प्रबन्ध का प्रयोजन है।[2]

सती शकुन्तला का जीवन भवितव्यता से प्रतिबन्धित दिखाई देता है।[3] उसका जन्म अवांछित रूप से विश्वामित्र की तपस्या भंग के परि-णाम स्वरूप होता है। जन्म लेते ही माता और पिता द्वारा वह परित्यक्त होती है। प्रकृति के पवित्र और निष्कलंक, अकृत्रिम और सुन्दर वातावरण में महर्षि कण्व के द्वारा वह लालित और पालित होती है। इतिहास में वह कण्व दुहिता के नाम से प्रसिद्ध होती है।

1- अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटकम्

2- पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड

3- अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र ।-
— अभिज्ञानशाकुन्तलम् प्रथम अंक

मानो भवितव्यता उसका अनुगमन करती है। महर्षि कण्व के आश्रम से बाहर चले जाने पर, मृगयाके सम्बन्ध से राजा दुष्यन्त उधर आते हैं। मृग का पीछा करते-करते दुष्यन्त कण्व आश्रम की सीमा में पहुंच जाते हैं। कुछ मुनियों के हस्तक्षेप से वह मृग का वध नहीं करते हैं। जल ग्रहण करने की इच्छा से वह आश्रम में प्रवेश करते हैं। शकुन्तला अपनी प्रियसखियों के साथ आश्रमों के लता और पादपों को घड़ों से जल सींचती हुई दिखाई देती है। राजा दुष्यन्त उससे आकर्षित होता है। शकुन्तला का अपूर्व सौन्दर्य राजा को प्रणय-पाश में बांध देता है किन्तु अपना प्रकट न कर उसकी सखियों से उसके जन्म वृत्तान्त को पूछकर उसके क्षत्रियोद्भव होने की बात से वह सन्तुष्ट हो जाता है और तब वह शकुन्तला से गन्धर्व विवाह का प्रस्ताव रखता है। शकुन्तला एक शर्त रखती है कि मेरा ही पुत्र युवराज और राज्य का उत्तराधिकारी होगा - जिसे राजा स्वीकार कर लेता है। तब दोनों का गन्धर्व-विवाह हो जाता है। राजा स्मरणार्थ उसे सुवर्णनिर्मित एक अंगूठी देकर यह कहते हुए उससे विदाई लेता है कि वह उसे शीघ्र बुला लेगा। शकुन्तला अपने परिणेता पति राजा दुष्यन्त की याद में अपने आपको भूली हुई है, इतने में वहां सुलभ कोप वाले महर्षि दुर्वासा आश्रमद्वार पर दस्तक देते हैं। वह उनकी पुकार नहीं सुन पाती जिससे वह क्रुद्ध हो जाते हैं — आः अतिथि परिभाविनि।' जिस प्रकार आश्रम द्वार में उपस्थित मुझ अतिथि को तुम पहचान नहीं रही हो उसी प्रकार वह

राजा तुम्हें नहीं पहिचानेगा।[1]

प्रियंवदा के अनुनय विनय पर दुर्वासा शाप की अवधि को अभिज्ञानाभरण दर्शन तक घटा देते हैं। महर्षि कण्व तपोबल से अपनी धर्म-दुहिता शकुन्तला को दुष्यन्त-परिणीता और गर्भवती समझ कर उसे अपने शिष्यों के साथ उसके पति के पास भेज देते हैं।

शार्ङ्गरव, शारद्वत प्रियंवदा और गौतमी के साथ शकुन्तला अपने पति के घर जाती है। मार्ग में जलाशय में स्नान करते समय अंगूठी गिर जाती है। दुष्यन्त शापवश शकुन्तला को पहचान नहीं पाता है और वह उसे अंगूठी भी जलाशय में गिर जाने के कारण नहीं दिखा पाती है। दुष्यन्त शकु-न्तला का प्रत्याख्यान करता है। राजा का पुरोहित पुत्रजन्म पर्यन्त उसे अपने यहाँ रखने और प्रतीक्षाकरने को कहता है। शकुन्तला करूणा क्रन्दन करती है किन्तु मार्ग में ही उसकी माता मेनका उसे लेकर अन्तर्धान हो जाती है।[2]

1- विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा।
तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम्।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोपि सन्
कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव।। —

— अभि०शा०4-1, पद्मपुराण, स्वर्ग० ।

2- पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड,

3- अभि०शा० 5वाँ अंक

अन्ततः अंगूठी राजा को प्राप्त हो जाती है, जिससे उसे शकुन्तला का स्मरण हो आता है। यहाँ पर दुर्वासा के शाप की निवृत्ति हो जाती है। राजा का दुःख शकुन्तला-स्मृति के पश्चात् बढ़ जाता है। राजा पुत्र-हीनता के कारण शोक-सागर में डूब जाता है। इसी बीच वह इन्द्र के निमंत्रण पर दुर्जय नामक दानवगण के वधार्थ देवलोक जाता है। वहाँ से लौटते समय वह मारीच आश्रम में जाते हैं जहाँ उसे अपने प्रिय पुत्र सर्वदमन और पत्नी शकुन्तला मिल जाती है। महर्षि मारीच उन्हें बतलाते हैं कि यह सर्वदमन आपका पुत्र है और बेटी शकुन्तला इसकी माता है। दुर्वासा के शाप के कारण आप शकु-न्तला को पहचान नहीं सके इसलिए मेनका उसे यहाँ आश्रम में ले आई थी। दोनों का मिलन होता है। तत्पश्चात् राजा महर्षि मारीच से आशीर्वाद ले अपने पुत्र और पत्नी शकुन्तला को साथ ले राजधानी लौट आते हैं।

इस प्रकार सती शकुन्तला का जीवन वियोग और दुःख का पर्याय है। शापवश पति के परित्याग करने पर भी वह धैर्य का परिचय देती है और धर्मपथ से विचलित नहीं होती है। वह वियोग में मैले-कुचैले वस्त्रों को धारण करती है, उसका मुख तपस्या से क्षीण हो जाता है,[1] वह एक ही चोटी धारण करती है और पति के दीर्घ विरहव्रत को धारण कर रही है।

1- वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः

अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति॥

— अ०शा० 7-21

सौभाग्य से स्मरण आ जाने पर दुष्यन्त का अज्ञानरूपी अन्धकार दूर हो जाता है और पश्चात् शकुन्तला अपने पातिव्रत्य धर्म का निर्वाह करती हुई अपने पति से उसी प्रकार मिल जाती है जैसे ग्रहण के पश्चात् रोहिणी चन्द्रमा से मिल जाती है।[1]

शकुन्तला वियोग में शारीरिक श्रृंगार नहीं करती थी उसका मुख अलंकारपाटलोष्टपुट था। आदि से अन्त तक वह अपने पातिव्रत्य धर्म का निर्वाह करती है। वह यद्यपि भवितव्यता के पंजर में बन्द रही है लेकिन तप के प्रभाव से वह उससे बाहर निकलती है। निश्चितरूप से शकुन्तला का जीवन त्याग, तपस्या और निश्छलता से युक्त है। वह सती और साध्वी है। विषमपरि-स्थितियों में भी उसके कदम लड़खड़ाते नहीं हैं।

उसका धैर्य और धर्म से युक्त तपोमय जीवन भारतीय नारियों के लिए प्रेरणा का और आनन्द का स्रोत है।[2]

पद्मपुराण में उपर्युक्त सती और साध्वी नारियों के वर्णनों के अतिरिक्त सृष्टिखण्ड में दक्ष यज्ञ विध्वंस के अवसर पर सती का वर्णन और पतिव्रता नारियों की महिमा का वर्णन किया गया है, भूमिखण्ड में मृत्युकन्या

1- स्मृतिभिन्नमोहतमसो दिष्ट्या प्रमुखे स्थितासि मे सुमुखि।
उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणी योगम्॥

— अ0शा0 7-22

2- पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड,

सुनीथा वृत्तान्त, पातालखण्ड में सीता परित्याग, श्रीकृष्ण माहात्म्य वर्णन में श्री राधा के दर्शन, उत्तरखण्ड में रुक्मिणी हरण वृत्तान्त में रुक्मिणी श्रीकृष्ण परिणय और पश्चात् अनिरुद्ध-ऊषा-परिणय में ऊषा आदि का संक्षिप्त वर्णन प्राप्त है। जिन्हें विस्तारभय तथा अध्ययन विषयीभूत अन्य पुराणों में भी इन वृत्तान्तों के प्राप्त होने के कारण पिष्टपेषण के भय से मात्र इनका नामोल्लेख पर्याप्त है।

पद्मपुराण के अन्तर्गत वर्णित सभी सती और साध्वी नारियों के जीवन में सत्यनिष्ठा, त्याग, तपोमय जीवन, धर्मपूर्वक काम सेवन, अलोलुपता इन्द्रियनिग्रह, निश्छलता, प्रियतम-पतिदेव पर अविचल दृढ़ अनुराग इत्यादि पातिव्रत्य धर्म और गुण विद्यमान रहे हैं जिन्होंने परकालीन पतिव्रता साध्वी नारियों का पथ आलोकित किया है। ऐसी भार्या के समान कोई तीर्थ नहीं होता।

1- नास्ति भार्यासमं तीर्थं नास्ति भार्या समं सुखम्।

नास्ति भार्यासमं पुण्यं तारणाय हिताय च॥

— पद्मपुराण, भूमिखण्ड 1-2

पंचम अध्याय

विष्णुपुराण के नारी-पात्र

पंचम अध्याय

विष्णुपुराण के नारी-पात्र

अष्टादश महापुराणों में विष्णुपुराण का अत्यन्त विशिष्ट स्थान है। यद्यपि यह आकार में लघु है फिर भी विषय वैविध्य में यह किसी से कम नहीं है। वैष्णव पुराणों में इसका स्थान महत्वपूर्ण है। यह अंशों में विभक्त है और इसके अंशों की संख्या कुल 6 है तथा इसके अध्यायों की संख्या 126 है। इसमें विषय-सामग्री की विविधता तो है ही, साथ ही इसमें यदु, तुर्वसु द्रुह्यु अनु और पुरु आदि प्रसिद्ध क्षत्रिय वंशों का वर्णन प्राप्त होता है।[1]

इसके अतिरिक्त इसमें भगवान् श्रीकृष्ण का चरित सांगोपांग रूप से वर्णित है।[2] इसी के अन्तर्गत श्रीकृष्ण कथा से सम्बद्ध माता देवकी, कुब्जा, महारानी रुक्मिणी पूतना तथा बाणासुर-तनया ऊषा जैसी नारियों चरित वर्णित है और उक्त नारी पात्र प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के अध्ययन विषय के अन्तर्गत हैं। अतः विष्णुपुराण में प्रसंगानुसार वर्णित उक्त कतिपय नारियों का संक्षिप्त परिचय निम्नांकित है --

---

1- पुराण विमर्श- आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ0143 संस्करण 1987

2- श्री विष्णुपुराण- गीताप्रेस संस्करण, 2045, पृ04

माता देवकी —

श्रीकृष्ण जन्म के प्रसंग में माता देवकी का वर्णन विष्णुपुराण में प्राप्त होता है। देवकी महाराज उग्रसेन के भाई देवक की सबसे छोटी पुत्री है।

एक समय की बात है कि महाराज देवक की इस महाभाग्य - शालिनी पुत्री देवी स्वरूपा देवकी के साथ वसुदेव जी का विवाह हुआ।[1] उग्र - सेन के पुत्र राजकुमार कंस अपनी चचेरी बहिन को बहुत प्रेम करते थे। अपार उपहार लेकर जब वसुदेव जी वहाँ से देवकी की विदा कराकर चलने लगे तो वसुदेव और देवकी को विशेष आदर देने के लिए राजकुमार कंस ने सारथी को हटाकर स्वयम् रथ हाँकना प्रारम्भ किया।[2]

लेकिन इसी बीच एक अघटित घटना घटित होती है जो देवकी के जीवन को दुःख से भर देती है, इससे उसे मातृकुल से प्राप्त आदर और स्नेह की राशि बिखर जाती है। उस समय मेघ के समान गंभीर घोष करती हुई आकाशवाणी कंस को सम्बोधित करती हुई सूचित करती है।[3] कि हे मूढ़,

---

1- देवकस्य सुतां पूर्वं वसुदेवो महामुने।
उपयेमे महाभागां देवकीं देवतोपमाम्॥ — विष्णुपुराण, 5-1-5

2- कंसस्तयोर्वररथं चोदयामास सारथिः।
वसुदेवस्य देवक्याः संयोगे भोजनन्दनः॥ — वही, 5-1-6

3- अथान्तरिक्षे वागुच्चैः कंसमाभाष्य सादरम्
मेघगम्भीरनिर्घोषं समाभाष्येदमब्रवीत्॥ — वही, 5-1-7

पति के साथ रथ पर बैठी हुई जिस देवकी के रथ का तू सारथि बना हुआ है इसका आठवाँ गर्भ तेरे प्राणहर लेगा।[1]

उपर्युक्त आकाशवाणी को सुनने के पश्चात् राजकुमार कंस के क्रोध का कोई पारावार नहीं रहता है, वह अपनी म्यान से तलवार निकाल लेता है और अपनी बहिन देवकी को मारने के लिए उद्यत हो जाता है।[2] किन्तु इसी बीच महाराज वसुदेव प्रस्ताव करते हैं कि हे राजकुमार कंस, आप देवकी का वध न करें, आपका विरोध देवकी से नहीं प्रत्युत इसके बालकों से है, इसके सभी गर्भोद्भव बालकों को आपको सौंप दिया जायेगा।[3] इस पर कंस अपनी स्वीकृति दे देता है और फिर वह अपनी बहिन देवकी का वध नहीं करता तथा उसको कारागार में रख देता है।

इधर नारद ने कंस को समझाया कि आठवाँ कोई भी गर्भ हो सकता है आदि मध्य या अन्त से गिनने पर प्रत्येक गर्भ आठवाँ हो सकता

1- यामेतां वहसे मूढ, सह भर्त्रा रथे स्थिताम्।
अस्यास्तवाष्टमो गर्भः प्राणान् अपहरिष्यति॥— वि०पु० 5-1-8

2- इत्याकर्ण्य समुत्पाट्य खड्गं कंसो महाबलः।
देवकीं हन्तुमारब्धो वसुदेवोऽब्रवीदिदम्॥ — वही, 5-1-9

3- न हन्तव्या महाभाग देवकी भवतानघ
समर्पयिष्ये सकलान् गर्भानस्योदरोद्भवान्॥— वही, 5-1-10

है। तब वह कंस, देवकी के लगातार सात पुत्रों का वध कर देता है। देवकी के सातवें गर्भ में शेषावतार होता है जो योगमाया के प्रभाव से रोहिणी के गर्भ में स्थानान्तरित हो जाता है और यह प्रसिद्ध होजाता है कि देवकी के सातवें गर्भ का स्राव हो गया है। यही सातवां गर्भ रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न होकर बलराम होते हैं।

अब देवकी के आठवें गर्भ का समय आता है। भगवान् विष्णु शंख चक्र गदाधारी के रूप में बन्दीगृह में प्रकट होते हैं। देवकी और वसुदेव के द्वारा प्रार्थना करने पर वे नवजात शिशु का रूप धारण करते हैं। देवकी और वसुदेव उनकी स्तुति करते हैं। बन्दीगृह के दरवाजे खुल जाते हैं, पहरेदार गहन निद्रा में निमग्न हो जाते हैं। तदनन्तर वसुदेव भाद्रपद कृष्णपक्ष की अष्टमी को अर्धरात्रि में नवजात शिशु श्रीकृष्ण को गोकुल में यशोदा और नन्द के घर पहुंचा देते हैं और वहां कन्या के रूप में जन्मी योगमाया को देवकी के पास ले आते हैं। कन्या रुदन करती है। कंस के यहां देवकी के आठवें गर्भ का समाचार पहुंचता है।[1] कंस शीघ्रता से बन्दीगृह आता है और उस नवजात बालिका को उठाकर पटक देता है। वह योगमाया है आकाश में

1- ततो बालध्वनिं श्रुत्वा रक्षिणस्सहसोत्थिताः ।

कंसायावेदयामासुः देवकी प्रसवं द्विज॥

— विष्णुपुराण, 3-24

जाकर अष्टभुजा देवी का रूप धारण कर लेती है और कंस को चेतावनी देती है कि उसका वध करने वाला कहीं अन्यत्र जन्म ले चुका है।[1]

कन्या के वध और अपने सात पुत्रों के वध से देवकी के शोक का पारावार नहीं है किन्तु धैर्य और धर्म से वह इस शोक-सागर को पार कर लेती है। सचमुच देवकी महान् नारीरत्न है जिसने श्रीकृष्ण जैसे पुत्ररत्न की माता बनने का गौरव प्राप्त किया। श्रीकृष्ण को जन्म देकर न केवल वसुदेव और देवकी के दुःख दूर हो जाते हैं प्रत्युत अधर्म का विनाश और धर्म की स्थापना का कार्य प्रारम्भ होता है। और इस दृष्टि से माता देवकी का योगदान कुछ कम नहीं है जिसकी तपस्या से श्रीकृष्ण जैसी सन्तान उन्हें प्राप्त हुई जिसके द्वारा उन्होंने पृथ्वी को असुरों के दुःख से दूर कर दिया और सज्जनों की रक्षा की। देवकीनन्दन श्रीकृष्ण के जन्म का प्रयोजन ही सज्जनों का परित्राण और दुष्टों का संहार तथा धर्म की संस्थापना और अधर्म का विनाश रहा है।[2]

1- प्रजहास तथैवोच्चैः कंसं रुषिताब्रवीत्।
किं मया क्षिप्तया कंस जातो यस्त्वां वधिष्यति॥–वि0पु0 3-27

2- परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे॥– श्रीमद्भगवद्गीता, 2

इसप्रकार परम्परया माता देवकी धर्म संस्थापना में योगदान देने के लिए सदैव स्मरण की जाती रहेंगी।

भारतीय साध्वी और धर्मपरायणा नारियों के मध्य माता देवकी परवर्ती नारियों के लिए प्रेरणास्रोत बनी रहेंगी।

पूतना :-

विष्णुपुराण में श्रीकृष्ण लीला वर्णन प्रसंग में पूतना का वर्णन प्राप्त होता है। पूतना छलनारियों का प्रतीक है जो पूतों अर्थात् पुत्रों का ना अर्थात् नाश करने वाली है। हमारी सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति में जहाँ नारियाँ पुत्र की कामना करती हैं, वहीं पूतना पुत्रों का विनाश करने वाली दुष्टा - नारी है। उसमें कंस के साहचर्य से आसुरी शक्ति का प्रभाव है। वह छल - नारियों का प्रतीक है जो शुभ को अशुभ में परिवर्तित कर देती हैं।

एक समय की बात है कि नवजात शिशु श्रीकृष्ण माता यशोदा के घर रात्रि में सोये हुए थे। तभी एकान्त में और रात्रि के अन्धकार में छल नारी पूतना नन्द के घर में प्रवेश करती है। उसके स्तनों से विषाक्त दुग्ध प्रवाहित होता है। जो भी शिशु उसके स्तनों से दुग्धपान करता था उसका ही प्राणान्त हो जाता था। वह कंस के द्वारा प्रेरित थी। वह सोते हुए श्रीकृष्ण

1- यस्मै यस्मै स्तनं रात्रौ पूतना सम्प्रयच्छति।

तस्य-तस्य क्षणेनाङ्गम् बालकस्योपहन्यते॥- वि0पु0 5-7-8

के मुख में अपने दोनों स्तन लगा देती है। श्रीकृष्ण उसका दुग्ध पान करने लगते हैं।[1]

आसुरी शक्तिसम्पन्न पूतना कंस प्रेरित अपना कार्य तीव्रता से कर रही थी किन्तु उसे यह विदित नहीं था कि श्रीकृष्ण कोई साधारण बालक नहीं है। श्रीकृष्ण बड़े क्रोध से उस के स्तनों का अपने हाथों से शक्तिपूर्वक मर्दन करते हैं और उसके दूध के साथ उसके प्राणों का भी पान करने लगते हैं।[2]

पूतना की प्राणशक्ति धीरे-धीरे समाप्त होने लगती है, उसके स्नायुबन्धन शिथिल हो जाते हैं। पूतना चिल्लाने लगती है। भयंकर आवाज करते हुए पृथ्वी पर गिर पड़ती है और इस प्रकार अनेक निर्दोष शिशुओं का प्राणहरण करने वाली पूतना का शिशुरूप श्रीकृष्ण के द्वारा वध हो जाता है।[3]

1- सुप्तं कृष्णं उपादाय रात्रौ तस्मै स्तनं ददौ॥
— वि0पु0 5-7-8

2- कृष्णस्तु तत्स्तनं गाढम् कराभ्यामतिपीडितम्।
गृहीत्वा प्राणसहितम् पपौ क्रोधसमन्वितः ॥— वही, पृ0 5-9

3- सातिभुक्तमहारावा विच्छिन्न स्नायुबन्धना।
पपात पूतना भूमौ म्रियमाणातिभीषणा॥— वही, 5-10

पूतना जैसी नारियाँ नारी समाज का कलंक हैं जो सदैव पर-पीड़ा में तत्पर हो उसके समान अधम कौन हो सकता है। नारी माता और बहिन और साध्वी पत्नी के रूप में वन्दनीय और श्लाघनीय हैं किन्तु हिंसक विचार वाली पूतना सदृश नारी वध योग्य है।[1]

श्रीकृष्णानुगृहीता कुब्जा :-

श्री विष्णुपुराण में श्रीकृष्ण कथा का वर्णन बड़ी रोचकता के साथ किया गया है, इसलिए श्रीकृष्ण कथा से सम्बद्ध कुछ अपरिहार्य नारी पात्रों का वर्णन इस पुराण में प्राप्त होता है, उनमें से कुब्जा भी एक है।

कुब्जा शरीर से वक्र है, वह भोजराज कंस की दासी है, वह राजा भोज के लिए अंगराग हेतु केशर, चन्दन आदि सुगन्धित अनुलेपन आदि के कार्य में नियुक्त है।

एक समय की बात है कि भोजराज कंस ने छलपूर्वक श्रीकृष्ण को बुलाने हेतु वृन्दावन निमंत्रण भेजा था उसमें धनुर्यज्ञ का बहाना था किंतु उसका इस निमंत्रण के पीछे प्रमुख प्रयोजन श्रीकृष्ण का जिस किसी प्रकार विनाश करना ही था।

1- पूतना बालघातिनी,वि0पु0 5-7

भोजराज कंस का निमंत्रण पाकर वृन्दावन से मथुरा की ओर जनसमूह जा रहा है, साथ में मथुरा के समीप रथ से उतर कर श्रीकृष्ण और बलदेव गोप-बालकों के साथ पैदल जा रहे हैं। इतने में एक रमणी स्वर्णपात्र में चन्दन कुंकुम इत्यादि विविध प्रकार के अंगराग की सामग्री को लिए हुए प्रवेश करती है। वह नवयौवना है, रूपवती है।[1] श्रीकृष्ण ने उसे देखा। विकलांगता और कुब्जत्व होने पर भी उसके शरीर से प्रीति और सौन्दर्य छलकता है। कौतूहल वश श्रीकृष्ण उसे पुकारते हैं और विलासपूर्वक उससे कहते हैं 'अयि कमललोचने तुम सच-सच बताओ कि यह सुगन्धमय अनुलेपन किसके लिए ले जा रही हो।'

श्रीकृष्ण के कामुकपुरुष की भांति इस प्रकार पूछने पर अनुरागिणी कुब्जा उनके दर्शन से बलात् आकृष्ट चित्त हो जाती है और अत्यन्त ललित स्वर से निवेदन करती है — हे कान्त, क्या आप मुझे नहीं जानते हैं? मैं अनेक वक्रा नाम से विख्यात हूँ, राजा कंस ने मुझे अनुलेपन कार्य में नियुक्त किया है। मेरे द्वारा तैयार अनुलेपन भोजराज कंस को अत्यन्त प्रिय है।

1- राजमार्गे ततः कृष्णसानुलेपनभाजनाम्।
दर्दर्श कुब्जामायान्तीं नवयौवनगोचराम्॥— विष्णुपु० 20-1

2- तामाह ललितं कृष्णः कस्येदमनुलेपनम्।
भवत्या नीयते सत्यं वदेन्दीवरलोचने॥— वही, 20-2

कुब्जा के उपर्युक्त निवेदन को सुनकर श्रीकृष्ण उससे कहते हैं कि हे सुन्दरि, यह सुन्दर सुगन्धमय अनुलेपन तो राजा के ही योग्य है, यदि हमारे शरीर के लिए उपयुक्त कोई अनुलेपन हो तो हमें भी दो।[1] यह सुन कर कुब्जा प्रेमविह्वल हो जाती है और अत्यन्त आदर के साथ श्रीकृष्ण और बलराम के योग्य चन्दनादि सुगन्धित अनुलेपन प्रदान करती है। इस समय वे दोनों श्रीकृष्ण-बलराम पत्ररचनाविधि से यथावत् अनुलिप्त होकर इन्द्रधनुष युक्त श्याम और श्वेत मेघ के समान सुशोभित होने लगे।

श्रीकृष्ण उल्लापन अर्थात् सीधे करने की विधि के वेत्ता थे। उन्होंने कुब्जा की ठोढ़ी में अपनी आगे की दो अँगुलियाँ लगाकर उसे हिला दिया और उसके पैर अपने पैरों से दबा दिये जिससे उसका कुब्जत्व दोष दूर हो गया और वह ऋजुकाय अर्थात् सीधे शरीर वाली हो गयी।[2]

1- सुगन्धमेतद्राजार्हम् रुचिरं रुचिरानने।
आवयोर्गात्रसदृशम् दीयतामनुलेपनम्॥
— विष्णुपुराण, 20-6

2- ततः सा ऋजुतां प्राप्ता योषितामभवद्वरा।
— वि0पुराण, 20-10

श्रीकृष्ण का अनुग्रह प्राप्त कर कुब्जा धन्य हो जाती है। उसका न केवल शारीरिक प्रत्युत मानसिक कुब्जात्व दोष भी दूर हो जाता है। वह श्रीकृष्ण की कृपा से अब सम्पूर्ण ललनाओं के मध्य सुन्दर श्रेष्ठ और सुन्दर-भाग्य की धनी बन जाती है।

कुब्जा के आनन्द का पारावार नहीं है। वह गोविन्द के वस्त्र का छोर पकड़ लेती है और उनसे अपने घर चलने की प्रार्थना करती है। उसके ऐसा कहने पर श्रीकृष्ण जी ने सम्प्रति विकलांगता से रहित और सुन्दरी कुब्जा के प्रेम को देखकर कहा कि मैं तुम्हारे घर आऊंगा।

वस्तुतः कुब्जा श्रीकृष्ण जी की नित्यकाल की प्रेयसी और संगिनी प्रतीत होती है। वह कुब्जा नारी समाज का आदर्श प्रतीक है। कुब्जा को देख कर श्रीकृष्ण जी का हंसना रहस्यात्मक है क्योंकि वे समझते हैं कि कुब्जा अकेले ही कुबड़ी नहीं है प्रत्युत जगत की सम्पूर्ण नारियां उन्हें कुब्जात्व दोष से युक्त दिखाई देती हैं। काम क्रोध और लोभग्रस्त नारियां वस्तुतः त्रिवक्रा और कुब्जा ही हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण ने कुब्जा को देखकर मानो विश्वरमणी का विकृत रूप देखा हो। श्रीकृष्ण जी ने कुब्जा को जो हंसकर अपनी ओर बुलाया। वह वस्तुतः उस पर अतिशय कृपा करने के लिए और उसे सरलांगी बनाने के लिए ही बुलाया था।

1- विलासललितं प्राह प्रेमगर्भभरालसम्।
वस्त्रे प्रगृह्य गोविन्दं मम गेहं व्रजेति वै॥- वि0पु0 20-1।

श्रीकृष्ण जी के गात्र का संस्पर्श प्राप्त कर उनकी कृपा-कटाक्ष का प्रसाद प्राप्त कर कुब्जा के तन और मन दोनों की वक्रता समाप्त हो गयी है। श्रीकृष्ण जी के अनुग्रह से ही नारी जाति की आन्तरिक वक्रता दूर हो सकती है। कुब्जा धन्य है।[1]

महारानी रुक्मिणी :-

महारानी रुक्मिणी विदर्भ नरेश महाराज भीष्मक की पुत्री हैं।[2] उनका सौन्दर्य दिव्य है। वे श्रीकृष्ण की अनन्य पराणा आराधिका हैं। उन्होंने श्रीकृष्ण की महिमा, गुण, ऐश्वर्य और उनके अनन्य सौन्दर्य को द्वारका से आने वाले दूतों से सुन रखा है। उन्होंने मन ही मन श्रीकृष्ण जी को अपना पति वरण कर लिया है और वे अपना अटल निश्चय अपनी माता जी से कह देती हैं कि उसके पति श्रीकृष्ण जी ही होंगे। यही उसका दृढ़ निश्चय है। उनकी माँ एकान्त में महाराज भीष्मक को रुक्मिणी के निर्णय और प्रतिज्ञा की

1- सा तदा समानांगी बृहच्छ्रोणि पयोधरा।
मुकुन्द स्पर्शनात् सद्यो बभूव प्रमदोत्तमा॥
श्रीमद्भागवत 10-

2- भीष्मकः कुण्डिने राजा विदर्भाविषये भवत्।
रुक्मी तस्याभवत्पुत्रो रुक्मिणी च वरानना॥

—

सूचना देती है। महाराज भीष्मक अपनी पुत्री के अनन्य प्रेम की सूचना श्रीकृष्ण जी तक पहुंचा देते हैं। श्रीकृष्ण रुक्मिणी के निश्छल प्रेम से आकर्षित होते हैं और मन ही मन रुक्मिणी को अपनी अर्धांगिनी बना लेने का निश्चय करते हैं। दोनों ओर प्रेम पलने लगता है।

किन्तु भीष्मक का यह प्रस्ताव उसके पुत्र युवराज को नहीं रुचता। क्योंकि युवराज रुक्मि का श्रीकृष्ण से स्वाभाविक द्वेष था। दुराग्रही रुक्मी की बात स्वीकारते हुए उन्होंने चेदिराज शिशुपाल को विवाह का आमंत्रण भेज दिया।[1]

इधर रुक्मिणी की व्याकुलता बढ़ जाती है। उसका मन त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्ण के पादारविन्द में लगा हुआ है, वह रूप, कुल, शील, विद्या और ऐश्वर्यादि में त्रिलोकी में सर्वश्रेष्ठ माधव को ही पति के रूप में वरण कर चुकी है। वह बार बार प्रार्थना करती है कि हे प्रभो जब आपको अपना पति वरण कर लिया तो इस दासी को अपने श्रीचरणों में स्वीकार करें। वह भयभीत होकर कहती है कि कहीं ऐसा न हो कि सिंह के भक्ष्य को शृगाल की भांति मुझे शिशुपाल ले जाये।

1- न ददौ याचते चैनां रुक्मीद्वेषेण चक्रिणे।

ददौ च शिशुपालाय जरासन्धप्रचोदितः ॥

— विष्णुपुराण, 26-2-3

रुक्मिणी भूयोभूयः आत्मनिवेदन करती हुई कहती है कि उसने जन्म-जन्मान्तरों में जो दान, पुण्य, व्रत, उपवास और देव-विप्र-पूजनादि, पुण्यजन्य जन्मान्तरों में किये हों उन सबका एक ही फल वह चाहती है कि गदाधर श्रीकृष्ण उसका पाणिग्रहण करें।

वह सन्देश भेजती है कि विवाह से एक दिन पूर्व वह जगदम्बिका के मन्दिर पूजन हेतु जायेगी, उसी दिन आप वहाँ मुझे मिलें और अपने साथ उसे ले जायें।

रुक्मिणी का प्रणय निवेदन और सन्देश श्रीकृष्ण तक पहुंच जाता है उसके निश्छल प्रेम को श्रीकृष्ण जी कैसे ठुकरा सकते हैं। वे विदर्भ के लिए प्रस्थान करते हैं। उनके पीछे अग्रज बलराम जी और नारायणी सेना भी विदर्भ के लिए रवाना होती है।

उधर रुक्मिणी के साथ विवाह के लिए चेदिराज शिशुपाल आ चुके हैं। उसके साथ जरासन्ध, दन्तवक्त्र, पौण्ड्रक शाल्वादि भी विदर्भ आ चुके हैं। विदर्भ नगर को पूर्णरूप से सजाया गया है और विवाह की अपेक्षित साज-सज्जा पूरी हो गयी है।

ऐसे मांगलिक अवसर पर चेदिराज शिशुपाल से आतंकित और त्रिभुवन सुन्दर श्रीकृष्ण से मिलन की आकुलता और आतुरतावश रुक्मिणी के नेत्रों से झर-झर अश्रुपात होने लगता है। सहसा मंगल की सूचना देने वाले

उसके वामांग वाम नेत्रादि स्फुरित होने लगते हैं। तभी एक प्रसन्नमुख विप्र ने रुक्मिणी को सूचित किया कि वनमाली श्रीकृष्ण इस विवाह में उसे लेने आ चुके हैं। वह भाव विभोर होकर विप्र के पद पंकजों में अपना सिर झुकाती है। उसकी प्रसन्नता का अब कोई पारावार नहीं है।[1]

इधर महाराज भीष्मक विवाह में पधारे हुए बलराम और श्रीकृष्ण का अपने यहां भव्य स्वागत करते हैं, उन्हें निवासार्थ अत्यन्त सुन्दर आवास दिया जाता है। सम्पूर्ण पुरवासी श्याम सुन्दर श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ उमड़ पड़ते हैं। सभी पुरवासी हृदय से मनाते हैं कि विदर्भराज कुमारी रुक्मिणी का पाणिग्रहण श्याम सुन्दर श्रीकृष्ण करें। क्योंकि उनके गुणों के अनुरूप यही पति बनने के योग्य हैं।

इसी समय राजकुमारी रुक्मिणी गौरी पूजन हेतु मन्दिर के लिए प्रस्थान करती है। साथ में सखियाँ और रक्षक भी हैं। उधर श्याम सुन्दर श्रीकृष्ण अपने रथ में वहाँ पूर्व से उपस्थित हैं। राजकुमारी मन ही मन गौरी से श्रीकृष्ण को पतिरूप में पाने की प्रार्थना करती हैं। पूजन सम्पादित होने के अनन्तर वे मन्दिर से बाहर निकलती हैं। उन्हें फहराते हुए गरुडध्वज से युक्त श्याम - सुन्दर का रथ दिखाई देता है, वे उसी रथ की ओर बढ़ती हैं। श्याम सुन्दर

1- रुक्मिणीं चकमे कृष्णः सा च तां चारुहासिनी॥

— विष्णुपुराण, 26-2

उन्हें अपने रथ में बैठाकर अपनी नगरी की ओर चल देते हैं।[1] मार्ग में युवराज रुक्मी, पौण्ड्रक, दन्तवक्र, विदूरथ और शिशुपाल आदि उन्हें रोकने की कुचेष्टा करते हैं जो अन्ततः विफल हो जाती है।[2]

इस प्रकार रुक्मी प्रभृति योद्धाओं को परास्त कर राक्षस विवाह से प्राप्त राजकुमारी रुक्मिणी का श्याम सुन्दर श्रीकृष्ण के साथ वेदोक्त रीति से सम्यक् विवाह सम्पन्न होता है।[3]

महारानी रुक्मिणी का प्रेम अनन्य था। वे साध्वी और धर्म परायणा थीं। श्रीकृष्ण के गुणों से वे आकृष्ट हुई थीं और उन्होंने श्रीकृष्ण को ही अपने मन में पतिरूप में वरण किया था। उनकी निष्ठा, साधना औरतपस्या अनेक विघ्नों के बाद सफल होती है और जगदीश्वर श्रीकृष्ण उन्हें पति के रूप में प्राप्त होते हैं।

1- श्वोभाविनि विवाहे तु कन्यां हृतवान् हरिः।
— वि0पु0 26-6

2- निर्जितांश्च समागम्य रामाद्यैर्यदु पुङ्गवैः॥
— वही, 26-8

3- निर्जित्य रुक्मिणं सम्यगुपयेमे च रुक्मिणीम्।
राक्षसेन विवाहेन सम्प्राप्तां मधुसूदनः॥ — विष्णुपुराण, 26-9।

महारानी रुक्मिणी का चरित किसी भी निष्ठावान् नारी - समाज के लिए प्रेरणादायक हो सकता है। वे ईश्वर की माया ही हैं जो रुक्मिणी के रूप में अवतरित हुई हैं। श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के विवाह से समाज में अधम समझी जाने वाली राक्षस-विवाह विधि भी पवित्र हो गयी है। इसमें कन्या की इच्छा को ही सर्वोपरि महत्व दिया जाता है और अन्ततः उसके प्रेम तथा निष्ठा की विजय होती है।

बाणासुर पुत्री उषा -

विष्णुपुराण के 32 वें अध्याय में बड़े विस्तार से बाणासुरपुत्री उषा का चरित्र दिया गया है। उषा, सहस्र भुजाओं वाले दैत्यराज बाणासुर की तनया होने के कारण भोगवादी प्रवृत्ति की प्रतीत होती है। वह युवती है और उसके तन और मन में चंचलता छलक रही है। पिता द्वारा उचित अवस्था पर विवाहादि संस्कार न किये जाने पर उसके मन में मादकता समाई हुई है जो ऐसी अवस्था पर स्वाभाविक ही दिखाई देती है।

एक समय की बात है कि बाणासुर तनया उषा शंकर जी के साथ पार्वती जी को क्रीडा करते हुए देखकर उसके मन में भी अपने पति के साथ रमण करने की तीव्र इच्छा जागृत हुई।[1] सर्वान्तिर्यामिनी पार्वती जी ने उस

1- उषा बाणसुता विप्र पार्वतीं सह शम्भुना।
क्रीडन्तीम् उपलक्ष्योच्चैः स्पृहां चक्रे तदाश्रयाम्॥
— वि0पु0 32-1।

सुकुमारी उषा के मन की बात जानतेहुए उससे धैर्य रखने की सलाह दी और कहा कि यथासमय तुम भी अपने पति के साथ सुखपूर्वक रमण करोगी।[1]

भोग की तीव्र लालसा लिए हुए उषा अपने मन में विचार करने लगी कि न जाने कब इस प्रकार का सुकाल उपस्थित होगा कि वह अपने प्रियतम के साथ स्वच्छन्द विहार करने का अवसर प्राप्त करेगी।[2]

पार्वती जी सर्वान्तर्यामिनी हैं -इसलिए वह उषा के मन की बात समझती हुई कहती हैं कि वैशाख शुक्ला द्वादशी की रात्रि को जो पुरुष है राजपुत्रि, तुमसे अभिभव करेगा वही तुम्हारा पति होगा।[3]

पार्वती जी के कथनानुसार वह समय उपस्थित होता है।उसी तिथि और समय में वह पुरुष रात्रि में स्वप्न में उषा के साथ समागम करता है और स्वप्न में ही बाणासुर तनया उषा का उससे अनुराग हो जाता है।जब जागती है तो वहाँ उसे कोई पुरुष दिखाई नहीं देता। वह व्याकुल हो जाती है। उसकी सुधि और बुधि खो जाती है और निर्लज्जतापूर्वक क्रन्दन करती है-

---

1- अलमत्यर्थं तपेन भर्ता त्वमपि रंस्यसे।
- विष्णुपु0 32-12

2- इत्युक्ता सा तदा चक्रे कदेतिमतिमात्मनः
को वा भर्ता ममेत्याह पुनस्तामाह पार्वती।।- वि0पु0 32-13

3- वैशाखशुक्ल द्वादश्यां स्वप्ने योऽभिभवं तव।
करिष्यति स ते भर्ता राजपुत्रि, भविष्यति।।- वही, 32-14

हे नाथ, आप कहाँ मुझे छोड़कर चले गये हैं। उसकी यह अवस्था देखकर उसकी प्रिय सखी चित्रलेखा उससे सभी बातें समझाने का प्रयत्न करती है।

चित्रलेखा को स्वप्न में दिखाई पड़ने वाले किसी युवक के साथ उषा की प्रीति और आसक्ति का पता चल जाता है। उषा — अपनी प्रिय सखी चित्रलेखा से सविस्तर मनोव्यथा का कारण बतला देती है और पार्वती जी के साथ उसके जो वार्तालाप हुए थे उन सबको भी उषा यथावत् चित्रलेखा से बतला देती है और उससे अन्त में कहती है कि जैसे भी उस युवक से पुनः समागम हो वही उपाय तुम्हें करना चाहिए।[1]

तदनन्तर चित्रकला के कर्म में निपुण चित्रलेखा चित्रपट पर देवता दैत्य, गन्धर्व और प्रमुख मनुष्यों के चित्र लिखकर उषा के सामने प्रदर्शित करती है।[2] उषा की दृष्टि मनुष्यों के चित्र में विशेषरूप से अन्धक और वृष्णि वंशी यादवों के युवकों के चित्र पर जाकर टिकती है। बलराम और श्रीकृष्ण तथा प्रद्युम्न के चित्रों को देखकर वह लज्जावश होते हुए अपनी दृष्टि हटा लेती है। तत्पश्चात् प्रद्युम्न तनय प्रियतम अनिरुद्ध जी के चित्र को देखते ही उस

1- विदितार्थां तु तामाह पुनरुषा यथोदितम्।
देव्या तथैव तत्प्राप्तौ यो ह्युपायः कुरुष्व तम्॥ — वि0पु032-19

2- ततः पटे सुरान् दैत्यान् गन्धर्वांश्च प्रधानतः।
मनुष्यांश्च विलिख्यासौ चित्रलेखान्वदर्शयत्॥ — वही, 32-22

उस अत्यन्त विलासिनी बाणतनया की लज्जा विगलित हो जाती है। वह अनि-रुद्ध के मनोहारी चित्र को देखकर बोल उठती है वह यही है, वह यही है।'[1]

इस पर उसकी प्रिय सखी योगगामिनी चित्रलेखा बाण-तनया से कहती है कि देवी पार्वती ने प्रसन्न होकर ही श्रीकृष्ण जी के पौत्र अनि-रुद्ध को तुम्हारे पति के रूप में निश्चित किया है। प्रद्युम्न-पुत्र अनिरुद्ध जगत् में अद्वितीय सुन्दरता के लिए विश्रुत है। यदि तुम्हें अनिरुद्ध पति के रूप में प्राप्त होता है तो समझ लो कि तुमने सर्वस्व प्राप्त कर लिया। ऐसा वर संसार में दुर्लभ है।[2]

उषा की वियोगव्यथा चित्रलेखा से देखी नहीं जाती। वह द्वा-रिका पुरी जाकर अनिरुद्ध को यहाँ पर ले आने का वचन देती है। कुछ समय धैर्य रखने और प्रतीक्षा करने का आश्वासन देकर चित्रलेखा द्वारकापुरी के लिए प्रस्थान करती है।

1- सो यं से यमितीत्युक्ते तया सा योगगामिनी।
चित्रलेखाब्रवीदेनाम् उषां बाण-सुतां तदा॥-
— विष्णुपुराण, 32- 26

2- अयं कृष्णस्य पौत्रस्ते भर्ता देव्या प्रसादितः
अनिरुद्ध इति ख्यातः प्रख्यातः प्रियदर्शनः ॥-
— वही, 32- 27

चित्रलेखा योगमाया में दीक्षित है? वह अपने योगबल से शीघ्र ही द्वारका पहुंच जाती है। वहाँ पर वह श्रीकृष्ण जी के पौत्र और प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध से मिलती है तथा बाणासुर तनया के उसको लेकर घटित समस्त वृत्तान्त और उषा की वियोगजन्य, मनोव्यथा का समाचार बतलाकर अनिरुद्ध को अपने साथ बाणासुरनगरी में उषा के पास योग बल से ले आती है।[1]

उषा के सम्पूर्ण मनोरथ सफल हो जाते हैं। अनिरुद्ध कन्या के अन्तः पुर में रहने लगते हैं और पति-पत्नी की भाँति अपनी प्रणयलीलाकरते हुए रमण करते हैं।

इसके पश्चात् कन्या के अन्तः पुर के सम्पूर्ण वृत्तान्त रक्षकों के द्वारा बाणासुर को विदित होते हैं जिससे क्रुद्ध बाणासुर अनिरुद्ध को मारने के लिए अपने सेवकों को आदेश देते हैं किन्तु सभी सेवक अनिरुद्ध से पराजित हो जाते हैं और बाद में बाणासुर छलपूर्वक यदुनन्दन अनिरुद्ध को नागपाश में बाँध कर गिरफ्तार कर लेते हैं। किन्तु बाद में जब यह वृत्तान्त बलराम और श्रीकृष्ण जी को विदित होता है तो वे बाणासुर नगरी आकर अनिरुद्ध

1- एतस्मिन्नेव काले तु योगविद्याबलेन तम्।
अनिरुद्धमथो निन्ये चित्रलेखा वराप्सरा ॥
— विष्णुपुराण, 33- 5

को नागपाश से छुड़ा देते हैं।[1]

अनिरुद्ध और उषा द्वारकापुरी आ जाते हैं। जहाँ वे दम्पति के रूप में आनन्दपूर्वक रहने लगते हैं।[2]

विष्णुपुराण में वर्णित बाणासुर तनया उषा एक नवयौवना विलासिनी नायिका के रूप में चित्रित की गयी है। असुर परिवार से सम्बद्ध होने के कारण भोग के प्रति उसकी सम्बद्धता निरन्तर बढ़ती जाती है। यह उस पर महादेव और पार्वती जी की महती कृपा है जिससे उसे यदुकुलभूषण अनिरुद्ध जैसा पति शीघ्र प्राप्त हो गया और वह धूमाकुलित दृष्टि वाले यजमान की आहुति की तरह वेदी की अग्नि से बाहर नहीं गिर सकी।

नवयौवन नर और नारियों को अन्धा बना देता है। प्राक् युवावस्था में दृष्टि रागपूर्ण हो जाती है। शास्त्र रूपी जल के प्रक्षालन से निर्मल भी बुद्धि में कालुष्य आ जाना स्वाभाविक है।

बाणासुर तनया अपने सदृश नारी जाति का प्रतिनिधित्व करती है जो युवावस्था में स्वाभाविक प्रवृत्तियों का अनुसरण कर अपने एक स्वतंत्रमार्ग का सृजन करती है।

1- इत्युक्त्वा प्रययौ कृष्णः प्रद्युम्निर्यत्र तिष्ठति।
तद्बन्धक्षिणो नेशुर्गरुडानिलपोथिताः ॥— वि०पु० 33-5।

2- ततो निरुद्धमरोप्य सपत्नीकं गरुत्मतिः
आजग्मुर्द्वारिकां राम कार्ष्णिदामोदराः ॥— वही, 32- 52

इस प्रकार हम देखते हैं कि विष्णुपुराण की नारियाँ दैवी और आसुरी प्रवृत्तियों के प्रतीक के रूप में चित्रित की गयी हैं। एक ओर माता देवकी, श्रीकृष्ण-गृहीता कुब्जा, महारानी रुक्मिणी और उषा दिव्य विचारों से सम्पन्न हैं; उनका व्यक्तित्व श्रीकृष्ण के विराट् व्यक्तित्व के चारों ओर परिभ्रमण करता हुआ प्रतीत होता है। वे कर्तव्य-परायणा, श्रीकृष्णा - नुरागरंजिता, धर्मपथगामिनी, और भारतीय संस्कृति की दिव्य प्रभामण्डिता मंजुल रत्नावलियाँ हैं। परवर्ती नारियों के लिए उनका तप और सतीत्व मार्ग-दर्शक का काम करता है। श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम और अनन्य परायणा - भक्ति से उनका जीवन धन्य हो जाता है उनके जीवन की व्यष्टि श्रीकृष्ण के विराट् व्यक्तित्व की समष्टि में समाहित होकर अपने चरम लक्ष्य का स्पर्श करती है।

दूसरी ओर पूतना नारियों के आसुरी विचारों का प्रतीक है। आसुरी विचार-प्रधान नारियाँ शुभ को अशुभ में परिवर्तित कर देती हैं। ऐसी नारियाँ नारी जगत् का कृष्ण-पक्ष हैं, जो नारी समाज को कलंकित करती हैं। अतएव अधर्मपथगामिनी पूतना जैसी नारियाँ वधयोग्य हैं।

षष्ठ अध्याय

मार्कण्डेय पुराण के नारी-पात्र

षष्ठ अध्याय

मार्कण्डेयपुराण के नारी-पात्र

मार्कण्डेय पुराण के नारी पात्रों में सती अनुसूया, सती मदा-लसा, नवदुर्गायें और सती शाण्डली का वर्णन प्राप्त है। संक्षेप में उनके जीवन और उनके कठोर तप पर क्रमशः प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जा रहा है।

सती अनुसूया -

सती अनुसूया मार्कण्डेयपुराण का नारी रत्न है। उसका प्रकाश अन्य सती नारियों के जीवनपथ को आलोकित करता है। उनकी तपश्चर्या, पति-भक्ति, पतिनिष्ठा, पातिव्रत्यधर्म और सत्य-संकल्प अनन्य है।

मार्कण्डेयपुराण के प्रथम भाग में उपलब्ध दत्तात्रेय वर्णन प्रसंग में पतिपरायणा अनुसूया के सतीत्व का अद्भुत वर्णन और उनके चरित्र का चम-त्कार अवलोकनीय है।[1]

एक समय की बात है कि प्रतिष्ठान नगर में एक कुशिक वंशी ब्राह्मण रहा करते थे। वे पूर्व जन्मों के पापों के कारण कुष्ठरोगों से पीड़ित हो गये थे, फिर भी उनकी पत्नी देवता के समान उनका पूजन करती थी। वह

1- मार्कण्डेयपुराण : प्रथमभाग, पृ0 217-242
श्रीरामशर्मा, तृतीय संस्करण 1980

ब्राह्मण वेश्यागामी थे, उन्होंने अपनी रुग्णावस्था में भी अपनी पत्नी से उस वेश्या के घर उन्हें ले जाने के लिए प्रेरित किया, वह उन्हें अपने कंधे में बैठाकर वेश्या के घर ले जा रही थी, मार्ग में रात्रि हो गयी, राजमार्ग में उस समय चोरी के मिथ्यापराध में कुछ ऋषिगण शूली में चढ़े या लटके हुए थे। उस सती नारी के अंधेरे में पैर लड़खड़ाते हैं और कंधे में चढ़े हुए उसके पति के पैर माण्डव्य ऋषि के शरीर का स्पर्श कर जाते हैं। इस पर क्रुद्ध ऋषि उसे सूर्योदय होते ही असह्य यंत्रणा भोगते हुए मृत्यु को प्राप्त होने के शाप देते हैं। शाप सुनकर ब्राह्मण पत्नी विचलित हो जाती है और सूर्योदय न होने का वचन कहती है। सती के वचनों से दूसरे दिन सूर्योदय नहीं होता है और इसी प्रकार बिना सूर्योदय के ही समय बीतने लगता है जिससे सभी प्राणी और देवगण भयभीत होते हैं तथा सभी देवगण पितामह ब्रह्मा के यहाँ जाकर अपनी समस्या प्रस्तुत करते हैं। पितामह ब्रह्मा ने देवों की समस्या सुनकर कहते हैं कि परम तेज और तप से ही तप का नाश होता है इसलिए यदि एक पतिव्रता के तप से सूर्योदय नहीं हो रहा है तो सूर्योदय

1- देवानां वचनं श्रुत्वा प्राहुर्देवः प्रजापतिः।

तेजः परं तेजसैव, तपसा च तपस्तथा॥

— मार्कण्डेय पुराण पृष्ठ 223, श्लोक 48

प्राप्ति के लिए जगतीतल की परम तपस्विनी, तेजोवरेण्या, पतिव्रता-पुरोगामिनी महामुनि अत्रिपत्नी अनुसूया को प्रसन्न करना चाहिए।[1] तदनन्तर देवता परमकरुणामयी माता अनुसूया को प्रसन्न करते हैं। अनुसूया उनकी प्रार्थना का प्रयोजन समझकर उस ब्राह्मण पत्नी के पास जाती हैं और उससे सूर्योदय होने देने का आग्रह करती है तथा सूर्योदय होने के पश्चात् भी उसके पति को जीवित कर देने का वचन भी देती है। तदनन्तर अनुसूया के तपः प्रभाव से भगवान् भास्कर पुनः दस विशाल रात्रियों के पश्चात् अन्तरिक्ष में उदित होते हैं और यथावश उस ब्राह्मण का प्राणान्त हो जाता है तब पतिव्रता शिरोमणि अपने तपः प्रभाव से उस ब्राह्मण को नवजीवन, नवयौवन और शतायु होने का वरदान देते हुए उसे पुनर्जीवित कर देती हैं। वे स्वयं कहती हैं कि यदि मैं अपने स्वामी के समान किसी अन्य देवता को भी नहीं मानती हूँ तो मेरे इस सत्य के बल से यह ब्राह्मण रोगरहित होता हुआ पुनर्जीवन को प्राप्त हो।[2]

1- तस्मात् पतिव्रतामत्र ह्यनुसूयां तपस्विनीम्।
प्रसादयेत यूयं वै भानोरुदयकाम्यया॥
— मार्कण्डेयपु0 50, पृ0 224

2- यथा भर्तृसमं नान्यमहं पश्यामि देवतम्।
तेन सत्येन विप्रोऽयं पुनर्जीवत्वनामयः॥ — वही, 84 पृ0 228

सती प्रवरा अनुसूया के कथन से ब्राह्मण को नवजीवन प्राप्त होता है और उधर सूर्योदय होने से सभी प्राणियों के दैनिक कार्य होने लगते हैं, इस पर देवगण अनुसूया से प्रसन्न होते हैं और उससे अपना अभीप्सित वर प्राप्त करने को कहते हैं। तब अनुसूया उनसे ब्रह्मा विष्णु और महेश को अपने पुत्रों के रूप में जन्म लेने का वरदान देने के लिए कहती हैं। देवगण तथास्तु' कहकर वहां से चले जाते हैं। कालान्तर में ब्रह्मा सोम के रूप में, विष्णु दत्तात्रेय के रूप में और रुद्र दुर्वासा के रूप में अनुसूया के पुत्र होकर जन्म लेते हैं। किन्तु अन्य ग्रन्थों में अनुसूया के घर ब्रह्मा; विष्णु और महेश के पुत्र रूप में जन्म की कथा का वर्णन अन्य प्रकार से प्राप्त होता है जो इस शोध प्रबन्ध का प्रतिपाद्य प्रयोजन नहीं है किन्तु फिर भी सार संक्षेप निम्नवत् है -

अनुसूया का शाब्दिक अर्थ न असूया इति अनसूया अर्थात् जो ईर्ष्या द्वेष से रहित हो और सबमें समत्व बुद्धि का भाव हो। इस दृष्टि से सती अनुसूया 'यथा नाम तथा गुण' ही है। अनुसूया के जीवन से यह प्रकट है कि पतिदेव चाहे नगर में हो, वन में हो, शुभ हो या अशुभ हो जो पति से निरन्तर प्रेम करती है उन्हें शुभ लोकों की प्राप्ति होती है।[1]

1- नगरस्थो वनस्थो वा शुभो वा यदि वाशुभः।
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः॥
— वा0रा0।।7-

पतिदेव दुःशील, कामपरायण और निर्धन चाहे क्यों न हों, आर्य स्वभाव वाली नारियों के पति परमदेवता है।[1]

एक अन्य कथा प्रसंग से यह बात प्रकट होती है कि उमा, रमा और ब्रह्माणी को यह असूया एक समय हुई कि ब्रह्माण्ड परमसती का स्थान अनसूया को प्राप्त है जिसे वे सहन नहीं कर पाती हैं और अपने अपने पतियों से अनसूया के सतीत्व की परीक्षा हेतु प्रार्थना करती हैं। तद - नन्तर तीनों देव (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) मुनियों का रूप धारण कर अत्रि के आश्रम में चित्रकूट पहुंच जाते हैं। वे अनसूया की परीक्षा लेना चाहते हैं। अनसूया का स्वागत और सत्कार वे इस शर्त पर ही स्वीकार करना च चाहते हैं कि यदि वह (अनसूया) निर्वस्त्र होकर उनका आतिथ्य सत्कार करे। तदनन्तर अनसूया उन्हें अपने तपोबल से नवजात शिशु के रूप में परिणत कर देती है और उन्हें अपना स्तनपान कराती है। इधर उमा, रमा और ब्रह्माणी सती की परीक्षा लेने गये अपने पतियों की यह दशा देखकर घबड़ा जाती हैं-

---

1- दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः।
स्त्रीणामार्य स्वभावानां परमं दैवतं पतिः॥
वा0रा0 117- 24 (अ0का0)

और वहाँ जाकर अनसूया से अपने पतियों की वापसी की प्रार्थना करती हैं। अनसूया उन तीनों को अपनी पुत्र-वधुओं के रूप में स्वागत करती है और उन्हें कभी किसी से असूया, ईर्ष्या और डाह आदि न करने का उपदेश देती हैं तथा तीनों शिशुओं पर जल छिड़ककर उन्हें यथावत् कर देती हैं और तीनों देव वहाँ से चलते समय अनसूया की इच्छानुसार उसके यहाँ पुत्रों के रूप में अवतरित होने का वरदान देते हैं।

अनसूया और सीता संवाद - दोनों सतियों का गंगा-यमुना संगम जैसा निर्मल और परमपवित्र है। इनके संवाद में ही सती नारियों के जीवन का सार छिपा है। माता- पिता बन्धु बान्धव, सखी, परिजन, गृह-परिवार सम्पूर्ण सुखों को छोड़कर सीता ने अपने प्रियतम राम के साथ वनगमन का असाधारण निर्णय लिया है, वे राम के बिना नहीं रह सकतीं। यह बात सती अनसूया को अत्यधिक प्रभावित करती है और सीता से वे कहती हैं कि आर्य ललनाओं के लिए पति ही श्रेष्ठतम देवता है। पति चाहे वन में हो या नगर में, शुभ हो या अशुभ जो नारियाँ अपने पति को ही सर्वस्व मानती हैं वे धन्य हैं।[1]

1- वाल्मीकि रामायण, अयो०काण्ड, 117- 23, 24

इस प्रकार उपर्युक्त कथा प्रसंगों से यह स्पष्ट है कि अत्रि-पत्नी पतिव्रता शिरोमणि अनसूया अपने सत्य, शील, तप, निष्ठा और पातिव्रत्य धर्म से सम्पूर्ण नारी समाज के लिए प्रकाश स्तम्भ है। ऐसी नारी भारतीय संस्कृति की कभी न बुझने वाली ज्योति है, कभी न चुकने वाला जलाशय है, कभी न पराजित होने वाला तेज है और कभी न समाप्त होने वाला अक्षय पुण्य है।

आधुनिक नारियाँ असूया अर्थात् ईर्ष्या, द्वेष और डाह आदि दुर्गुणों से घिरी हुई हैं उन्हें माता अनसूया के चरित्र से शिक्षा लेकर अपना सुधार करना चाहिए।

इस बीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में भी जब सम्पूर्ण समाज इक्कीसवीं शताब्दी में प्रवेश हेतु प्रस्तुत है प्राचीन भारतीय नारी के शील, सत्य तेज, तप, पतिनिष्ठा और सदाचार आदि विविध गुण उसे सुसंस्कृत, आदर्श और कुलभूषण गृहलक्ष्मी बनाने में समर्थ हैं।

सती मदालसा :-

मार्कण्डेय पुराण में वर्णित सती नारियों में सती मदालसा का अद्वितीय स्थान है। उनके जीवन और व्यक्तित्व में दिव्यता दिखाई देती है।

ऐसी ज्ञानसम्पन्ना और आध्यात्मिक पथ पर मन से,प्रवृत्त नारी विरल होती है। ऐसी नारी अपने सदाचार से अपने जीवन और अपने परिवेश को पवित्र बना देती है। यद्यपि मदालसा में 'यथा नाम तथा गुणः' की उक्ति चरितार्थ नहीं होती है, क्योंकि मदालसा का शाब्दिक अर्थ मद से अलसायी हुई होता है, वैसे भी सती मदालसा के मत में जगत् में नाम और रूप असत् होते हैं और नाम संसार में व्यवहार मात्र के प्रयोजन वाला होता है इसलिए नाम के अर्थ को लेकर उसे व्यक्ति विशेष के जीवन के साथ घटित नहीं करना चाहिए उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति जन्म से अंधा हो और उसके पिता ने नाम का अर्थ बिना विचार कर ही उसका नामकरण 'नयन सुख' के रूप में कर दिया हो, तो इस अर्थको लेकर अन्धे व्यक्ति का सामंजस्य नहीं बैठ सकता। इसलिए 'मदालसा' यह नाम भी व्यवहार मात्र प्रयोजन वाला ही है। क्योंकि सती मदालसा अपने जीवन में मद और आलस्य से रहित रही है।

सती मदालसा आदर्श विदुषी, आदर्श माता और आदर्श सती नारियों में से एक है। उसने अपने जन्म और कर्म से न केवल पितृकुल और पतिकुल को विभूषित किया है प्रत्युत सम्पूर्ण समाज और भारतीय संस्कृति को अपनी दिव्य प्रभा से मण्डित किया है।

मदालसा प्रसिद्ध गन्धर्वराज विश्वावसु की तनया है और जन्मान्तर में उनके पिता नागराज अश्वतर होते हैं। विधाता अवश्यम्भावी घटनाओं को अपनी इच्छानुसार घटित कर देता है और सम्पूर्ण प्राणीजगत् उसी एक मात्र विधाता की अघटित घटनापटीयसी इच्छा का उसी प्रकार वश-वर्ती है जैसे वात्याचक्र में फँसा तृण वात्याचक्र का अनुवर्ती और वशवर्ती हो जाता है।[1] मदालसा के जीवन में भी कुछ इसी प्रकार अघटित घटनायें ही घटित हुई हैं।

ऐसा सुना जाता है कि देवलोक के गन्धर्वराज विश्वावसु की तनया मदालसा अपने पिता के उद्यान में भ्रमणार्थ गयी हुई थी। वह जब वहाँ भ्रमण कर रही थी तो वहाँ सहसा पाताल केतु नाम का एक दानव प्रकट होता है और वहाँ से उसका अपहरण कर उसे पाताल लोक ले जाता है। मदालसा देवलोक के गन्धर्वराज की पुत्री होने के कारण अपूर्व सुन्दरी है,[2]

1- अवश्यभव्येष्वनवग्रहग्रहा

यथा यया धावति वेधसः स्पृहा।

तृणेन वात्येव भृशानयात्मना

जनेन तेनैव पथानुगम्यते।।— नैषधीय चरितम्, प्र0स0

2- विश्वावसुरिति ख्यातो दिविगन्धर्वराट् प्रभो।

तस्येयमात्मजा सुभ्रूनीम्नाख्याता मदालसा।।— मार्क0पु0, मदालसोपाख्यान, 28-29पृ0 259

मानुषी नारियों में ऐसे रूप की संभावना नहीं की जा सकती थी, इसलिए पाताल केतु नामक दानव उसके अपहरण के पश्चात् पाताल लोक में आगामी त्रयोदशी में उसके साथ बलात् विवाह रचाना चाहता था[1] किन्तु विधाता की इच्छा के सामने किसी प्राणी का भी वश नहीं चलता है, चाहे वह देव हो, नर-किन्नर, गंधर्व और दानव हो। इसी बीच महामुनि गालव की कृपा से महाराज शत्रुजित् के पुत्र ऋतध्वज को कुवलय नाम का अश्व प्राप्त होता है, वह अश्व दिव्य गुणोपेत और अव्याहत गतिवाला है। राजकुमार ऋतध्वज महामुनि गालव यज्ञ यागादि कार्यों की रक्षा हेतु उसी अश्व पर आरूढ़ होकर जाते हैं और उस पाताल केतु दानव के वध हेतु उसका पीछा करते हैं। वह मायावी दानव उन्हें पाताल लोक ले जाता है और वहाँ वह अदृश्य हो जाता है। वहीं पर राजकुमार ऋतध्वज पहले से ही उक्त दानव द्वारा अपहरण कर लाई गयी अपूर्व सुन्दरी मदालसा को देखता है और उसका परिचय प्राप्त करता है। दोनों एक दूसरे को देखकर आकर्षित होते हैं और अन्ततः राजकुमार ऋतध्वज तथा गन्धर्व राजकुमारी मदालसा का वहीं शीघ्रता से विवाह होता है। पातालकेतु दानव का वध करने के पश्चात् राजकुमार

1- आगामिन्यां त्रयोदश्याम् उद्यति किलासुरः ॥ मा०पु०, म०3031 पृ0259

अपनी पत्नी मदालसा के साथ पृथ्वीलोक लौट आता है, घर में राजा और रानी एवं इष्टमित्र सभी उनका स्वागत करते हैं।

कल्याणी, शुभमयी मदालसा अपने पति के साथ बड़े आनन्द के साथ रहने लगती है। दिन पर दिन बीतने लगते हैं। एक दिन की बात है कि राजा शत्रुजित् अपने पुत्र राजकुमार ऋतध्वज से कहते हैं कि बेटा तुम नित्य प्रातः काल इस अश्व पर सवार होकर ब्राह्मणों, ऋषियों और मुनियों की रक्षा हेतु पृथ्वी परिक्रमा किया करो ताकि पापात्मा दानव मुनियों के धार्मिक कार्यों में विघ्न बाधा न डाल सकें।[1]

एक समय की बात है कि राजकुमार पृथ्वी की परिक्रमा करते करते यमुना के तट पर पहुंचते हैं वहाँ पर पाताल केतु का भाई तालकेतु मुनि के वेश में आश्रम बनाकर रहता था। पुरानी शत्रुता का स्मरण कर वह राजकुमार से छलपूर्वक उनका कण्ठहार ले लेता है और उसे आश्रम की रक्षा का कार्य सौंपकर राजकुमार के घर जाता है, जहाँ पर वह राजकुमार ऋत - ध्वज के निधन का झूठा समाचार सुनाता है और प्रमाण स्वरूप उसका कण्ठहार

1- अश्वमेतं समारुह्य प्रातः प्रातः दिने दिने।
आबाधा द्विजमुख्यानन्वेष्टव्या सदैव हि।।
— मा0पु0मदालसा उपा0, 2 श्लोक्सं0 2पृ0270

उनके माता-पिता को बताता है। यह समाचार सुनकर सम्पूर्ण राजपरिवार शोकसागर में निमग्न हो जाता है किन्तु राजकुमार की धर्मपत्नी मदालसा को तो इस समाचार से वज्राघात जैसा आघात लगता है जिससे वह अत्यन्त दुःखी हो अपने प्राण त्याग देती है।[1]

राजा शत्रुजित् ने अपनी पुत्रवधू के निधन से दुःखी सभी स्वजनों को समझाया और कहा कि पति का अनुगमन करने वाली नारी कदापि शोचनीय नहीं होती। क्योंकि नारी के लिए पति के अतिरिक्त अन्य कोई भी देवता नहीं होता।[2] जो नारी पति का अनुगमन नहीं करती वह शोचनीय होती है। पति से वियुक्त वियोगिनी कुलजनों के लिए सदैव शोचनीय है।[3] इस प्रकार राजा शत्रुजित् अपनी पुत्रवधू मदालसा के लिए प्रशंसा-वचन कह कर विराम लेते हैं।

1- राजा तु तां मृतां दृष्ट्वा विना भर्त्रा मदालसाम्।

— मा0पुराण, पृ0 273 श्लोक 27

2- कथं तु शोच्या नारीणां भर्तुरन्यन्न दैवतम्।

शोच्या ह्येषा भवेदेवं यदि भर्त्रा वियोगिनी॥

— मार्कण्डेयपुराण- 34 पृ0 273

3- शोच्या ह्येषा भवेदेवं यदि भर्त्रा वियोगिनी॥

— मा0पु0पृ0273 श्लोक 34

इसके पश्चात् तालकेतु के अपने यमुना तटस्थित आश्रम पर लौट आने के बाद राजकुमार ऋतध्वज अपने घर आता है जहाँ पर वह सभी को दुःखी और उद्विग्न पाता है तथा मदालसा के निधन के समाचार से अत्यन्त दुःखी होता है, शोकग्रस्त रहने लगता है और प्रतिज्ञा करता है कि वह किसी अन्य नारी के साथ सहधर्म और सहवास कदापि नहीं करेगा तथा किसी दूसरी नारी को भी वह स्वीकार नहीं करेगा।

इसी बीच नागराज अश्वतर घोर तप करते हैं और भगवान् शंकर से मदालसा के दुहितृत्व(अर्थात् उसे दुहिता के रूप में प्राप्त करने) का वरदान प्राप्त करते हैं।[1] फलस्वरूप मदालसा पुनः उसी रूप में पूर्व जन्म के वृत्तान्तों को जानने वाली होकर नागराज अश्वतर के यहाँ जन्म लेती है। और वह पुनः राजकुमार ऋतध्वज को पतिरूप में प्राप्त करती है।कवि-वर माघ ने सत्य कहा है कि निश्चल प्रकृति और सती नारी जन्मान्तर में भी उसी पुरुष को प्राप्त करते हैं।[2]

1- मृता कुवलयाश्वस्य पत्नी देव मदालसा।
तेनैव वयं सावद्या दुहितृत्वं प्रयातु मे॥
— मा0पु0कुवलयाश्ववर्णन, 66पृ0285

2- सती च योषित् प्रकृतिश्च निश्चला
पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि॥ — शिशुपालवधम्, प्रथमसर्ग

कालान्तर में मदालसा माँ बनी है और उसके प्रथम पुत्र का नाम विक्रान्त होता है। वह शिशु माता मदालसा के द्वारा अपने शैशवकाल से ही अध्यात्म, दर्शन की शिक्षा प्राप्त करने लगता है। माता मदालसा उससे कहती है कि मेरा नाम रूप दोनों मिथ्या है, नश्वर है। तुम्हारा शरीर पांच भौतिक है, तुम्हारा नहीं है तथा तुम भी इसके नहीं हो, इसलिए तुम कभी इसके मोह में न पड़ना। मदालसा के उपदेश बड़े गूढ़ और सारयुक्त हैं वह बात-बात में अपने शिशु को बुद्ध कराय और जगत् की असारता, धर्म और अधर्म, सत्य और अनृत का रहस्य समझाती तथा इन सबका त्याग करने का उपदेश देती है। वह कहती है कि धर्म और अधर्म का त्याग करो, सत्य और असत्य का त्याग करो, और जिसके द्वारा इनका त्याग करते हो, उसका भी त्याग करो।[1] क्योंकि यह संसार अविद्या और अज्ञान मूलक है, इसलिए नाशवान् है, केवल आत्मतत्व ही एक मात्र अविनाशी और विभु, सच्चिदानन्दघन है।

इस प्रकार जैसे कच्चे घड़े में कुम्भकार अपनी इच्छानुसार परिवर्तन कर देता है उसी प्रकार उस शिशु विक्रान्त में माता मदालसा के उपदेशों का संस्कार उसके मानस पटल में यथावत् अंकित हो गया। इस उपदेश

1- त्यज धर्मम् अधर्मं च उभे सत्यानृते त्यज।
उभे सत्यानृते त्यक्त्वा येन त्यजसि तत्त्यज॥
मा०पु०मदालसा० 20, पृ०30।

से राजकुमार विक्रान्त की ममता दूर हो गयी और गृहस्थ धर्म के प्रति वे निस्पृह हो गये।

कालान्तर में मदालसा के दूसरा पुत्र उत्पन्न होता है जिसका नामकरण उसके पिता राजा ऋतध्वज 'सुबाहु' के रूप में करते हैं और तीसरे पुत्र का नाम 'शत्रुमर्दन' रखा जाता है। मदालसा अपने इन दोनों पुत्रों को भी उसी प्रकार आत्मज्ञान देती है जिससे ये दोनों भी संसार और गृहस्थाश्रम के प्रति निस्पृह हो जाते हैं।

मदालसा के चतुर्थ पुत्र का जन्म होता है तो उसके नामकरण हेतु राजा ऋतध्वज अपनी धर्मपत्नी की ओर देखता है। मदालसा अपने चौथे पुत्र का नाम अलर्क रखती है।[1]

राजा ऋतध्वज मदालसा द्वारा किये गये 'अलर्क' इस असम्बद्ध नामकरण से हँस पड़ते हैं और अपने द्वारा प्रथम तीन पुत्रों के नामकरण को सम्बद्ध, सार्थक और अभिप्रेत बताते हैं। इस पर मदालसा भी हँसने लगती है और सभी नामकरणों को असम्बद्ध अभिहाता बताकर व्यवहार मात्र के प्रयोजन वाला कहती है क्योंकि जड़-चेतन, स्थावर जंगम संसार के

1- अहं नाम करिष्यामि चतुर्थस्य सुतस्य ते।
'अलर्क' इति धर्मज्ञ ख्यातिं लोके गमिष्यति॥ — मा0पु0मदालसापुत्रो0श्लोक33
पृ0 303

आत्मरूप होने के कारण विक्रान्त, सुबाहु और शत्रुमर्दन आदि नामों की सार्थकता नहीं है और ये सभी नाम उस सर्वव्यापी निराकार, निरंजन आत्मा की दृष्टि से निरर्थक ही है, इसलिए व्यवहार की सुविधा के लिए कोई भी संज्ञा या नाम पर्याप्त है। उस व्यक्ति के सम्बन्ध में नाम के अर्थ का विचार निरर्थक है अतः चतुर्थ पुत्र का अलर्क' यह नाम उचित ही है क्योंकि नामकरण व्यावहारिकी कल्पना ही है।[1]

तब राजा ऋतध्वज ने अपनी धर्मपत्नी मदालसा से कहा कि तुमने मेरे तीनोंपुत्रों को आत्मज्ञान देकर निवृत्तिमार्गी बना दिया है अब इसे तो प्रवृत्तिमार्ग में चलने के लिए प्रेरित करो ताकि संसार की पिण्डोदकादि क्रियायें तथा अन्यान्य सांसारिक व्यवहार विलुप्त न हो जाय।

राजा की यह बात सुनकर मदालसा अपने चतुर्थ पुत्र से प्रवृत्तिमार्ग का उपदेश देती है। वह सर्वप्रथम उसे गृहस्थाश्रम का महत्व समझाती है क्योंकि सभी धर्म और प्राणी गृहस्थाश्रम जीवी हैं। इसके बाद वह उसे राजधर्म का उपदेश देती है, इसके अन्तर्गत, राजनीति, राजा के कर्तव्य

1- 'अलर्क' इति यत्प्रोक्तं प्रहस्येदमथाब्रवीत्।
कल्पनेयं महाराज कृता व्यावहारिकी॥
— मार्कण्डेयपुराण, पृ0 304 प्रथमखण्ड

राजा के शत्रु, मित्र आदि सविस्तर वर्णन करती है। तदनन्तर वह अपने छोटे बेटे को वर्णाश्रम धर्म सदाचार आदि का विस्तारपूर्वक उपदेश देती है। वह कहती है कि दुराचार से मनुष्य दीर्घजीवी नहीं बनता, इसलिए दीर्घ जीवन और शुभगति के लिए तथा ऐहलौकिक एवं पारलौकिक कल्याण के लिए व्यक्ति को सदाचार में प्रवृत्त होना चाहिए, सदाचार से कुलक्षणों का विनाश होता है।[1]

इस प्रकार मदालसा अपने चौथे पुत्र को प्रवृत्तिमार्ग के उपदेश देती है। उसके युवा होने पर उसका विवाह होता है। ऋतध्वज और मदालसा उसका राज्याभिषेक करते हैं। अलर्क राजा बन जाता है। राजा ऋतध्वज और महारानी मदालसा वनगमन की इच्छा प्रकट करते हैं और चलते समय माता मदालसा प्रवृत्तिमार्गी अपने सबसे छोटे पुत्र को एक अंगूठी प्रदान करती है और कहती है कि जब इस दुःखालय संसार में कभी वियोग बन्धुबाधा, अर्थनाशादि दुःख उपस्थित हो और तुम विचलित होने लगो तो इस अंगूठी के अन्दर स्थित पत्र का वाचन करना। यह कहकर वे दोनों वन

1- दुराचारो हि पुरुषो नेहायुर्विन्दते महत्।
कार्यो यत्नः सदाचारे, आचारो हन्त्यलक्षणम्॥
— मा०पु०प्र०६०पृ० 320

गमन करते हैं और अन्त में दोनों ही अपने पुत्र को गृहस्थाश्रमोचित आशीर्वाद देते हैं।

जब अलर्क दुःखों से घिर जाता है और आकुल व्याकुल होता है तो वह अपनी माता मदालसा द्वारा प्रदत्त अंगूठी के अन्दर स्थित पत्र का वाचन करता है।

माता मदालसा अंगूठी में स्थित अन्तिम उपदेश निम्नवत है - सब प्रकार से संग का त्याग करना चाहिए यदि उसका त्याग न किया जा सके तो साधु का संग करना चाहिए क्योंकि साधु संग ही विश्व की महौषधि है, इसी प्रकार काम(इच्छा) का सर्वान्तःकरण से त्याग कर दे। यदि वह न छोड़ा जाय तो मोक्ष की कामना करे, क्योंकि मोक्ष प्राप्ति का यही एक उपाय है।[1]

1- संगः सर्वात्मना त्याज्यः सचेत् त्यक्तुं नशक्यते।
ससद्भिः सह कर्तव्यः सतां संगो हि भेषजम्॥
कामः सर्वात्मना हेयो हातुं चेच्छक्यते न सः।
मुमुक्षां प्रति तत्कार्यम् सैव तस्यापि भेषजम्॥
मा०पु०प्र० पृ० 347 श्लोक 23-24

मदालसा द्वारा प्रदत्त इस पत्र के वाचन से सम्राट अलर्क के मन में आत्म विवेक का उदय होता है और अन्त में वह दत्तात्रेय जी के संग से सांसारिक त्रिविध दुःखों से छुटकारा पाकर मोक्ष प्राप्त करता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सती मदालसा एक असाधारण नारीरत्न है जिसने न केवल आत्मज्ञान से अपना जीवन आलोकित किया है प्रत्युत अपने पुत्रों का जीवन भी आध्यात्मिक प्रकाश से प्रकाशित किया है।

सती मदालसा गृहस्थाश्रम से लेकर वानप्रस्थाश्रम और सन्यास आश्रम में अपना जीवन सफलतापूर्वक व्यतीत करती और अपने सभी साथियों को भी उस परम प्रयोजन की प्राप्ति कराती है।

सती मदालसा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जगत् के चारों पदार्थों को प्राप्त कर अपना और अपने पति और पुत्रों को सद्गति की ओर ले जाती है। उसका व्यक्तित्व विपुल है। वह भारतीय संस्कृति का कुलभूषण है। परवर्ती नारीसमाज सती मदालसा के विपुल व्यक्तित्व से सदैव प्रेरणा ग्रहण करता रहेगा और समाज में मदालसायें जन्म लेती रहेंगी।

<u>महामाया दुर्गा :–</u>

मार्कण्डेय पुराण में देवी दुर्गा को ब्रह्म की अधिष्ठित महामाया का अवतार बतलाया गया है। दुर्गा की मानुषी नारी में गणना नहीं

होती है। वह तो आदिशक्ति और जगन्माता है। उसके जन्म और कर्म सब दिव्य और अलौकिक हैं। उसके जन्म सोद्देश्य है। वह मातृशक्ति का प्रतीक है। उसके अवतार का उद्देश्य भी जगदीश्वर के अवतार के प्रयोजन के समान है। सज्जनों के परित्राण के लिए और दुष्टों के विनाशार्थ, तथा धर्म के संस्था - पनार्थ जैसे समय समय पर ब्रह्म का अवतार होता रहता है उस प्रकार आदि शक्ति महामाया भी सज्जनों के परित्राणार्थ, दुष्टों के संहारार्थ और धर्म संस्थापनार्थ तथा अधर्म के विनाश हेतु प्रकट होती हैं। दुर्गा सप्तशती के अन्त में दिये गये रहस्यत्रय में तो स्पष्ट कहा गया है कि महेश विष्णु और ब्रह्मा क्रमशः महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती के पुरुष रूप हैं और प्रकारान्तर में महेश, विष्णु, और ब्रह्मा के क्रमशः महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती नारी या शक्तिरूप हैं।[1] इस प्रकार कारण और कार्य की भाँति शक्ति और शक्तिमान में अभेद सम्बन्ध है।

दुर्गा दुर्गम कार्य को करने वाली और दुर्गम मार्ग में चलने वाली आदिशक्ति है।[2] वह त्रिगुणात्मक रूप से महाकाली है और सत्वगुणात्मक

1- एवं युवतयः सद्यः पुरुषत्वं प्रपेदिरे।
चक्षुष्मन्तो नु पश्यन्ति नेतरे तद्विदो जनाः ॥ - दुर्गासप्तशती, प्राधा0 रहस्य 25

2- दुर्गमार्गप्रदा दुर्गविद्या दुर्गमाश्रिता॥ — दुर्गाद्वात्रिंशन्नाममाला। 3

रूप से वह साक्षात् महासरस्वती है।[1] यह योगमाया आदिशक्ति ही महा-काली महालक्ष्मी और महासरस्वती तथा अनेक प्रकार के अभिधान अर्थात् नाम धारण करती है। वह निराकार भी है और साकार भी है।[2] इसलिए दुर्गा की सामान्य लौकिक नारियों में गणना नहीं की जा सकती है। वह देवी भग-वती महामाया ज्ञानियों के चित्त को भी बलात् आकृष्ट कर मोहित कर देती है। वह महामाया माता दुर्गा स्मरण मात्र से अशेष जन्तुओं के दुःख और भय को दूर कर देती है, स्वस्थों को मति और दरिद्रों की दरिद्रता आदि दूर कर सुख प्रदान करती है। वह शिवा है, सभी प्रकार के मंगलों को देने वाली और सम्पूर्ण अर्थों को सिद्ध करने वाली है। वह अखिलेश्वरी समस्त विघ्न-बाधाओं को दूर करने वाली है।[3]

मार्कण्डेय पुराण और चण्डीकवच के अनुसार दुर्गा के नव रूप बतलाये गये हैं —

1- त्रिगुणा तामसी देवी सात्त्विकी या त्रिधोदिता।
सा शर्वा चण्डिका दुर्गा भद्रा भगवतीर्यते॥ — वैकृतिकरहस्यम्-।

2- निराकारा च साकारा सैव नानाभिधानभृत्॥

3- नामान्तरैर्निरूप्यैषा नाम्ना नान्येन केनचित्॥
— वैकृतिक रहस्यम्। 3।

(1) शैलपुत्री

(2) ब्रह्मचारिणी

(3) चन्द्रघण्टा

(4) कूष्माण्डा

(5) स्कन्दमाता

(6) कात्यायनी

(7) कालरात्री

(8) महागौरी

(9) सिद्धिदात्री

एक ही आदिशक्ति योगमाया विविध कार्यों की दृष्टि से विविध अवस्थाओं में नाना प्रकार के अभिधान अर्थात् नाम धारण करती है।[2]

मार्कण्डेय पुराण के 700 श्लोकों में दुर्गा की गाथा विस्तार के साथ प्राप्त होती है, इसी को 'दुर्गासप्तशती' के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त है।

1- प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी।
तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम्।
पंचमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च
सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम्।
नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गा प्रकीर्तिता॥ — चण्डीशतकम् 3-5

2- सैव नानाभिधानभृत् — दुर्गासप्तशती, प्राधानिकरहस्यम् 30

प्राचीन काल से नवरात्र में दुर्गा की पूजा हेतु इसका पाठ पण्डित-समाज के द्वारा किया जाता है।

मार्कण्डेय पुराण में वर्णित दुर्गा का तात्पर्य यही है कि नारी दुर्गा की भाँति अपने कार्यों से महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती का रूप धारण कर सकती है। और इस प्रकार वह समाज में धर्म की संस्थापना कर अधर्म का उन्मूलन कर सकती है।

मार्कण्डेय पुराण के अनुसार संसार की समस्त स्त्रियाँ उसी योग-माया आदि शक्ति दुर्गा के विविध रूप हैं। विविध प्रकार की विद्यायें उसी के ही भेद हैं, उसी एक दुर्गा से सम्पूर्ण विश्व परिपूर्ण है।[1] दुर्गा देवी सर्व-रूपमयी हैं और सम्पूर्ण जगत् देवीमय है यह विश्वरूपा है।[2]

भारतीय नारियाँ दुर्गा की भाँति दुर्गम पथ पर चल सकती हैं और अपने शुभ कार्यों से समाज का कल्याण कर सकती हैं।

1- विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्य परा परोक्तिः ॥ —
मा0पु0दु0स0 11-6

2- सर्वरूपमयी देवी सर्वं देवीमयं जगत्।
अतोऽहं विश्वरूपां तां नमामि परमेश्वरीम्॥ — मूर्तिरहस्य, 26

नारी शक्ति के आयाम विविध हैं। दैवी शक्ति का रूपान्तरण ही नारी है। वह जगत् की प्रतिष्ठा है, संसार की चेतना है, बुद्धि है, विश्रामदायिनी निद्रा है, क्षुधारूपा है, छाया, शक्ति, तृष्णा, शान्ति, लज्जा क्षमा, श्रद्धा, कान्ति, लक्ष्मी, वृत्ति, स्मृति दया, तुष्टि और मातृरूपा है।[1]

किम्बहुना, समाज उक्त गुणों वाली नारी शक्ति के बिना नहीं चल सकता है। नारी इस संसार की आधारभूता मूलप्रकृति है। दुर्गा उसका रूपान्तरण है।

जिस प्रकार दुर्गा ने महिषासुर, शुम्भनिशुम्भ और धूम्रलोचन जैसे विघ्नों और समाजविरोधी दानवों का संहार कर समाज में धर्म की स्थापना की थी उसी प्रकार दुर्गा से प्रेरणा लेकर भारतीय नारी भी महिषासुरों शुम्भों, निशुम्भों और धूम्रलोचनों का विनाश कर अपनी रक्षा और समाज की रक्षा कर सकती है।

सती शाण्डली —

सती शाण्डली मार्कण्डेय पुराण के नारी रत्नों में एक है। उसका सतीत्व और तेज अद्भुत है। सती शाण्डिली की कथा विचित्र संयोगों और दुर्योगों से भरी है।

1- या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।

— मार्कण्डेयपुराण, 5, 1-29

सती शाण्डिली के पति कौशिक नाम के ब्राह्मण थे, वे कुष्ठ रोग से पीड़ित थे तब भी साध्वी और पतिव्रता शाण्डिली अपने पति की तन और मन से सेवा करती थी। पति को देवता समझने वाली नारियों में उसका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। उसे शास्त्रों से विदित हुआ था कि नारी का परमधर्म है पति की सब प्रकार से सेवा करना और उसे संतुष्ट करना। वह इस शास्त्रीय कथन पर अटल विश्वास करती थी। शाण्डिली की दैनिक चर्या पति सेवा से प्रारम्भ होती थी। वह अपने रुग्ण पति की निरन्तर चिन्ता करती और सदैव सेवा में तत्पर रहती थी। उसके थूक, मल-मूत्र रक्त आदि को साफ करने में कभी संकोच या घृणा नहीं करती थी। किन्तु उसका पति बहुत क्रोधी और कामुक था। यद्यपि वह दुर्बल और अशक्त था फिर भी उसने अपनी पत्नी से एक वेश्या के घर उसे ले जाने के लिए कहा।[1] वह वेश्या उसके हृदय में निरन्तर बसी रहती है, जब से उसने उसे देखा है उसका हृदय उससे अलग नहीं हो रहा है। वह अपनी पत्नी शाण्डिली से कहता है कि यदि वह पुष्ट पयोधरा आज रात को उसे नहीं मिलेगी तो वह प्रातः उसके मृत शरीर को ही देखेगी।

1- प्राह भार्यां नयस्वेति त्वं मां तस्या निवेशनम्।
या सा वेश्या मया दृष्टा राजमार्गे गृहे सता॥
मार्कण्डेयपुराण, श्लोक 20 प्र0खण्ड पृ0 220

उस कामातुर पतिदेव की बातें सुनकर सती शाण्डिली आकुल और व्याकुल हो जाती है फिर भी वह अपने दुःख को छिपाये हुए अपने पतिदेव की आज्ञा शिरोधार्य करती है। घर से बहुत सा धन साथ लेकर वह अपने दुर्बल, रुग्ण पति देव को कन्धे में बैठाकर उस वेश्या के पास चल देती है। रात्रि अंधेरी है। आकाश में बादल उमड़ घुमड़ रहे हैं। बिजली चमकरही है। राजमार्ग में एक शूलि गड़ी हुई थी, उसमें मुनिवर माण्डव्य एक चोरी के मिथ्या अपराध में चढ़ाये गये थे। सती शाण्डिली के पादस्खलन के कारण उसके पति का पैर सहसा मुनि के मस्तक पर लग जाता है। मुनि विचलित होते हैं और शाप देते हैंकि जिसने भी मेरे मस्तक पर पाद-प्रहार किया है वह सूर्योदय होते ही मृत्यु को प्राप्त हो जायगा।[1]

माण्डव्य ऋषि के इस शाप को सुनकर शाण्डिली अत्यन्त दुःखी हुई और भावावेश में उसने अपने सतीत्व बल का परिचय देते हुए कहा कि अब सूर्योदय ही नहीं होगा।[2] इसके पश्चात् सूर्योदय के अभाव में केवल रात्रि ही रात्रि होने लगी, सम्पूर्ण धर्म और कर्म विलुप्त हो गये। मृत्युलोक और

1- इत्थं कष्टम् अनुप्राप्तम् पापात्मा नराधमः।
सूर्योदये वधः प्राणैर्विमोक्ष्यति न संशयः॥
मा0पु0प्र0खं0 ,अ 22।

2- तस्य भार्या ततः श्रुत्वा तं शापमतिदारुणम्।
प्रोवाच व्यथिता सूर्यो नैवोदयमुपैष्यति॥ — वही, 22।

देवलोक में हाहाकार हो गया जिससे दुःखी देवगण पितामह ब्रह्मा जी के पास गये तो ब्रह्मा जी ने कहा कि एक सती के तेज का अभिभव कोई दूसरी सती का तेज ही कर सकता है इसलिए आप लोग सती अनुसूया की शरण में जाइये, वही सती शाण्डली को समझाकर समस्या का समाधान कर सकती है। तदनन्तर देवगण सती अनुसूया के पास जाते हैं और अपनी समस्या के समाधान हेतु प्रार्थना करते हैं। अनुसूया अपने तपोबल के प्रभाव से सती शाण्डिली के पति को जीवित कर देती है और तब सूर्योदय होने के कारण दिन में सम्पन्न होने वाले कार्य और कर्म निर्विघ्न सम्पन्न होने लगते हैं।

सती शाण्डिली अपने सतीत्व के बल से जब सूर्योदय रोक सकती है तो इससे स्पष्ट है कि नारियों के लिए पतिशुश्रूषा और पतिभक्ति के अतिरिक्त कोई दूसरा यज्ञ, कोई दूसरा श्राद्ध व्रत और पुण्य इत्यादि नहीं है। नारी पति की शुश्रूषा से अपना सभी मनोवांछित अभीप्सित सिद्ध कर सकती है। नारी के लिए पति ही परमगति है। पति के द्वारा जो भी पुण्यकार्य किया जाता है उसको आधा उसकी पत्नी को स्वतः प्राप्त हो जाता है।[1]

1- नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न श्राद्धं नाप्युपोषितम्।

भर्तृशुश्रूषयैवैतान् लोकान् इष्टान् व्रजन्ति हि॥

पती भर्ता परा गतिः ॥

— मार्कण्डेयपुराण, प्र०अ० पृ० 225 श्लोक 62-63

मार्कण्डेय पुराण के प्रमुख नारीपात्र सती अनुसूया, सती मदालसा, देवी नवदुर्गायें और सती शाण्डली अद्भुत तेज से परिपूर्ण हैं। परवर्ती नारी समाज के लिए उपर्युक्त सती नारियाँ सदैव प्रेरणा का स्रोत रही हैं और भविष्य में भी रहेंगी।

भारतीय संस्कृति ऐसी नारियों की पूजा, अर्चना और वन्दना की संस्तुति करती है। गृहस्थ धर्म और चारों पदार्थ इन्हीं में प्रतिष्ठित हैं।

सप्तम अध्याय

देवी भागवत पुराण के नारी-पात्र

सप्तम अध्याय

देवी भागवत पुराण के नारी -पात्र

देवी भागवत पुराण के अनुशीलन और परिशीलन से प्रकट होता है कि सृष्टि का मूलतत्व आदि शक्ति है। इसमें नारी की प्रतिष्ठा शक्ति के रूप में की गयी है और शक्ति ही विश्व का मूलाधार है। जिस प्रकार कारण और कार्य में कोई भेद नहीं होता है उसी प्रकार शक्ति और शक्तिमान् में कोई भेद नहीं है। भारतीय दर्शन के शाक्त-सम्प्रदाय का भी यही प्रतिपाद्य है।

देवी अथवा शक्ति का तात्पर्य उस शाश्वत सत्ता से है जो समग्र सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय का मूल है। देवी पूजा का अर्थ शक्ति की पूजा है। परमात्मा इसी आदि शक्ति के द्वारा ही जगत् की रचना, स्थिति और संहार करता है। यही परमा विद्या है और सनातनी है।[1]

शक्ति की पूजा निराकार रूप में नहीं की जा सकती है, इसलिए वह शक्ति साकार रूप में उत्पत्ति, स्थिति और लय के आधार पर हमारे समक्ष महासरस्वती महालक्ष्मी और महाकाली के रूप में प्रकट हुई है। इन्हीं तीनों शक्तियों का समन्वित रूप देवी दुर्गा है। सरस्वती का सम्बन्ध बौद्धिक शक्ति से है, ज्ञान

1- सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी।
संसारबन्ध हेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी॥
— देवी भागवत, पृ074

ज्ञान से है, लक्ष्मी का सम्बन्ध धन-धान्य आनन्द और ऐश्वर्य से है और महाकाली का सम्बन्ध अनेक का एक में लय करने से है। जिस प्रकार वेद में कहा गया है कि विद्वान् लोग एक मात्र सत् तत्व परमात्मा को इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, गरुड़ यम, मातरिश्वा अर्थात् वायु इत्यादि अनेक नामों से पुकारते हैं किन्तु नाम से भिन्न-भिन्न प्रतीत होने वाला वह परमात्मा वस्तुतः एक ही है।[1] इसी प्रकार अनेक नामों से भिन्न भिन्न प्रतीत होने वाली देवी वस्तुतः एक ही है।

देवी भागवत में ब्रह्मा, विष्णु और महेश का क्रमशः नारीरूप सरस्वती, लक्ष्मी और महाकाली है। वही शक्ति कभी पुरुष रूप में और कभी नारी रूप में अभिव्यक्त होती है। वस्तुतः दोनों में कारण और कार्य की भांति अभेद सम्बन्ध है जिसके द्वारा यह सृष्टि गतिशील है, योगीजन सर्वत्र जिसका ध्यान करते रहते हैं और जिसके प्रकाश से यह सम्पूर्ण चराचर जगत् प्रकाशित हो रहा है, वही संसार में व्याप्त एक मात्र शक्ति दुर्गा है।[2]

दुर्गा दिव्य नारीशक्ति का प्रतीक है। वही प्रकृति है, वही पुरुष की शक्ति है, वही चेतना है, वही धृति, वही शान्ति है और वही वरेण्य तेजोमयी पराविद्या है।

1- इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ – ऋग्वेद 1-164-46

2- यथेदं ध्राय्यते विश्वं योगिभिर्या विचिन्त्यते।
यद् भासा भासते विश्वं सैकादुर्गा जगन्मयी॥ – देवीपुराण, भूमिका, पृ0 4

दुर्गा के अनेक शक्ति रूपों के अतिरिक्त देवी पुराण में विभिन्न कथा-प्रसंगों और आख्यानों के माध्यम से अनेक नारियों के विपुल व्यक्तित्व प्रस्तु - टित हुए हैं। जो इस शोध प्रबन्ध के अध्ययन-विषयीभूत हैं तथा जिनका सार - संक्षेप यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है -

(1) व्यास-माता सत्यवती -

व्यास माता सत्यवती के जीवन की कथा विचित्र संयोगों और भवितव्यताओं से भरी है।

एक समय की बात है कि चेदि देश के अधिपति धर्मात्मा, सत्य-शील उपरिचर वसु नाम के एक प्रसिद्ध राजा हुए थे, उनकी गिरिका नाम की सुन्दरी भार्या थी।[1] ऐसी किंवदन्ती है कि एक अवसर पर राजा उपरिचर आखेट हेतु वन में गये हुए थे। वन के प्राकृतिक और मादक सौन्दर्य को देखकर राजा उपरिचर के मन में सहसा काम भावना से अपनी भार्या गिरिका की याद आई। राजा के इस मानसिक मैथुन से वीर्यपात होता है, जिसे वह एक वट पत्र के दोनों में रख देता है। उसे अपनी पत्नी के पास प्रेषण हेतु वह एक श्येन से

1- राजोपरिचरो नाम धार्मिकः सत्यसंगरः

चेदिदेश पतिः श्रीमान् बभूव द्विजपूजकः

विख्यातः सर्वलोकेषु धर्मनित्यः स भूपतिः

तस्य भार्या वरारोहा गिरिका नाम सुन्दरी॥

— देवीभागवत, प्रथमखण्ड, पृ0 76

आग्रह करता है। तदनन्तर राजा के आग्रह के अनुसार श्येन उस दोनेको लेकर नभमार्ग से जाता है। इसी मध्य किसी दूसरे श्येन ने यह समझा कि वह कोई मांसपिण्ड लेकर उड़ रहा है जिससे उसने उस पर आक्रमण कर दिया। इसी छीनाझपटी में वह दोना यमुना-जल में गिर जाता है। दोनों श्येन शान्त होकर अन्यत्र गमन करते हैं।

इसी बीच अद्रिका नाम की एक अप्सरा यमुना जल में खड़े होकर सन्ध्यावन्दन करने वाले एक तपस्वी ब्राह्मण का चरण ग्रहण कर तपस्या में विघ्न डालती है, वह ब्राह्मण कुपित हो जाता है और उसे तत्काल मछली बन जानेका शाप देता है। अद्रिका शाप के अनुसार मछली बन जाती है और यमुना जल में तैरने लगती है। भवितव्यता वश उपरिचर के वीर्य से भरा हुआ वह दोना उस मछली के पास बहकर आ जाता है। वह उसे निगल जाती है। उपरिचर का वह वीर्य मत्स्यरूपा उस अद्रिका के गर्भ में दो भ्रूणों (युग्म) के रूप में बढ़ने लगता है। दस मास के अनन्तर एक मछुवारा केवट उसे जाल में फंसा लेता है। जब उस मछली के फूले हुए पेट में चीरा लगाता है[1] तो उससे एक सुन्दर बालक और दूसरी सुन्दर कन्या का जन्म हो जाता है जिससे वह धीवर अत्यधिक

1- उदरं विददाराशु स तस्या मत्स्य-जीवनः ।
युग्मं विनिःसृतं तस्मादुदरान्मानुषाकृति॥

— देवीभागवत, पृ० 79

विस्मित हुआ।

उस धीवर ने इन दोनों के जन्म की सूचना राजा उपरिचिर - वसु को दी, उपरिचर ने भी उन्हें देखकर आश्चर्य प्रकट किया और राजा ने शिशु को स्वयम् ले लिया और कन्या उसी केवट को दे दी। वह शिशु काला - न्तर में मत्स्य राजा के रूप में विख्यात होता है। वह कन्या केवट के घर में चन्द्र- कला की भांति प्रतिदिन बढ़ने लगती है। वह मत्स्योदरी, मत्स्यगंधा और कालान्तर में योजनगंधा और सत्यवती के नाम से विख्यात होती है।

एक समय की बात है कि महामुनि पाराशर तीर्थयात्रा के प्रसंग से यमुना तट पर आते हैं और भोजन करते हुए निषाद से कहते हैं कि तुम मुझे यमुना के दूसरे तट में नौका से पहुंचा दो। मुनि की बात सुनकर भोजन करते हुए दासराज निषाद ने अपनी प्रिय बेटी मत्स्यगंधा से कहा कि मुनि पार जाना चाहते हैं, तुम उन्हें नौका से पार उतार आओ, मैं तब तक भोजन किये लेता हूं।

पिता की आज्ञा से मत्स्यगंधा मुनि को नौका में बैठाकर यमुना से पार करने लगती है। भवितव्यता और दैव योग से सूर्यसुता कालिन्दी के जल में उस चारुलोचना मत्स्यगंधा के मनोहारी रूप को देखकर महामुनि पाराशर कामार्त हो जाते हैं।[1]

1- तत्र सूर्यसुतातोये भावित्वाद् दैवयोगतः।
कामार्तस्तु मुनिः जातो दृष्ट्वा तां चारुलोचनाम्॥
— देवीभागवत, पृ० 80

महामुनि पाराशर के संयोग से कालान्तर में धीवर कन्या – मत्स्यगन्धा यमुना के द्वीप में एक तेजस्वी पुत्र का प्रसव करती है जो बाद में महामति वेदव्यास के नाम से विख्यात होते हैं। महामुनि पाराशर के प्रसाद से उसका कन्यात्व अखण्डित रहता है और वह मत्स्यगन्धा से योजनगन्धा हो जाती है। उसके शरीर की सुगन्धि योजन पर्यन्त फैलती रहती है।

इधर महाराज शान्तनु वचनभंग के कारण अपनी दिव्य पत्नी गंगा के अन्तर्धान हो जाने से अन्यमनस्क रहने लगते हैं और वे मनोविनोदार्थ अखेट के लिए यमुनातट की ओर जाते हैं। वहाँ वे एक अत्यन्त सुन्दर मुखवाली चारुदर्शना नारी को यमुना तट पर बैठी हुई देखते हैं। वह श्रृंगार नहीं किये थी तथा ऊपर से मैले कुचैले वस्त्र धारण किये हुए थी फिर भी उसका स्वाभाविक सौन्दर्य अद्वितीय था जो राजा को आकर्षित कर रहा था, उसकी मादक गन्ध से वह उसकी ओर खिंचता हुआ चला जाता है। राजा शान्तनु उसके पास जाते हैं और उसका परिचय प्राप्त करते हैं। वे कामार्त हैं, उससे विवाह करना चाहते हैं। वे उसके पिता धीवर दासराज के पास जाकर उसकी पुत्री को अपनी धर्मपत्नी बनाने हेतु उससे याचना करते हैं। किन्तु इस पर दासराज धीवर का कथन है कि आप जैसे महीपति वर के लिए कन्या अदेया नहीं है किन्तु आपको कन्यादान के पूर्व

1- स ददर्श नदीतीरे संस्थितां चारुदर्शनाम्।
श्रृंगाररहितां कांचित् कान्तां मलिनाम्बराम्॥

दे० भा० पु० 84

मेरी यह शर्त है कि मेरी पुत्री का पुत्र ही आपके राज्य का उत्तराधिकारी होगा कोई दूसरा पुत्र आपके राज्य पर अभिषिक्त नहीं होगा, यदि आपको यह शर्त स्वीकार हो तो मैं अपनी पुत्री अवश्य आपको प्रदान करूँगा।'[1]

गंगा-पुत्र देवव्रत का ध्यान कर राजा शान्तनु चिन्तातुर हो जाते हैं और वे कामातुर के समान चिन्तामग्न होकर घर लौट आते हैं। उनके पुत्र देवव्रत ने सचिवों के माध्यम से अपने पिता की चिन्ता का कारण समझकर अनेक मन्त्रियों के साथ जाकर दाशराज के सामने प्रतिज्ञा करते हैं कि हे दाशराज, तुम्हारी यह पुत्री आज से मेरी माता है और इन्हीं का पुत्र राज्य का उत्तराधिकारी बनेगा, मैं न राजा बनूँगा और नहीं विवाह करूँगा। इस प्रकार राजा शान्तनु सत्यवती धीवर कन्या से विवाह करते हैं।

1- तस्याः पुत्रो महाराज त्वदन्ते पृथ्वीपतिः।
सर्वथा चाभिषेक्तव्यो नान्यः पुत्रस्तवेति वै॥ – देवी भागवत, पृ० 85

2- मातेयं मम गांगेयो राज्यं नैव करोम्यहम्।
पुत्रोऽस्याः सर्वथा राज्यं करिष्यति न संशयः
न दारसंग्रहं नूनं करिष्यामि हि सर्वथा॥
— देवीभागवत, पृ० 86

उपर्युक्त कथानक से यह विदित हो जाता है कि यदि पौरा - णिकता के आवरण को पृथक् कर दिया जाय तो यह बात निकलती हुई प्रतीत होती है कि सत्यवती चेदिदेश के सम्राट उपरिचरवसु की अद्रिका नामक अप्सरा के गर्भ से प्रसूत कन्या रत्न है। जिस प्रकार राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला के दिव्य सौन्दर्य को देखकर कहा था कि मानुषी नारियों में इस प्रकार के दिव्य रूप की उत्पत्ति सम्भव नहीं है, कहीं प्रभा से तरल ज्योति(विद्युत) वसुधातल से उत्पन्न नहीं होती, यह सब प्रकार से अप्सरासम्भूत या प्रसूत है।[1] कुछ उसी प्रकार की बात सत्यवती के जन्म के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। अद्रिका नामक अप्सरा से उत्पन्न यह राजपुत्री सत्यवती अपने रूप सौन्दर्य से न केवल महामुनि पाराशर को मोहित कर लेती है और उनकी कृपा से महामति वेद - व्यास की माता बनने का सौभाग्य प्राप्त कर धन्य हो जाती है प्रत्युत वह हस्ति- नापुर नरेश महाराज शान्तनु की महारानी बनने का गौरव प्राप्त करती है।

कालान्तर में सत्यवती सुत , कवि वेधा, अष्टादशपुराण महा - भारतादि विपुल ग्रन्थों के प्रणेता वेदव्यास कौरव और पाण्डव कुल के प्रवर्तक

1- मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य सम्भवः ।

न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्।

सर्वथा अप्सरासम्भवा एषा।

— अभिज्ञानशाकुन्तलम् ।

होते हैं।

सत्यवती के जिस सुत के लिए कवियों ने कहा है कि वे वेदव्यास बिना चारमुख वाले ब्रह्मा हैं, दो हाथों वाले हरि हैं और बिना मस्तक के नेत्र वाले शिव हैं।[1]

वह माता सत्यवती धन्य है जिसने वेदव्यास जैसे महामति को जन्म देकर विश्व का कल्याण किया है। रचना नारी की शक्ति है। वह अपने सुन्दर और शुभ व्यक्तित्व का प्रभाव अपने पुत्र पर डालकर अनेक अगणित वेद - व्यासों का निर्माण कर विश्व का जगत् का और मानवीय परम्परा का कल्याण कर ती रह सकती है।

इस दृष्टि से परवर्ती नारियाँ ' सत्यवती की भाँति जीवन में आने वाली अनेक बाधाओं को पार कर अपने जीवन को धन्य बना सकती हैं। और वेदव्यासों के निर्माण से विश्व को उच्च विचारों से उपकृत कर सकती हैं।

1- [illegible]

1- अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः

अभाललोचनः शम्भुः भगवान् बादरायणः ।।

— महाभारत आदिपर्व

महारानी गांधारी –

देवी भागवत पुराण में कौरवों एवं पाण्डवों के वंश वर्णन के प्रसंग में महाभारत के अनेक नारीपात्रों का उल्लेख और वर्णन उपलब्ध होता है। पुराण के पंचलक्षणों में वंशानुचरित भी एक लक्षण है, इसलिए प्राचीनकाल के महाभारत कालीन राजकुलों और आख्यानोपाख्यानों के माध्यम से देवीभागवत पुराण में यत्र-तत्र देवी के महान महत्व को जोड़ते हुए अनेक नारीरत्नों की चर्चा की गयी है। देवी भागवत में उल्लिखित नारीरत्नों में एक नारीरत्न महारानी गांधारी भी है।[1]

गांधारी गांधार नरेश सुबल की पुत्री हैं। वे क्षत्रियकुलोत्पन्न होने के कारण प्रखर तेजस्विनी और ओजस्विनी हैं। उनका विवाह जन्म से अंधे कुरुकुल श्रेष्ठ धृतराष्ट्र से होता है। वे तपस्विनी और पतिपरायणा हैं। किन्तु विधि के सामने उनका कोई वश नहीं चलता है।

जैसा कि महाभारत और देवी भागवत के अनुशीलन से विदित होता है कि कुरु और पाण्डु कुल के प्रवर्तक महामुनि वेदव्यास है। विचित्रवीर्य और चित्रांगद की पत्नियों से नियोग प्रथा के द्वारा व्यास की कृपा से धृतराष्ट्र

1- देवीभागवतपुराण, पृ०सं० 88- 96

पाण्डु और विदुर का जन्म होता है।[1] इसलिए सत्यवती सुत महामुनि व्यास की कृपा इस कुल को सदैव सुलभ रही है।

एक समय की बात है कि महातपस्वी व्यास राजसभा में पधारते हैं, गांधारी उनकी तन और मन से सेवा करती है। महामुनियों की सेवा अमोघ फल वाली होती है। यदि वे सेवा से सन्तुष्ट और प्रसन्न हो जाते हैं तो उन्हें कुछ भी अदेय नहीं होता है।[2] इसलिए गांधारी भी व्यास जी को प्रसन्न कर उनसे एक सौ पुत्रों की माता बनने का वरदान प्राप्त करती है।

कालान्तर में गांधारी गर्भवती होती है और वह गर्भ उसके उदर में दो वर्ष पर्यन्त बना रहता है। इसी मध्य कुन्ती एक पुत्र (युधिष्ठिर) की माता बन जाती है। इससे चिढ़कर गांधारी अपना गर्भ गिरा देता है। वह गर्भ लोहे के समान कठोर एक मांस पिण्ड के समान था। वह उसे फेंकना चाहती है किन्तु व्यास ऐसा करने से उसे मना करते हैं। व्यास जी के आदेशानुसार एक सौ एक घृत से भरे घड़ों में उसके एक सौ एक टुकड़े कर रख दिये जाते हैं और दो वर्ष बाद सौ पुत्र और एक पुत्री का जन्म होता है।

1- व्यासवीर्यात्तु संजातौ धृतराष्ट्रोन्य एव च।

— देवीभागवत, पृ0 88 एवं महाभारत आदिपर्व।

2- अमोघफला हि महामुनि सेवा भवति –

कादम्बरी, उत्तरार्द्ध

अब गांधारी दुर्योधनादि सौ पुत्रों एवं एक दुःशला नामक पुत्री की माता बनने का सौभाग्य प्राप्त करती है।

गांधारी में राजकुलोचित शालीनता और शील है। वह धर्म और नीति में विशारदा है। वह अपने पुत्रों को सत्पथ पर चलने के लिए प्रेरित करती है। किन्तु दुर्योधन उसकी शिक्षा का समादर नहीं करता है। वह अधर्म का जैसे साक्षात् अवतार ही है। गांधारी सदैव अपने पुत्रों को 'यतो धर्मस्ततो जयः' जहाँ धर्म होता है वहीं विजय होती है के अमर सिद्धान्त का उपदेश देती रही है लेकिन उसके विधर्मी पुत्रों ने उसकी अवहेलना की जिससे वे पराजित होते हैं।

गांधारी में नारी जनोचित कमजोरियाँ भी हैं। महाभारत युद्ध के पश्चात् वह पाण्डवों और श्रीकृष्ण को फटकारती है। वहाँ उसकी पुत्रवत्सलता के कारण पुत्रहन्ताओं पर क्रोध स्वाभाविक भी है। वह क्रोध वश श्रीकृष्ण को अपने सतीत्व के पुण्य की चुनौती देती है और उन्हें शाप देती है कि जिस प्रकार वे कुरुकुल के विनाश के कारण बने हैं, उसी प्रकार वे यदुकुल के विनाशक होंगे। और उनका भी अन्त एक साधारण व्यक्ति की भांति ही होगा।[1]

गांधारी की पतिभक्ति, सेवा अनन्यपरायणता अनिर्वचनीय है। वह दृष्टिहीन अपने पति का अनुकरण करती है। वह दृष्टि का अपना अधिकार समाप्त

1- गांधारी च तथातिष्ठ पुत्रशोकातुरा भृशम्।

— देवीभागवत, पृ0 92

कर देती है। आँखों में पट्टी बाँध लेती है। तन और मन से वह पतिसेवा में लीन है। महाभारत युद्ध के पश्चात् वह अपने पति का वन में अनुगमन करती है और उन्हीं के साथ वन में ही अपने प्राणों का उत्सर्ग करती है।

आज भी गांधारी के चरित और जीवन, सतीत्व और पतिभक्ति से भारतीय नारियाँ अपना पथ अवलोकित कर सकती हैं। विकलांग भी पति - नारी द्वारा त्याज्य नहीं है। पति सेवा से ही नारी घर में सामंजस्य बनाये रख सकती है।

यह प्रायः देखा जाता है कि आज की नारियाँ अपना स्वतंत्र मार्ग चुनती हैं और स्वेच्छाचार से अपना जीवन कलंकित कर लेती हैं। इस दृष्टि से गांधारी का चरित्र आज भी जीवन्तता लिए हुए है। यद्यपि यह सही है कि गांधारी का चरित्र बीते हुए युग का है लेकिन कुछ मूलभूत कर्तव्य कर्म, निष्ठा और मर्यादायें बदला नहीं करतीं। उनमें एक निरन्तरता और शाश्वतता होती है।

देवी कुन्ती और माद्री -

देवी भागवत में उपलब्ध महाभारतोपाख्यान के अन्तर्गत वर्णित नारीपात्रों में महारानी देवी कुन्ती और सती माद्री का भी नारी रत्नों के रूप में उल्लेख प्राप्त होता है। देवी कुन्ती और माद्री आदि का चित्रण यहाँ भी तथा यत्र तत्र अन्य पुराणों में भी महाभारत के वर्णन के सदृश ही है। कथानुचरित पुराणों

का स्वभाव है, इसलिए विषय वस्तु का पिष्टपेषण पुराणों के अध्येता के लिए अनुभव गम्य है।

कुन्ती महाराज शूरसेन की तनया हैं। इनका प्रारम्भिक मूल नाम पृथा था। पश्चात् शूरसेन ने सन्तानहीन अपने फुफेरे भाई कुन्तिभोज को दत्तक पुत्र में इन्हें दे दिया था, इसलिए यहाँ इनका नाम कुन्ती हो गया था। यद्यपि यत्रतत्र साहित्य में कन्याओं को शोककन्द की संज्ञा दी गयी है और पुत्र को साक्षात् शरीरधारी आनन्द की,[1] किन्तु ऐसी बात शतप्रतिशत सत्य नहीं है। कुन्ती अपने चरित से उक्त भ्रम को दूर कर देती है।

एक समय की बात है कि एक बार राजा कुन्तीभोज के यहाँ अचानक सुलभकोप महर्षि दुर्वासा जी पधारे और उनके यहाँ वर्ष पर्यन्त रहने की इच्छा प्रकट की। दुर्वासा की सेवा कठिन और दुष्परिणामों से भरी थी क्योंकि वे क्रोध की साक्षात् मूर्ति थे। वे क्रोधवश शाप दे सकते थे। किन्तु कुन्ती ने उनकी सेवा का कठोर तम भार स्वीकार किया और बड़ी लगन से वर्ष पर्यन्त दुर्वासा की मन से सेवा की और उसने अपनी सेवा से उन्हें वश में कर लिया। चलते समय दुर्वासा ने प्रसन्नतापूर्वक दुर्लभ मंत्रों की दीक्षा भी दी जिन्होंने कुन्ती के भावी जीवन को आलोकित कर दिया।[2]

1- शोककन्दः तव कन्या नु सानन्दः कायवान् सुतः ।।
कथा सरित्सागर, 28-6

2- महाभारत वनपर्व, 304

दुर्वासा के चले जाने के बाद कुन्ती ने उन मंत्रों की प्रातः ही परीक्षा करनी चाही, वह उदय होते हुए सूर्य के सामने खड़ी हो जाती है और मुनिवर दुर्वासा के द्वारा प्रदत्त मंत्र का प्रयोग वह सूर्य देव को लक्ष्य करके करती है। परिणामस्वरूप सूर्यदेव उसके सामने उपस्थित होते हैं और जिससे विवाह पूर्व ही उसे माता बनना पड़ता है। नवजात शिशु का नाम कर्ण होता है जिसे वह लोकलाज के भय से नवजात शिशु को सुरक्षित पंजर में रख नदी जल में प्रवाहित कर देती है जिसे सूतवंशी अधिरथ प्राप्त करता है और उसका पालनात् पिता बनता है।

कालान्तर में कुन्ती का विवाह राजा पाण्डु से होता है और उसका दूसरा विवाह माद्री से होता है।[1] एक समय की बात है कि राजा पाण्डु ने वन में आखेट खेलते समय मृगरूप में कामासक्त महर्षि किन्दम पर बाण चला दिया जिससे शरीर छोड़ते समय महर्षि किन्दम पाण्डु को शाप देते हैं कि जिस प्रकार मृगी तुमने कामासक्त अवस्था में मुझे मारा है तुम्हें भी पत्नी के सहवास

1- कुन्ती विवाहिता कन्या पाण्डुना सा स्वयंवरे।
माद्री चैवापरा भार्या मद्रराजसुता शुभा।।
मृगया रममाणस्तु वने पाण्डुर्महाबलः
जघान मृगबुद्ध्या रममाणं मुनिं वने।।
शप्तस्तेन तदा पाण्डुर्मुनिना कुपितेन च।
स्त्रीसंगं यदि कर्तासि तदा ते मरणं ध्रुवम्।।— देवीभागवत, पृ० 89

करते समय शरीर छोड़ना पड़ेगा।

राजा पाण्डु महर्षि किन्दम के उक्त शाप से शोकाकुल होते हैं और सन्यास लेकर अपनी दोनों पत्नियों के साथ वन चले जाते हैं।

वन में पुत्र हेतु किसी अन्य से सहायता लेने के लिए कुन्ती से आग्रह करते हैं। कुन्ती अपने दुर्वासा प्रदत्त मन्त्रों से तीन पुत्र प्राप्त करती है और उसी प्रकार माद्री भी कुन्ती के मार्ग निर्देशन पर नकुल और सहदेव दो पुत्र प्राप्त करती है।

भारतीय संस्कृति और चिन्तन परम्परा में पुत्र प्राप्ति को अत्यावश्यक बताया गया है क्योंकि अपुत्र को स्वर्ग गमन हेतु गति प्राप्त नहीं होती और उसकी सम्पत्तियों का कोई उत्तराधिकारी नहीं होता। इसलिए जिस किसी उपाय से पुत्र जन्म का प्रयत्न करना चाहिए।[1] इसी विचार से पाण्डु ने कुन्ती को पुत्र प्राप्ति हेतु प्रेरित किया था और पाण्डु उक्त प्रकार से पुत्रवान् हुए।

एक समय की भवितव्यता वश राजा पाण्डु निर्जन आश्रम में माद्री को अकेला देखकर कामार्त हो जाते हैं, माद्री के बार-बार मना करने पर भी

1- अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गे गुरु परन्तप।
 येन केनाप्युपायेन पुत्रस्य जननं चरेत्॥
 — देवीपुराण, पृ० 89

जब वे नहीं मानते हैं तो उसी समय उसका आलिंगन करते हैं तो उसी समय शापवश उनकी मृत्यु हो जाती है और वह चेतनाशून्य होकर पृथ्वीतल पर गिर पड़ते हैं।

चूंकि राजा पाण्डु माद्री से अत्यधिक प्रेम करते थे, इसलिए पाण्डु के साथ सती होने का अधिकार कुन्ती को न मिलकर माद्री को ही प्राप्त होताहै।

ऐसा प्रतीत होता है कि माद्री पति-प्रेम-प्राप्ति के क्षेत्र में कुन्ती से आगे थी, क्योंकि राजा पाण्डु ने महारानी माद्री की गोद में अपने प्राणों का परित्याग किया था और शायद इसीलिए पण्डितों ने राजा के साथ सती होने के लिए कुन्ती की अपेक्षा माद्री के अधिकार को प्रमाणित किया था। कविवर भास ने सत्य ही कहा है कि वह नारी धन्य है जिसे इतना अधिक अपने पति से प्रेम प्राप्त होता है।[1]

एक ओर माद्री संसार को छोड़कर अपने पति के साथ स्वर्गलोक को प्रयाण करती है, दोनों पति-पत्नी का एक ही चिता में अन्त्येष्टि संस्कार किया जाता है दूसरी ओर कुन्ती है, जो महाभारत-युद्ध को स्वयम् देखती है,

---

1- धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता।

भर्तृः स्नेहात् सा हि दग्धाप्यदग्धा।। – स्वप्नवासवदत्तम् – 1

उत्थान, पतन, सुख, दुःख यश-अपयश, मान-अपमान आदि का साक्षात् अनुभव करती है।

कुन्ती श्रीकृष्ण के प्रति समर्पित है और अहर्निश उनके दर्शन की कामना हेतु उनसे विपत्ति का वरदान मांगती है।[1] वह क्षमाशील है, वीर क्षत्राणी भी है। कुन्ती वीर प्रसविनी और ममतामयी माँ है।

महारानी द्रौपदी —

देवी भागवत के महाभारतोपाख्यान् में जिस प्रकार संक्षेप में अन्य वीर क्षत्रिय अंगनाओं का उल्लेख किया गया है उनमें द्रौपदी का विपुल व्यक्तित्व भी प्राप्त होता है।

द्रौपदी की जन्मकथा दिव्यता और अलौकिकता से भरी है। राजा द्रुपद को यज्ञवेदी से द्रौपदी कन्या रूप में प्राप्त होती है, वह श्याम-वर्णा है और अद्वितीय सुन्दरी है, उसके श्यामवर्ण होने के कारण ही उसका नाम कृष्णा रखा गया है और द्रुपद की पुत्री होने के कारण वह द्रौपदी के नाम से विख्यात होतीहै। साथ ही ऐसी पौराणिक मान्यता है कि मानो क्षत्रियकुल विनाश के लिए

1- विपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो

भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भव दर्शनम्॥

— श्रीमद्भागवत

महाकाली ही अंशरूप में कृष्णा या द्रौपदी नाम से प्रकट हुई है।

महाभारत युद्ध की पूरी कथा द्रौपदी का परिक्रमा करती हुई प्रतीत होती है। जिस प्रकार यह प्रसिद्ध है कि शक्ति सीता के रूप में भूमि से प्रकट हुई है और इसीलिए वह भूमिजा कही जाती है उसी प्रकार महाकाली शक्ति ही यज्ञभूमि से कृष्णा के रूप में प्रकट हुई है, इस दृष्टि से और शत्रु संहार की दृष्टि से तथा अन्य अनेक कथा प्रसंगों की दृष्टि से कृष्णा और सीता के चरित्रों में पर्याप्त समानता प्रतीत होती है। दोनों के चरित्रों में दिव्यता और अलौकिकता आदि से अन्त तक विद्यमान है। सीता और द्रौपदी दोनों ही रामायण और महाभारत महाकाव्यों की नायिकायें है। दोनों का विवाह स्वयंवर प्रथा से दिव्य शक्ति सम्पन्न व्यक्तियों के साथ सम्पन्न होता है। दोनों ही का खलनायकों द्वारा अपहरण होता है और वनवास होता है। इस प्रकार कुछ अंशों में सीता की छाया सी प्रतीत होती है फिर इन अलौकिक शक्तियों का अपनी अपनी भूमिका और लीला में कुछ अन्तर होना स्वाभाविक है।

स्वयंवर में अर्जुन की विजय होती है और कुन्ती के कथन से वह पाँचों पाण्डवों की धर्मपत्नी बन जाती है। फिर भी वह पतिव्रता नारियों में अग्रणी है।[1] वह पांचाली के नाम से प्रसिद्ध होती है। यद्यपि भारतीय साहित्य में

1- पंचानां द्रौपदी भार्या सामान्या सा पतिव्रता

पंच पुत्रास्तु तस्याः स्युः भर्तृभ्योऽतीव सुन्दराः ॥

— देवीभागवत, पृ० 92

नारी द्वारा बहुपतियों से विवाह, महाभारत अथवा अन्य पुराणों में प्राप्त महाभारतोपाख्यान के अतिरिक्त द्रौपदी के सदृश कोई अन्य उदाहरण प्राप्त नहीं होता क्योंकि बहुपति का विवाह आर्यों में प्रचलित नहीं था, न ही वैदिक काल में इसके उदाहरण प्राप्त होते हैं। कश्मीर और तिब्बत की आर्येतर आदिम जातियों में यद्यपि एक नारी द्वारा बहुपति विवाह के उदाहरण प्रचुरता से प्राप्त होते हैं किन्तु आर्यों में और भारतीय साहित्य में द्रौपदी के सदृश पंचपतियों से विवाह के उदाहरण आज भी अनुसंधेय हैं। सम्भवतः भारतीय साहित्य में एक नारी द्वारा बहुपति विवाह का यह एक मात्र उदाहरण है जिसे बन्धुओं के मध्य सदैव एकता बनाये रखने के लिए किया गया होगा।[1]

एक समय की बात है कि मय द्वारा अद्भुत शिल्प निर्मित भवन में पाण्डवों के साथ द्रौपदी निवास कर रही थी, स्थल जलाशय प्रतीत हो रहा था और जलाशय स्थल की तरह प्रतीत हो रहा था, उसी समय वहाँ दुर्योधन आता है जो स्थल को जलाशय समझ कर वस्त्र ऊपर को सिकोड़ता है और जलाशय को स्थल समझकर उसमें गिर पड़ता है, उसके वस्त्र भीग जाते हैं। उसकी मूर्खता पर द्रौपदी हँस पड़ती है वह अपमानित होकर अपने भवन में लौट आता है। अपमान की ज्वाला से दग्ध दुर्योधन प्रतिशोध के लिए आकुल और व्याकुल हो

1- दि पोजीशन आफ वूमेन इन हिन्दू सिविलेजेशन - पृष्ठ 112 व 113

रहा था। फलस्वरूप शकुनि के नेतृत्व में दुर्योधन और युधिष्ठिर के मध्य द्यूत - क्रीड़ा आयोजित की जाती है। युधिष्ठिर उस कपट द्यूत में सभी कुछ हारकर द्रौपदी को दांव में लगाकर उसे भी हार जाते हैं।

द्रौपदी दुःशासन के द्वारा उस द्यूतक्रीड़ा-भवन में लाई जाती है जहाँ दुःशासन के द्वारा ही निर्वस्त्र करने का प्रयत्न किया जाता है। उस सभा में भीष्मादि सभी दुर्योधन के आतंक और अपमान के भय से मौन रहते हैं तब श्रीकृष्ण अपनी अदृश्य शक्ति से द्रौपदी की लाज बचा लेते हैं। किन्तु द्रौपदी अपमान की ज्वाला से निरन्तर जल रही है और उसका यह अपमान ही महा - भारत-युद्ध में परिणत हो जाता है।

द्रौपदी साध्वी है। वीर क्षत्रियाणी है, उसमें स्वाभिमान है, वह प्रतिशोध की आग में जल रही है। जब तक वह अपने अपमान का बदला नहीं ले लेती है तब तक वह अपने केश संयमित न करने की प्रतिज्ञा करती है। किन्तु दूसरी ओर वह बहिन दुःशला का ध्यान रखकर अपहरणकर्ता जयद्रथ को जान से न मारने की पाण्डवों को सलाह भी देती है।

वह विराट नगर में कीचक द्वारा अपमानित होने का प्रतिशोध लेती है और भीम को तदर्थ प्रेरित करती है। वह केशव की अनन्य भक्ता है। उसकी निष्ठा और कष्ट सहन करने और धैर्य रखने की क्षमता अनुकरणीय है।

द्रौपदी के दुर्लभ गुण आज भी आदर्श नारी समाज की प्रतिष्ठा बढ़ाते हैं।

सती उत्तरा –

महाभारतीय कथा प्रसंग में देवी भागवत पुराण में जिन अनेक महाभारत के नारी रत्नों का उल्लेख है उनमें सती उत्तरा का भी है। सती उत्तरा वीरवर अभिमन्यु की धर्मपत्नी है। महाभारत युद्ध के अवसर पर जब गुरु द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह की रचना की थी तो उसके भेदन में चारों ओर से घिर जाने पर वीरवर अभिमन्यु को वीरगति प्राप्त हुई थी। उस समय उत्तरा गर्भवती थी। वे अपने प्रियतम अभिमन्यु की चिता पर साथ-साथ भस्म हो जाना चाहती थी किन्तु श्रीकृष्ण ने उन्हें अपने पति के साथ सती होने की अनुमति नहीं प्रदान की थी और फिर पाण्डवों का वंशांकुर भी तो उत्तरा के गर्भ में पल रहा था।

महाभारत युद्ध की समाप्ति के पश्चात् अपमानित अश्वत्थामा ने पाण्डवों के वंशांकुर के विनाश हेतु ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करते हैं तभी उत्तरा अपने उदर में वीरवर अभिमन्यु के पल रहे पुत्र की रक्षा हेतु श्रीकृष्ण से प्रार्थना करती है। श्री कृष्ण पाण्डवों के हितैषी रहे हैं, वे उस समय द्वारका के लिए प्रस्थान करने वाले थे, किन्तु उत्तरा की इस करुण प्रार्थना सुनकर वे रुक जाते हैं। श्रीकृष्ण अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र को निष्फल कर देते हैं और उत्तरा के गर्भ से जन्म लेते ही मर जाने वाले पुत्र परीक्षित को पुनर्जीवन प्रदान करते हैं। इस

प्रकार संकट टल जाता है और उत्तरा अपने सतीत्व तथा श्रीकृष्ण के प्रति सम - र्पण भाव से पुत्रवती नारी का पद प्राप्त करती है। उसका पुत्र पाण्डुवंश का कुला- कुर है, वह धर्मात्मा और प्रजाप्रेमी राजा के रूप में कालान्तर में विख्यात होता है।

उत्तरा का धैर्य, सहिष्णुता, पुत्रवत्सलता और साहस अनुकरणीय है।

सती सुकन्या —

देवी भागवत पुराण में च्यवन कथा वर्णन प्रसंग में सती सुकन्या का पावन चरित्र वर्णित है।

एक समय की बात है कि राजा शर्याति की पुत्री सुकन्या अपनी सखियों के साथ सरोवर में क्रीड़ा हेतु जाती है। सरोवर मानसरोवर की भांति श्रेष्ठ था। वहाँ अनेक प्रकार के पक्षीगण कलरव कर रहे थे, उसी सरोवर के समीप तरु लताओं से आवृत स्थान पर महर्षि च्यवन तपस्या कर रहे थे। उन्होंने जलपान आदि का भी परित्याग कर दिया था, वे भगवती अम्बिका का ध्यान और स्मरण कर समाधि में बैठे तपस्या कर रहे थे। चिरकाल तक समाधि में बैठने के कारण चीटियों, दीमकों और पक्षियों ने उसे मिट्टी का ढेर समझ अपना आश्रय बना लिया था। महामुनि च्यवन का शरीर एक वल्मीक(बाँबी) का रूप धारण कर चुका था।[1] और वे मिट्टी के ढेर जैसे प्रतीत होते थे। ऐसे ही समय राजपुत्री

1- भार्गवश्च्यवनः शान्तस्तापसः संस्थितो मुनिः।
ज्ञात्वाऽसौ विजनं स्थानं तपस्तेपे समाहितः॥
जलपानादिरहितो ध्यायन्नास्ते पराम्बिकाम्।
स वल्मीकोऽभवत्तत्र लताभिः परिवेष्टितः॥ —देवीभागवत, दि0अ0पृ0। 2

सुकन्या अपनी सखियों के साथ विहार हेतु वहाँ जाती है। वहाँ वह वल्मीकि के छिद्र से खद्योत के समान चमकती हुई ज्योतिद्वय दिखाई देते हैं वह कौतुकवश उसमें एक काँटा चुभो देती है जिससे तीव्र वेदना के साथ महर्षि च्यवन के दोनों नेत्र फूट जाते हैं। उनके क्रोध से राजपरिवार और मंत्रिपरिषद् को मलावरोध की शिकायत होती है जिससे सब जगह भय व्याप्त हो जाता है। सुकन्या अपना अपराध अपने पिता से बतलाती है। राजा महर्षि से क्षमा याचना करते हैं। इस पर नेत्रहीन च्यवन राजा अपनी कन्या सुकन्या को उनकी परिचर्या हेतु पत्नी के रूप में उन्हें देने हेतु कहते हैं।[1]

सुकन्या महर्षि च्यवन की धर्मपत्नी बन जाती है। वह वल्कल वस्त्र धारण करती है और अपने पति की सेवा में तत्पर हो जाती है। एक समय अश्विनीकुमार सुकन्या से मिलते हैं और उनके रूप सौन्दर्य की प्रशंसा करते हैं और उनसे कहते हैं कि – वृद्ध और अंधे व्यक्ति को छोड़कर किसी अन्य को तुम्हें अपने पति के रूप में वरण कर लेना चाहिए। उन्होंने कहा कि विधाता की मति ही कुण्ठित हो गयी है जिसने ऐसा विधान कर डाला।[2]

1- स्वामिन् गृहाण पुत्री मे सेवार्थम् विधिवद्विभो।
इत्युक्त्वा तौ ददौ पुत्रीं विवाहविधिनो नृपः ॥

2- त्वम् अन्धभार्या नवयौवनान्विता
कृतासि धात्रा ननु मन्दबुद्धिना
न शोभसेऽत्र (?) शिशायते वने। पतिं त्वमन्यं कुरु चारुलोचने॥
– देवीभागवत, द्वि०ख० पृ० 18

किन्तु सती सुकन्या अपने पातिव्रत्य धर्म और सतीत्व से कदापि विचलित नहीं होती है और इस बात पर वह उन दोनों अश्विनीकुमारों को शाप तक देने के लिए उद्यत हो जाती है।

इस पर अश्विनीकुमार विस्मयके साथ उससे अपना परिचय बत - लाते हैं और कहते हैं कि वे उसके सतीत्व भाव से परम प्रसन्न हैं वे उसके पति को युवा और नेत्रवान् बना सकते हैं, वे दोनों देवों के वैद्य हैं किन्तु उसे रूप - वान् अपने पति के साथ समानरूप वाले तीन लोगों के मध्य किसी एक को अपने पति के रूप च्यवन करना होगा। इस पर वह अपने पति की अनुमति पाकर उन्हें अपनी स्वीकृति दे देती है। तदनन्तर च्यवन ऋषि और वे दोनों अश्विनीकुमार सरोवर में एक साथ प्रवेश कर निकलते हैं तीनों समान रूप शील-गुण धर्मा हैं। सुकन्या बड़े धर्मसंकट में हो जाती है किन्तु वह पराम्बा का ध्यान कर अपने पति च्यवन को पहिचानने में सफल हो जाती है। अन्ततः युवक और सुन्दर स्वस्थ शरीर वाले च्यवन का वरण कर सुकन्या परम प्रसन्न होती है।[1]

1- प्रसमीक्ष्य तु तान्सर्वान् वव्रे बाला स्वकं पतिम्।
वृते च च्यवने देवी सन्तुष्टौ तौ बभूवतुः ॥
— देवीभागवत, द्वि०खण्ड पृ० 23

सुकन्या की पतिनिष्ठा, सेवा और तप प्रशंसनीय है। वह अपने सतीत्व से अपने पति का कल्याण करती है और नारी जाति को गौरवान्वित करती है।

सती शैब्या —

देवी भागवत पुराण में प्राप्त हरिश्चन्द्रोपाख्यान के अन्तर्गत सती शैब्या का उज्ज्वल और पावन चरित प्राप्त होता है। अयोध्या नरेश इक्ष्वाकुवंशी सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र की कथा विश्वविश्रुत है। वे सत्यवादी दृढ़व्रती और कठोर तपस्वी साधक थे। सती शैब्या ऐसे ही नरेश की आदर्श धर्मपत्नी है। सती शैब्या का जीवन अपने पतिदेव को समर्पित है। जैसे कारण और कार्य में भेद नहीं होता है, उसी प्रकार शैब्या और हरिश्चन्द्र में तात्विक भेद नहीं है। इस कथानक के कुछ क्षण अत्यन्त मार्मिक और कारुणिक है, उन्हें देखने, समझने और सुनने वाला ऐसा कोई व्यक्ति नहीं होगा जो करुणा विगलित न हो जाता हो।

वैभवकाल में, सुख और सम्मान के समय अपने पति के अनुकूल रहने वाली सती और साध्वी नारियाँ अनेक हो सकती है और उनका इस काल में पति प्रेम प्रतिदृष्ट हो सकता है किन्तु धन के अभाव और नितान्त दरिद्रता के समय जो नारी अपने पति का अनुगमन करती है, पति सेवा को बढ़ा देती है उसके दुःखों में सहायता करती है, उसे अपने मधुर व्यवहार और वचनों से धैर्य बंधाती है, संकटकाल में साथ नहीं छोड़ती है, ऐसी नारियाँ विरल होती

है। शैव्या ऐसी ही पुज्य सती नारियों में एक है। इनका मूल नाम तारा है किन्तु महाराज शिबि की तनया होने के कारण इन्हें शैव्या के नाम से भी जाना जाता है।[1]

शैव्या का सतीत्व धर्म आदर्श था। हरिश्चन्द्र और शैव्या मानो दोनों एक प्राण वाले और भिन्न देह वाले थे। शैव्या ने वस्तुतः अपना अस्तित्व अपने पति में ही अन्तर्धान कर लिया था।

एक समय की बात है कि राजा हरिश्चन्द्र विश्वामित्र को अपना सम्पूर्ण राज्य दे देते हैं, बाद में विश्वामित्र की निष्ठुरता के साथ दान के योग्य दक्षिणा देने का भी आश्वासन देना पड़ता है।[2] बस यही दक्षिणा हरिश्चन्द्र और शैव्या के चरित्र की कसौटी बनती है।

हरिश्चन्द्र अपनी पत्नी शैव्या और पुत्र रोहिताश्व को लेकर अयोध्या से विश्वनाथपुरी काशी आ जाते हैं। वहां विश्वामित्र की दक्षिणा चुकाये जाने हेतु महारानी शैव्या हरिश्चन्द्र को चिन्ता छोड़ने और अपने सत्य का पालन करने हेतु प्रेरित करती है और कहती है कि शास्त्रों में स्त्री प्राप्ति का फल पुत्र बतलाया गया है और वह पुत्र रूपी फल मुझसे आपको प्राप्त हो गया है।आप

1- देवी भागवत, द्वितीय खण्ड, पृ0 35

2- हेमभारद्वयं सार्धम् दक्षिणां देहि साम्प्रतम्।

दास्यामिति प्रतिश्रुत्य तस्मै राजाति विस्मितः ॥

— देवीभागवत खण्ड-2, पृ0 43

मुझे बाजार में बेचकर उससे प्राप्त धन से विप्र की दक्षिणा दे दीजिये।[1] और चिन्तामुक्त होकर अपने सत्यवचन का पालन कीजिये, आप व्यर्थ में दुखी मत होइये क्योंकि आप द्यूत, मद्य, राज्य और अन्य भोगों के लिए तो मुझे बेच नहीं रहे हैं प्रत्युत गुरु दक्षिणा चुकाने के लिए ही बेच रहे हैं, इसलिए इस उचित हेतु के लिए मेरा विक्रय आप के दुख के योग्य नहीं है।[2]

अन्ततः शैव्या, उसके पुत्र रोहिताश्व और हरिश्चन्द्र का विक्रय होता है जिससे प्राप्त धन से विश्वामित्र को गुरु दक्षिणा चुकाई जाती है। जैसे जैसे यह कथा आगे बढ़ती है, इसमें करुणा की सरिता अपने पूरे प्रवाह पर आ जाती है और इसके श्रोताओं तथा पाठकों को अश्रुपूरित कर देती है।

विक्रय के अनुसार हरिश्चन्द्र एक चाण्डाल के सेवक बनते हैं और काशी के श्मशान में दाह संस्कार करने वालों से कर वसूलने का अपना विधिविहित कार्य करते हैं। उधर दुर्भाग्यवश शैव्या के पुत्र रोहिताश्व को सर्प काट लेने के कारण उसकी मृत्यु हो जाती है। फलतः शैव्या अपने क्रेता मालिक से अनुमति लेकर

1- राजन्नामुक्तसत्य ते पुत्रां पुत्रफलाः/ स्त्रियः।

तन्मां प्रदाय वित्तेन देहि विप्राय दक्षिणाम्॥

— देवीभागवत, खण्ड- 2, पृ0 43

2- न द्यूत हेतोर्न च मद्यहेतो नं च राज्यहेतोर्नच भोगहेतोः।

दक्षस्व गुर्वर्थमतो मया त्वं सत्यव्रतस्यं सफलं कुरुष्व॥

देवीभागवत, 7-21- 27

पुत्र रोहिताश्व की अन्त्येष्टि करने के लिए काशी के श्मशान घाट पर उपस्थित होती है।

काशी के श्मशान घाट पर हरिश्चन्द्र पहरा दे रहे हैं। उसी समय वह एक स्त्री के करुण विलाप को सुनते हैं। उन्हें विदित होता है कि सर्प के काटने से बालक की मृत्यु हुई है इसलिए उसकी माँ रो रही है। ऐसी भयावह दुःखद घटनायें प्रतिदिन हरिश्चन्द्र को सुननी पड़ती थीं, इसलिए वे अधिक विषादग्रस्त नहीं होते हैं।

उस अभागिनी नारी के पास अपने पुत्र की अन्त्येष्टि हेतु कफ़न के लिए वस्त्र नहीं था। हरिश्चन्द्र उससे कर वसूलने के लिए कफ़न का वस्त्र लेने उसके पास आते हैं। पास आते ही वे पहिचान जाते हैं कि यह उनकी धर्मपत्नी शैव्या है और मृतक पुत्र उनका ही आत्मज रोहिताश्व है। इन दोनों की दुरवस्था देखकर हरिश्चन्द्र मूर्छित हो जाते हैं। शैव्या अपने पति हरिश्चन्द्र को पहिचान लेती है और उनकी और अपने पुत्र की दुरवस्था देखकर करुण विगलित होजाती है, उसे मूर्छा आ जाती है।

अन्ततः तीनों पति पुत्र और पत्नी धधकती हुई चिता में प्रवेश करना चाहते हैं और निष्ठुर दैव को धिक्कारते हैं। रानी शैव्या राजा के साथ ही स्वर्गारोहण करना चाहती है।[1]

1- सह स्वर्गम् च नरकं त्वया भोक्ष्यामिमानद।
श्रुत्वा राजा तदोवाच एवमस्तु पतिव्रते॥ - देवीभागवत, खण्ड- 2, पृ० 54

सती शैव्या अपने पुत्र की अन्त्येष्टि में कर के रूप में अपनी धोती का आधा हिस्सा कफ़न के रूप में देने को उद्यत होती है, यह उसकी और हरिश्चन्द्र की परीक्षा की पराकाष्ठा है। शैव्या जैसे ही उक्त कार्य हेतु अपनी धोती फाड़ने लगती है वैसे ही उनकी परीक्षा का पटाक्षेप हो जाता है। देवगण मध्य में उपस्थित होकर उसे ऐसा करने से रोकते हैं। उसका पुत्र रोहिताश्व भी जीवित हो जाता है, उसके पति हरिश्चन्द्र ऋणमुक्त हो जाते हैं।

सती शैव्या के जीवन और चरित्र के अवगाहन से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि वह पहले तो सुख और वैभव में पली थी, पश्चात् उसके परवर्ती जीवन को अनेक प्रकार के दुख, क्लेश, कष्ट और विविध संकट घेर लेते हैं किन्तु वह तपस्विनी अपने पूज्य पतिदेव को केन्द्रस्थ सुमेरु बनाकर समस्त संकटों का बड़े धैर्य के साथ सामना करती है। अपने धर्म, धैर्य, व्रत सतीत्व और पतिभक्ति से तथा सत्यमार्ग से कभी विचलित नहीं होती है। वह परीक्षा में उत्तीर्ण होती है। अपने पति के सत्य की रक्षा करने में वह सहायक बनती है, अपने कठोर व्रत सत्यमार्ग धर्म धैर्य और सत्कर्मों से विपदार्णव को पार उतरने में वह सफल होती है और ईश्वर से कामना करती है यदि उसने कुछ पुण्य किया हो तो जन्मान्तर में भी पुनः हरिश्चन्द्र ही उसके पति हों।[1]

1- यदि दत्तं यदि हुतं ब्राह्मणास्तर्पिता यदि वै पुनः।

तेन पुण्येन मे भर्ता हरिश्चन्द्रोऽस्तु॥

— देवीभागवत, 7-12-27

किम्बहुना सती शैव्या ने अपने सुचरित्र और पतिनिष्ठा से नारी समाज को गौरवान्वित किया है। यद्यपि आज समय बहुत बदल गया है और नारी से समाज की अपेक्षायें भी बदलती जा रही हैं किन्तु मूलभूत निष्ठायें प्रायः अपरिवर्तित हैं। सत्य, धर्म, दया, तप, साधना और पतिनिष्ठा के मार्ग में चलने वाली नारी आज भी अपना जीवन सफल और धन्य बना सकती है। इस दृष्टि से संकटग्रस्त नारी समाज के लिए सती शैव्या का जीवन प्रेरणाप्रद हो सकता है और उनके सहस्रों वर्षों के अंधकार को आलोकित कर सकता है।

भगवती सावित्री –

सावित्री मद्रदेश के अधिपति राजा अश्वपति की पुत्री हैं। उस पर पिता का स्नेह अतुलनीय था।

शैशवकाल के व्यतीत हो जाने के पश्चात् सावित्री शाल्वदेश के पद-च्युत राजा द्युमत्सेन के बुद्धिमान और सत्यवादी पुत्र सत्यवान् को पति के रूप में वरण करती है।[1] एक बार नारद राजा अश्वपति की राज्यसभा में पधारते हैं और सावित्री के द्वारा सत्यवान् को पति के रूप में चयन करने पर कुछ प्रश्न रेखांकित करते हैं और कहते हैं कि सत्यवान् यद्यपि समस्त गुणों से अलंकृत

1- सा वरं वरयामास द्युमत्सेनात्मजं तदा।
   सत्यवन्तं सत्यशीलं नानागुणसमन्वितम्॥ –
   देवीभागवत, खण्ड- 2, पृ० 207

है किन्तु एक ही उसका दुर्गुण है कि वह अल्पायु है — एक वर्ष बाद वह जीवित नहीं रहेगा। इस प्रकार पिता अश्वपति उसे अपने वर-चयन को परिवर्तित करने की सलाह देते हैं। किन्तु सावित्री सती थी, वह मन से जिसे अपने पति के रूप में वरण कर चुकी थी उसमें वह कोई परिवर्तन करने को तैयार नहीं थी। उसने अपने पिता से दृढ़ता से कहा कि बन्धुगण जब पारिवारिक सम्पत्ति के बँटवारे के समय चिट्ठी आदि डालते हैं वह कार्य एक ही बार होता है, कन्यादान एक ही बार होता है, 'अहं ददानि' यह प्रतिज्ञा एक ही बार की जाती है अर्थात् उपर्युक्त तीन कार्य एक ही बार किये जाते हैं।[1] वह चाहे दीर्घायु हो अथवा अल्पायु हो सगुण अथवा निर्गुण हो, मैंने अपने भर्ता का वरण एक बार कर लिया है, दूसरी बार वरण नहीं कर सकती।[2] क्योंकि प्रथम मन से निश्चय कर लिया जाता है तदनन्तर उसे वाणी से प्रकट किया जाता है और पश्चात् उसे कर्म रूप में परिणत किया जाता है।[3] इस प्रकार सत्यवान् को पतिरूप में चयन करने में मेरा अन्तःकरण ही प्रमाण है।[4] अब कोई परिवर्तन सम्भव नहीं है। परिणाम स्वरूप

1- सकृदंशो निपतति सकृत् कन्या प्रदीयते।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतान् सकृत् सकृत्॥ 26॥

2- दीर्घायुरथवाल्पायुः सगुणो निर्गुणो पि वा
सकृद् वृतो मया भर्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम्॥

3- मनसा निश्चयं कृत्वा ततो वाचाभिधीयते।
क्रियते कर्मणा पश्चात् प्रमाणं मे मनस्ततः॥ — महाभारत वनपर्व 26-28

4- सतां हि सन्देह पदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरण प्रवृत्तयः, —अभि०शा०

सावित्री का सत्यवान् के साथ धूमधाम के साथ विवाह सम्पन्न होता है। वे दोनों सत्यवान् और सावित्री सुखपूर्वक रहने लगते हैं और तब दिन पर दिन व्यतीत होने लगते हैं। सावित्री सेवा से सभी को प्रसन्न रखती है।

एक समय की बात है कि एक दिन सत्यवान् सावित्री के साथ लकड़ी और फल आदि लाने के लिए वन जाते हैं।[1] भाग्य से सावित्री आज उसके साथ है। लकड़ी काटते काटते वह थक कर वृक्ष से गिर जाता है और सहसा वहीं पर उसकी मृत्यु हो जाती है।[2]

पौराणिक कथा के अनुसार उस समय वहाँ सत्यवान् को लेने के लिए साक्षात् यमराज पधारते हैं और वे अंगुष्ठ के प्रमाणस्वरूप सत्यवान के सूक्ष्म-शरीर को साथ लेकर यमपुरी की ओर प्रस्थान करते हैं, सावित्री भी अपनी पति-निष्ठा, साधना और तपस्या के प्रभाव से यमराज को जाते हुए देख लेती है और उसके पीछे-पीछे चल देती है और करुणापूर्वक विलाप करने लगती है।[3] तब यमराज उसे अपने पीछे आने से मना करते हैं क्योंकि कोई भी व्यक्ति सशरीर

1- स च संवत्सरेऽतीते सत्यवान् सत्यविक्रमः
   जगाम फलकाष्ठार्थम् प्रहर्षम् पितुराज्ञया॥ — देवीभागवत, खण्ड-2- पृ0208

2- जगाम साध्वी तत्पश्चात् सावित्री दैवयोगतः।
   निपत्य वृक्षात् दैवाद् हि प्राणांस्तत्याज सत्यवान्॥

3- स मृतं पुरुषं दृष्ट्वा वद्ध्वाङ्गुष्ठ समं मुने।
   गृहीत्वा गमनं चक्रे तत्पश्चात् प्रययौ सती॥ —देवीभागवत, खण्ड-2, पृ0 208

स्वर्गारोहण नहीं कर सकता है और साथ वे सावित्री से कहते हैं कि सत्यवान की आयु समाप्त हो गयी है इसलिए उसका रोना और हमारे पीछे आना ही व्यर्थ है।

किन्तु सावित्री उनके अनुगमन से विरत नहीं होती है और यमराज को पिता कहकर सम्बोधित करते हुए उनसे कुछ प्रश्न पूछती है। सावित्री के धार्मिक प्रश्नों को सुनकर यमराज प्रसन्न हो जाते हैं और वे उसकी प्रशंसा करते हैं। साथ ही अपनी प्रसन्नता के वेग में वे उसे वर और आशीर्वाद देते हैं कि तुम विष्णु के साथ लक्ष्मी की तरह, शंकर के साथ पार्वती की तरह अपने पति की सौभाग्यवती प्रिया बनो।[1] वह अपने लिए सत्यवान से सौ पुत्र और अपने श्वसुर के लिए नेत्र ज्योति, राज्य सुख आदि का वरदान भी यमराज से प्राप्त करती है। इस प्रकार सावित्री अपने मृत पति को जीवित करने में सफलता पाती है और अपना जीवन धन्य बनाती है।[2]

सावित्री उभयकुल नन्दिनी है। उसने पितृकुल और श्वसुर कुल को अपनी सत्यनिष्ठा, धर्मनिष्ठा और पति-सेवा से धन्य बना दिया है।

1- यथा श्रीः श्रीपतेः क्रोडे भवानी च भवोरसि।
सौभाग्या सुप्रिया त्वं च तथा सत्यव्रतः प्रिये॥2॥

2- भविष्यतः पुत्रशतं श्वसुरस्य च चक्षुषी।
सत्यव्रत औरसानां पुत्राणां शतकं मम।
राज्यलाभो भवत्वेवं वरमेतन्मयेप्सितम्॥
— देवीभागवत, खण्ड-2, पृ0 210-211

आज भी यदि आधुनिक नारी सावित्री के पावन चरित का अनुसरण करे, सत्य और धर्म के मार्ग का अनुसरण करे तो वह असंभव को संभव बना सकती है और अबला कही जाने वाली नारी सबला हो समाज में वंदनीय हो सकती है।

जगज्जननी सीता -

देवी भागवत पुराण के श्रीरामचरितोपाख्यान में जगज्जननी सीता के व्यक्तित्व का चित्रण उपलब्ध होता है। भारतीय संस्कृति के तो श्रीराम और सीता वो जीवन्त प्राण ही हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल से लेकर आज तक श्रीराम और सीता हमारे भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में रचे और बसे हैं। इनकी महिमा प्रत्येक ग्राम और नगर में अवलोकनीय है। सीता भारतीय साध्वी नारियों का आदर्श रूप है इसे पाने के लिए अब चाहे भारतीय नारी बौनी हो गयी हो लेकिन सीता की भांति अपना जीवन बनाने की तीव्र लालसा उसके मन में समाई हुई है।

भारतीय देवियों में सीता जी सती शिरोमणि मानी जाती हैं। वे सुख और दुख में अपने आराध्य पतिदेव के साथ अद्वैत का अनुभव करती हैं। संकटकाल में ही नारी के शील और धैर्य की परीक्षा होती है। संकट सीता जी का मानो पर्याय ही बनकर पीछा करता रहा है, उन्होंने संकट को जितना

1- अद्वैतम् सुखदुःखयोरनुगतम् सर्वास्ववस्थासुयत्॥

- उत्तररामचरितम्, प्रथम अंक,

अपने जीवन में सहा है, शायद ही कोई भारतीय नारी इतने संकटों को सह पाई हो। वे जीवन भर मानो अग्नि परीक्षा देती रही है और उससे तपकर विशुद्ध सुवर्ण की भांति वे प्रकट होती हैं। आज भी इसी कारण सीता नगरीय और ग्राम्य जीवन में ओतप्रोत हैं।

सीता मिथिला के राजा विदेहराज जनक की अयोनिजा तनया हैं। हल कर्षण से पृथ्वी में बनी गहरी रेखा जिसे शब्दान्तर में सीता भी कहते हैं से उनका प्राकट्य हुआ है, इसीलिए उन्हें सीता कहते हैं, जनकतनया होने के साथ इन्हें जानकी भी कहते हैं। सीता का बाल्यकाल शीलता है, पिता जनक उसकी दिव्यता को ध्यान में रखकर उसके विवाहार्थ प्रण करते हैं कि जो शिव जी के धनुष को भंग करेगा, उसी के साथ वह सीता का विवाह करेंगे।

सीता स्वयंवर के लिए जनक शिव धनुष-भंग हेतु एक विशाल आयोजन करते हैं जिसमें श्रीराम ही शिवचाप को भंग करते हैं और तदनन्तर सीता का श्रीराम के साथ विवाह सम्पन्न होता है।[1] वे श्रीराम के साथ अपनी ससुराल अवधपुरी आती हैं, कुछ समय पश्चात् कैकेयी के षड्यन्त्र और कुचक्र के कारण श्री राम को 14 वर्षों के लिए वनवास होता है।[2] जब संकटकाल उपस्थित

1- भग्नं शिवचापं च जनकेन पणीकृतम्।
उपयेमे ततः सीतां जानकीं च रमांशिकाम्॥

2- राज्यं सुताय कैकेय्या भरताय महात्मने।
रामाय वनवासं च चतुर्दश समास्तथा॥ — देवीभागवत, खण्ड-2, पृ0226

होता है। श्रीराम अकेले वन जाना चाहते हैं और सीता को अयोध्या में ही रहने की सलाह देते हैं। सीता के सामने धर्मसंकट उपस्थित होता है। इधर माता-पिता की सेवा उधर पति वियोग और पति सेवा तथा पतिव्रत। वह विचलित नहीं होतीं और पति के साथ वन चलने का अपना दृढ़ निर्णय सुनाती हैं। उसका कथन है कि अपने आराध्य पतिदेव के बिना सुरपुर भी नरक के समान है, संसार में माता-पिता, बहिन, भाई, सास और ससुर और सुत इत्यादि जितने स्नेह के रिश्ते हैं वे सब प्रियतम के बिना तरणि अर्थात् सूर्य से भी अधिक संतापकारी हैं जिस प्रकार प्राण के बिना शरीर, जल के बिना नदी की शोभा नहीं होती है, उसी प्रकार पति के बिना नारी की शोभा नहीं होती है। अन्ततः श्रीराम सीता जी को भी अपने साथ वन ले जाते हैं। जहां प्रत्येक प्रकार से सीता जी श्रीराम की सेवा करती हैं।

अन्ततः राम चित्रकूट होते हुए सीता के साथ दण्डकारण्य आते हैं जहां वे पंचवटी में निवास करने लगते हैं।[1] वहां शूर्पणखा का प्रकरण उपस्थित होता है, रामानुज लक्ष्मण उसे नाक और कान से रहित कर देते हैं। रावण की प्रेरणा से मारीच कनक मृग का अभिनय करता है और सीता के कहने से श्रीराम

1- पंचवट्यां वसन् रामो रावणावरजां वने।
शूर्पणखां विरूपां वै चकारातिमरातुराम्॥

कनकमृग का वध करने के लिए दौड़ते हैं। पीछे से लक्ष्मण भी चले जाते हैं, फलतः रावण सीता का हरण कर लेता है।

इन अनेक संकटों के उपस्थित होने पर भी सीता अपना धैर्य, सत्य, शील और अपनी पतिनिष्ठा नहीं छोड़ती हैं तथा जिस किसी प्रकार से अपने दुख के दिनों को व्यतीत कर देती हैं और अन्त में इन घटनाओं की सुखा - न्त परिणति होती है। वे पुनः अपने पति को प्राप्त कर हर्षित होती हैं।

सीता की सम्पूर्ण जीवन भर मानो अग्निपरीक्षा ही देती रही। पग-पग पर दुख, संकट, उनका अनुगमन करते रहे हैं किन्तु उन्होंने अपने धैर्य और सर्वोपरि पातिव्रत्य धर्म का कभी भी परित्याग नहीं किया है।

अन्ततः लंका से श्रीराम के लौटने पर और अयोध्या के राजा बनने पर भी दुख उनका पीछा नहीं छोड़ता है। एक व्यक्ति के अनर्गल प्रलाप से लोका - राधन हेतु श्रीराम सगर्भा सीता को छोड़ देते हैं और फिर एक बार सीता पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ता है।[1] सीता अटल हैं। वे इस पर भी जन्मान्तर में श्रीराम को ही अपने पति के रूप में पुनः वरण करने हेतु अपने दृढ़ संकल्प को अभिव्यक्त करती हैं।

1- स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥

— उत्तररामचरितम्, प्रथम अंक

आज नाना प्रकार के संकटों से घिरी नर-नारी सीता के विपुल व्यक्तित्व से सहिष्णुता, शील, धर्म, सत्य, पतिनिष्ठा की शिक्षा लेकर दुखों से पार होकर अपना जीवन सफल कर सकती है।

देवी भागवत पुराण के अन्तर्गत देवी उपासना और माहात्म्य के सन्दर्भ में अनेक मानुषी और मनुष्येतर नारियों के वर्णन उपलब्ध होते हैं। जिनमें महारानी देवकी, महादेवी जाम्बवती, शशिकला, इन्द्राणी, भगवती अदितिऔर तुलसी चरित आदि प्रमुख हैं जिनका विस्तार भय और पिष्टपेषण भय से यहाँ केवल नामोल्लेख मात्र पर्याप्त होगा, एक तो इसलिए कि इनमें से कुछ का अन्य पुराणों में भी वर्णन उपलब्ध होता है जिनकी यत्र-तत्र चर्चा की गयी है।

देवीभागवत पुराण के प्रायः सभी नारी पात्र देवी उपासना के सन्दर्भ में उद्धृत और वर्णित हैं। सभी नारियों ने देवी की विधिवत उपासना की है और इससे उनके संकट दूर हुए हैं। वस्तुतः देवी प्रत्यक्ष है वह उपा-सना भक्ति और अनुष्ठान से प्रसन्न होती हैं तथा अपने आराधकों के कष्टों को दूर करती हैं।

देवी भागवत पुराण का प्रतिपाद्य वस्तुतः देवी की विविध शक्तियों का ही वर्णन है वह नाना रूप धारिणी है और भिन्न-भिन्न रूप और नाम धारण कर यथासमय प्रकट होती हैं। वह धर्म की स्थापना और अधर्म के विनाश की हेतु हैं। वह आदिशक्ति हैं। वही नवदुर्गा के रूप में प्रकट होती हैं।

असम्भव को सम्भव करना देवी अथवा शक्ति की विशिष्टता है। शक्ति मुख्यरूप से कार्य के आधार पर उत्पत्ति स्थिति और लय के अनुसार सरस्वती, लक्ष्मी और काली के रूप में वन्दनीय और पूजनीय हैं, वस्तुतः उनमें भेद नहीं है, वे अभेद रूप एक और अद्वैत हैं। वे महाकाली कौशिकी के रूप में धूम्रलोचन और चण्ड-मुण्ड आदि असुरों का वध करती हैं और इस प्रकार धर्म संस्थापना का कार्य करती हैं। वे सरस्वती के रूप में विद्या देती हैं और लक्ष्मी रूप से धन प्रदान करती हैं।

देवी भागवत पुराण में वर्णित नारीपात्र व्यासमाता सत्यवती, गान्धारी महारानी कुन्ती, सती उत्तरा, सती शैब्या, सती सावित्री, महारानी द्रौपदी और जगज्जननी सीता आदि में देवी की शक्ति का रूपान्तरण दिखाई देता है। शक्ति की कृपा से ही उन्होंने घोर संकटाग्नियों को पार कर लिया है। इन नारियों की सत्यनिष्ठा धर्म, शील और पातिव्रत्य परवर्ती साध्वी नारियों के लिए प्रकाशस्तम्भ का कार्य करता है।

देवी भागवत पुराण की प्रतिपाद्य विषय-वस्तु से यह ध्वनित होता है कि समस्त स्त्रियाँ उसी आदिशक्ति की छाया है, वह देवी ही गोपनीय रूप से शक्ति के रूप में सभी नारियों में व्याप्त है।[1]

यदि नारी समाज आदिशक्ति के गुणों को अपने अन्दर स्फुटित कर सके तो वह आज भी वन्दनीय बनी रहेगी।

1- विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु॥ — मा0पु0 11-6

अष्टम अध्याय

उपसंहार

अष्टम अध्याय

उपसंहार

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध के अध्ययन विषयीभूत प्रमुख पुराणों(ब्रह्म, पद्म, विष्णु, मार्कण्डेय और देवीभागवत) में नारी के सन्दर्भ में किये गये अध्ययन से कतिपय रोचक तथ्य प्रस्फुटित होते हैं। पुराण-साहित्य परम्परया तो महामति वेदव्यास की रचना माना जाता है किन्तु शोधप्रबन्ध के प्रारम्भ में प्रस्तुत अध्ययन से सुस्पष्ट है कि पुराण किसी एक व्यास की लेखनी से प्रसूत किसी समान कालखण्ड की रचना नहीं है। हमारे भारतीय और पाश्चात्य चिन्तकों के अनुसार समय समय पर व्यासों का उदय होता रहा है, जो प्रकृति से मनीषी और तत्कालीन समाज को परखने और उसे रूपायित करने की कला में प्रवीण और सिद्धहस्त होते रहे हैं, उन्हीं की प्रतिभा का प्रस्फुरण ये नाना पुराण हैं। जिस प्रकार सूर्य, चन्द्र और असंख्य तारागण जगत् को पृथक्-पृथक और भिन्न समय में प्रकाशित करते हैं किन्तु सभी नक्षत्र आदि सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित हो कर ही जगत् को प्रकाशित करते हैं, सभी में सूर्य का प्रकाश है, उसी प्रकार पराशर पुत्र सत्यवती नन्दन महामति वेद-व्यास से प्राप्त मेधा के वरदान वाले अनेक बुद्धिमान व्यासों ने पुराण साहित्य के कलेवर की श्रीवृद्धि की है।

वस्तुतः सत्यवतीनन्दन वेदव्यास सूर्य के समान तेजस्वी, बिना चार मुखवाले ब्रह्मा, दो भुजाओं वाले दूसरे विष्णु और बिना तीन नेत्रों वाले शम्भु हैं।[1]

पुराण-काल रामायण और महाभारत में चित्रित कतिपय नारी-रत्नों यथा जगज्जननी सीता, सती शिरोमणि अनसूया, जगन्माता पार्वती, माता देवकी, व्यासमाता सत्यवती, महारानी रुक्मिणी, कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी आदि का वर्णन पौराणिक शैली में उपाख्यानों के सन्दर्भ में उपलब्ध होता है। इसलिए पुराणकाल में चित्रित ये नारी-पात्र महाकाव्य काल के नारी पात्रों से अत्यधिक समानता रखते हैं, भिन्नता पौराणिक वर्णन शैली में दिखाई देती है। पुराणों में प्राप्त महाभारतोपाख्यान और रामचरितोपाख्यान के अन्तर्गत वर्णनात्मक रूप से उक्त नारी पात्रों की मुख्य कथा से दूरतर सम्बद्धता प्रदर्शित की गयी है। फिर भी उपर्युक्त पुराणों के अनुशीलन और परिशीलन से पौराणिक नारी का स्वरूप उदित होता हुआ प्रतीत होता है।

1- अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः।
अभाललोचनः शम्भुर्भगवान् बादरायणः॥
— महाभारत, आदिपर्व

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में वैदिककाल की नारियों पर भी अति-संक्षेप के साथ प्रकाश डाला गया है। जैसे भारतीय चिन्तन-परम्परा साक्षात् अथवा असाक्षात् रूप से वेदों से सम्बद्ध मानी जाती है और आगे वह विकास-पथ पर अग्रसर होती हुई दिखाई देती है, उसी प्रकार वैदिक नारी के कतिपय गुणों का प्रभाव परवर्ती पौराणिक नारी में परम्परया दिखाई देता हुआ सा प्रतीत होता है। कालान्तर में उसमें विकास और अनेक परिवर्तन भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुए हैं। इसलिए वैदिक नारी के व्यक्तित्व का एक संक्षिप्त स्वरूप भी यहां प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

तदनुसार वैदिक काल में भी कन्या जन्म की अपेक्षा पुत्रजन्म का अतिशय महत्व था। वैदिक साहित्य में विशेषरूप से ऋग्वेद संहिता और अथर्व वेद संहिता में पुत्रजन्म के लिए अनेक प्रार्थनायें उपलब्ध होती हैं। पुत्र परिवार का आर्थिक भार उठाने में और उसकी रक्षा तथा वंशबेल को आगे बढ़ाने में समर्थ होता था और दूसरी ओर कन्या परकीय धन माना जाता था, जो दूसरे कुल की शोभा बढ़ाती थी। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि कन्या जन्म नितान्त अवांछनीय था।

वैदिककाल में सुसंस्कृत और सभ्यतम परिवारों में पुत्रजन्म की भांति कन्या जन्म को भी वांछनीय माना जाता था। सुशिक्षित कन्या पुत्र से भी

अधिक अभिप्रेत मानी जाती थी, ऐसी विदुषी कन्यायें कुल का जीवन ही मानी जाती थीं। पुत्र भले ही पितृहन्ता होने की गर्हा के पात्र बने हों किन्तु पुत्री इतिहास में कभी भी माता-पिता की हत्या करने वाली नहीं दिखाई देती। प्रत्युत कन्यादान से माता और पिता को पृथ्वीदान का पुण्य प्राप्त होता था। प्राचीन काल में मांगलिक अवसरों पर कन्याओं का विशेष समादर और स्वागत किया जाता था। वे देवी के रूप में पूजित और अभिवन्दित होती थीं।

वैदिककाल में समाज में खुलापन था। नारी को समुचित आदर और गौरव प्राप्त था। उस समय नारियों को शिक्षा के अवसर प्राप्त थे। अनेक वैदिक नारियाँ यथा सूर्या, घोषा, सिकता, इन्द्राणी, अदिति, वाक आम्भृणी अपाला और अनूपा प्रभृति वैदिक मंत्रों के रचनाकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। दर्शन के क्षेत्र में भी गार्गी जैसी ब्रह्मवादिनी नारियों का विशेष योगदान था। इस प्रकार वैदिक काल में नारी शिक्षा की व्यवस्था होने का संकेत प्राप्त होता ह, यद्यपि उन्हें यह शिक्षा घरों में ही दी जाती थी, बाद में धीरे-धीरे गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का अभ्युदय हुआ था, जहाँ पर ऋषियों और मुनियों के आश्रमों में बालक बालिकाओं को शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा से जागृति और चेतना का तथा उचित और अनुचित विचार का अभ्युदय होता है जिससे शोषण की संभावना नहीं रहती है इस दृष्टि से वैदिक नारी शिक्षा के क्षेत्र में अग्रसर रही है।

अगे ब्राह्मणकाल में तो नारियों के गौरव में और वृद्धि हुई थी। उन्हें आत्मा का अर्धांग ही कहा जाता था।[1] इसलिए उन्हें इस काल में पूर्ण सम्मान प्राप्त था। स्मृतिकारों ने तो इस पर अपनी मुहर ही लगा दी थी।[2] जहाँ पर नारी पूजी जाती है, वहाँ देवता प्रसन्न होते हैं और जहाँ वह अपमानित होती है वहाँ की समस्त क्रियायें निष्फल हो जाती है।

वैदिक नारी में सत्य और शील आदि गुण विद्यमान थे, वह सदाचारिणी सुसंस्कृत, सभ्य और सुशील थी। वह सदैव अपने मधुर व्यवहार से पारिवारिक और वैवाहिक जीवन को सरस तथा आनन्दमय बनाये रहती थी, वे प्रसन्नचित्त से अपने सास-ससुर एवम् पति का समादर करती थी, घर के कार्यों में सदैव अग्रसर रहती थी, संयम और तपस्या उसका विशेष गुण था। इसीलिए उसमें परस्पर सहयोग करने की इच्छा बनी रहती थी। सुख और दुःख के अवसर पर वे एक दूसरे का सहयोग करती रहती थीं।[3]

1- तै0ब्राह्मण, 3-3-35

2- मनुस्मृति, 3-56, 3- 59

3- अथर्व वेद, 10- 85- 22

इस युग में समाज में बाल-विवाह-प्रथा होने का कोई संकेत प्राप्त नहीं होता है। प्रत्युत युवावस्था में ही विवाहादि सम्पन्न होते थे।[1] यद्यपि वह विवाहकाल में नाना प्रकार के अलंकारादि धारण करती थी। नाना प्रकार के अलंकारों के होते हुए भी उसका वास्तविक अलंकार उसका सौभाग्य देवता पति ही होता था। पतिव्रता नारियां पति को विशेष प्रिय होती थीं।

पति द्वारा अपनी पत्नी के परित्याग के भी उदाहरण इस युग में प्राप्त होते हैं इस आपत्काल में वह पितृ-कुल में जीवन यापन करती थीं, वैसे पुनर्विवाह भी इस काल में होते थे। किम्बहुना, वैदिक नारी का जीवन संकीर्ण नहीं था, वह सौभाग्यशालिनी थी।

वैदिक काल की नारियों के अनेक गुणों ने परवर्ती महाकाव्य काल और पुराण-काल की नारियों को प्रभावित किया है किन्तु युगधर्म के अनु - सार इसमें विकास और परिवर्तन भी होते रहे हैं।

पुराणकाल :-

वैदिककाल की भांति महाकाव्यकाल और पुराणकाल में भी पुत्र लाभ को सभी लाभों से विशिष्ट माना जाता था, कन्या जन्म इस काल में भी प्रायः अभिनन्दित नहीं था। उसकी सुरक्षा और विवाहादि के सम्बन्ध में जो

1- अथर्व वेद, 6- 60- 2
2- ऋग्वेद, 10-85-22

माता-पिता को कष्ट होता था, उससे वह पितृकुल के लिए शोककारिणी मानी जाती थी इसके विपरीत पुत्र पितृकुल के लिए आनन्द का निष्यन्द था। इसका कारण सुस्पष्ट है कि पुत्र अपने पिता और परिवार के अर्थ, सुरक्षा और वंश वृद्धि आदि कार्यों में सहायक होने के कारण कन्या की तुलना में अत्यधिक वाञ्छनीय था जब कि कन्या अन्ततः परकीय अर्थ के रूप में पितृकुल छोड़ देती थी।

किन्तु ऐसी बात नहीं है कि पुराण काल में कन्या नितान्त रूप से अवाञ्छनीय थी। पिता और माता का पुत्र और पुत्री दोनों में बराबर का स्नेह रहता था।

इस काल में पुत्री अपने पिता की रक्षा में सदैव अग्रसर रही है। कुन्ती अपने पिता कुन्ती भोज की दुर्वासा के शाप से रक्षा करती है। इस प्रकार संकट के अवसर पर पुत्री भी अपने पिता के शोक हरने में कभी पीछे नहीं रही है।

पुराणकाल में अनेक उदाहरण ऐसे प्राप्त होते हैं, जबकि कन्या जन्म से परिवार आनन्दित हुए हैं। अश्वपति और शुक्राचार्य कन्या जन्म से अत्यधिक आनन्दित हुए थे। पुत्र के अभाव में पुत्री से भी वंशवृद्धि की कामना विद्यमान थी। इस काल की यह भी मान्यता रही है कि घरों में कन्या के रूप में लक्ष्मी सदैव निवास करती है।

आपत्तियों से जो माता-पिता की रक्षा करता है उसे अपत्य कहते हैं, इस दृष्टि से कन्या भी अपत्य मानी जाती थी क्योंकि वह भी अपने माता-पिता की रक्षा करती थी। फिर दौहित्र पुत्र से अधिक श्रेष्ठ और प्रिय माना जाता था। वह अपने नाना और नानी के पिण्डदान और तर्पण का अधिकारी होता था। कन्या पितृकुल के लिए पूजनीय होती थी पुराणकाल में नवरात्र के अवसर पर कन्याओं को नवदुर्गा का स्वरूप मानकर पूजा की जाती थी। सर्वगुण युक्त कन्या तो पितृकुल का आभूषण थी। पार्वती अपने गुणों से अपने पिता हिमालय का तो मानो प्राण ही थी।

कन्या अपने जीवन में यदि सुस्थापित हो जाती थी, तो उसके सम्बन्ध में पिता की चिन्ता समाप्त हो जाती थी और इस प्रकार वह भी पुत्र के समान पितृकुल के लिए गौरव की बात होती थी।

विवाहोत्तर वही कन्या भार्या पद को अलंकृत करते हुए जाया पद को प्राप्त करती थी, जाया और पति के इसी प्रेम-प्रधान साहचर्य को दम्पति के रूप में शास्त्रों ने प्रशंसित किया है। एक रूप बने दम्पति गृहस्थाश्रम रूपी रथ की धुरी का काम करते थे। इनका यह साहचर्य त्रिवर्ग का साधक होता था। किम्बहुना, जिस घर में भार्या और भर्ता परस्पर सन्तुष्ट होते थे वहाँ धर्म, अर्थ और कामादि पदार्थ हस्तामलक होते थे।

1- महाभारत, अनुशासनपर्व, 8- 13

साध्वी भार्या अपने मधुर व्यवहारों, वचनों औरसुमधुर विलासों से अपने नायक को सन्मार्ग में ले चलने के लिए उसी प्रकार प्रेरित किया करती थी जिस प्रकार सत्काव्य पाठकों को सन्मार्ग में ले चलने के लिए प्रेरित करता है नारी अपने भार्या रूप से पति और परिवार की परम मित्र मानी जाती रही है और जाया रूप से पुत्र-पुत्री की जननी होने के कारण पारिवारिक वाटि-का को हरा-भरा रखने वाली रही है। इस प्रकार गृहस्थ, सुख, धर्मफल और संतान वृद्धिवृद्धि का साक्षात् कारण होने के कारण भार्या पुराण-काल में अभि - नन्दनीय और वन्दनीय स्थान रखती रही है।

फिर पतिव्रता नारी केवल अपने घर का ही नहीं वरन् राष्ट्र का और भारतीय संस्कृति का गौरव रही है। इसीलिए शास्त्रों में कहा गया है कि पृथ्वी के सभी तीर्थ सती और पतिव्रता नारी के चरणों में स्थित होते हैं। सती शिरोमणि सीता के अपमान ने रावण की लंका को विनष्ट कर दिया था।

माता के रूप में नारी न केवल पुराण काल में वरन् सदैव वन्दनीय रही है। गर्भ धारण और पोषण के कारण वह पिता से भी श्रेष्ठ मानी जाती है। सन्तान के लिए माता परम गुरु है। पुराणों में मातृ-भक्ति की महिमा अनेक प्रकार से गाई गयी है।

इसी कारण से स्मृतिकार और पुराणाचार्यों ने नारी को 'नारी रत्न' की संज्ञा दी थी। नारी-रत्न के बिना उसी प्रकार घर अशुभ है जैसे बिना

अलंकार, तिलक और सिन्दूर आदि के स्वयं नारी। शब्दान्तर में कहा जा सकता है कि जैसे अलंकार, तिलक और सिन्दूर नारी के सौभाग्य-सूचक चिन्ह हैं उसी प्रकार नारी-रत्न से घर का सौभाग्य सूचित होता है।

हमारा पुराण-साहित्य नारी के सम्मान, समादर और उसकी पूजा की बात करता है। जहाँ पर नारी की प्रतिष्ठा होती है वहाँ सुख और सुशान्ति विराजती है। जहाँ पर इनका तिरस्कार अपमान किया जाता है वहाँ की समस्त क्रियायें विफल हो जाती हैं।

जिस प्रकार प्रकृति ने शुक्ल पक्ष और कृष्ण-पक्ष की रचना कर गुण और दोष के सह अस्तित्व की ओर संकेत किया है उसी प्रकार पुराणों में और शास्त्रों में जहाँ एक ओर सती और साध्वी नारियों की प्रशंसा की गयी है वहीं दूसरी ओर कुलटा और कुमार्गी नारी की निन्दा की गयी है। स्त्री स्वभाव से चंचल मानी जाती रही है इसलिए नारी को आज की जैसी स्वतंत्रता नहीं प्राप्त थी। पिता कौमार अवस्था में, भर्ता युवावस्था में और पुत्र वृद्धा - वस्था में उसकी रक्षा किया करता था। किन्तु हमारी भारतीय-संस्कृति का विश्वास रहा है कि पुत्र भले ही कुपुत्र हो जाय लेकिन किसी भी दशा में माता कभी कुमाता नहीं होती है।

किन्तु नारी के कतिपय दोषों को छोड़कर देखा जाय तो मानव के लिए नारी उभय लोकों के सुख की प्राप्ति का हेतु, सखा, भ्राता, मित्र, सेवक

धन, सुख, शान्ति, घर और वास इत्यादि सभी का प्रतीक है। इसीलिए नारी सदैव आदर के योग्य रही है।

पुराणकाल में नारी की प्रतिष्ठा -

इस प्रकार कतिपय पुराणों केअनुशीलन और परिशीलन से यह सुविदित हो जाता है कि पुराण काल में नारी को प्रायः प्रतिष्ठा, पूर्ण स्थान प्राप्त था। वह घर की राष्ट्र और कुल की शोभा थी वह अपने पुत्र कुल और परिवार के हित साधन में सदैव अपना जीवन सफल बनाती रही है। वह धर्म और सत्पथ पर चलने वाली रही है।

शोध प्रबन्ध में जिन नारियों का अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है उनमें से कुछ को छोड़कर प्रायः वे समाज में अत्यधिक आदर - पूर्ण स्थान रखती थी। महाकाल का प्रवाह इतना तीव्र होता है कि महान से महान व्यक्तित्व भी विलीन हो जाते हैं जो फिर भी बचे रहते हैं और समाज में जिनकी सदैव चर्चा होती रहती है वे निश्चय रूप से अमर और कालजयी चरित्र होते हैं। इस दृष्टि से ब्रह्मपुराण के नारीपात्र देवमाता अदिति - इत्यादि पद्मपुराण के सती सुकला और सुनीथा इत्यादि, विष्णुपुराण के माता देवकी इत्यादि मार्कण्डेय पुराण के सती अनसूया, सती मदालसा इत्यादि और

देवी पुराण के महामति व्यासमाता सत्यवती इत्यादि नारी पात्र आज भी समाज में चर्चित अर्चित और वन्दित हैं।

अपनी सत्यनिष्ठा, तपस्या, पतिभक्ति, शील, सेवा, लगन और पातिव्रत्य धर्म से इन पुराण कालीन नारियों ने न केवल अपने जीवन को प्रत्युत अपने सम्पूर्ण परिवेश को पवित्र और गौरव-गरिमा से गुरुतर बना दिया है। संकट के अवसर पर बहुत सी नारियाँ टूट जाती हैं और घबड़ा जाती हैं। अपना व्रत, यम, नियम और संयम छोड़ बैठती हैं, धर्म, न्याय सत्य सदाचार और शील से दूर हो जाती हैं किन्तु पुराणों के उप - युक्त अनसूया इत्यादि कतिपय नारी पात्र हिमालय के समान दृढ़ता और उच्चता धारण किये रही हैं जो किसी भी समाज, राष्ट्र और संस्कृति तथा सभ्यता के लिए गौरव की बात है उपर्युक्त पुराणानुशीलन से यह सुविदित है कि पुराण-कालीन नारी धर्मभीरु थी धर्म, सत्य, शील, दया, क्षमा, श्रम सेवा और समर्पण उसके महान गुण थे, जिससे समाज में उसका स्थान प्रति - ष्ठित था।

पुराणकाल में नारियों का सर्वस्व उनका पति ही था, उनकी जीवन चर्या पति को केन्द्र बनाकर संचालित होती थी। वे पति के साथ धर्म,

अर्थ काम आदि त्रिवर्ग को प्राप्त करने में समर्थ होती थीं। वे अपने भर्ता का पोषण करती थीं और उसकी सेवा में अपना सम्पूर्ण जीवन लगा देती थीं। वे अपने ही शरीर से पति को पुत्ररूपी फल प्रदान कर उसे तीन वैदिक ऋणों से मुक्त होने में सहायता करती थीं।[1]

पुराणकालीन नारियाँ सभी आश्रमों के जनों का भरण-पोषण और सुश्रुषा के कार्य भी करती थीं क्योंकि गृहस्थ आश्रम सभी आश्रमों से श्रेष्ठ समझा जाता था, वह सभी आश्रमों का भरण पोषण करता था, इस प्रकार वे गृहस्थाश्रम में रहते हुए अपने समाज से जुड़ी रहती थीं और समाज के कल्याण में अपना योगदान देती रहती थीं।[2]

पुरुषों की भांति नारियाँ भी शिक्षित होती थीं लेकिन बालकों के समान बालिकाओं के गुरुकुल में जाने के प्रमाण प्राप्त नहीं होते हैं। कन्याओं को माता और पिता घर में ही शिक्षा देते थे और उनमें उच्च संस्कार उत्पन्न कर देते थे। गृहकार्य गृहव्यवस्था, अतिथिपूजा आदि की उत्तमोत्तम शिक्षा उसे माता देती थी। वह अपने बन्धुओं और सम्बन्धियों के सम्पर्क से अन्य कलाओं

1- पुत्रार्थम् भर्तृपोषार्थम् स्त्रियः सृष्टाः स्वम्भुवा।
— महाभारत, आदिपर्व, 77- 2।

2- गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान बिभर्ति हि॥
—अग्निपुराण, प्रथमखण्ड

का ज्ञान प्राप्त कर लेती थीं। धार्मिक शिक्षा में वह पूर्ण दक्ष होती थी और उसे सर्वोपरि अपने कर्तव्यों का ज्ञान घर में ही माता और पिता करा देते थे। इस प्रकार पुराणकालीन नारी शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ी नहीं थी।

यही कारण है कि पुराणकालीन नारी अपने व्यक्तिगत स्वार्थ का त्याग कर अपने कुटुम्ब के अभ्युदय में लगी रहती थी और संकटकाल में सत्य और धर्म उसकी रक्षा करते थे। वह भाग्य और पुरुषार्थ दोनों में विश्वास रखती थीं जिससे उसका जीवन-चक्र सफलता से आगे बढ़ता रहता था। वे पुरुष की भांति कठोर तप को भी स्वीकार करती थीं और अपनी तपस्या, निष्ठा तथा लगन से पितृकुल और पतिकुल दोनों को ही धन्य बना देती थीं। विपत्ति काल में भी शैव्या और सावित्री जैसी नारियां उसी प्रकार खरी, शुद्ध और परिष्कृत होकर निकली हैंजैसे अग्नि परीक्षा में सुवर्ण।

चूंकि उक्त पुराण महाभारत के अनुवर्ती हैं इसलिए महाभारत और रामायण के अनेक नारी पात्र ही उनमें वर्णित हैं। इसीलिए इनमें वही उच्चता और आदर्श भी परिलक्षित होते हैं। इस काल में विवाह में आज की जैसी जटिलता नहीं थी। राजघरानों में तो स्वयंवर प्रथा से राजकुमारियों के वरों का चयन होता था इनमें वरों के गुणों पर विशेष ध्यान दिया जाता था, वे चाहे वीर हों या धर्मात्मा हों। राजकुमारियों को पिता की आज्ञा से अपने वर चयन का सुअवसर प्राप्त होता था। सीता-स्वयम्वर धनुष भंग के

माध्यम से होता है तो द्रौपदी का स्वयम्बर धनुर्विद्या की परीक्षा के द्वारा सम्पन्न होता है, उधर सावित्री अपने पिता की आज्ञा पाकर सत्यवान के आन्तरिक गुणों को आधार बना कर ही उसे अपना पति चुनती है।

महाभारत से लेकर पुराण तक चित्रित नारियाँ सत्यवती, कुन्ती और माद्री आदि नियोग-प्रथा से सन्तति लाभ करती हैं। नारी का जीवन मातृत्व लाभ से धन्य हो जाता था इसलिए पति के नष्ट, मृत, प्रव्रजित और क्लीव होने पर महाभारत काल की भांति पुराणकाल में भी नियोग प्रथा के द्वारा नारी सन्तति लाभ कर सकती थी। क्योंकि नारी के प्रति अथवा अपत्य ही जीवन माने जाते रहे हैं। नारी की आपत्ति से रक्षा करने वाले पति अथवा अपत्य होते थे।

फिर भी पुराण-काल में नारी पुरुष की अनुवर्ती रही है, पिता पति और पुत्र की छाया में ही उसे अपना जीवन यापन करना होता था, इस काल में भी स्वतंत्रता उसकी सुरक्षा में बाधक मानी जाती थी। किन्तु इस काल में पर्दा प्रथा का उदय नहीं दिखाई देता है, वे अभ्यागत अतिथि का स्वयम् बिना अवगुण्ठन के स्वागत और सलाप कर सकती थीं। वे सामाजिक उत्सव और धार्मिक अनुष्ठानों में बिना किसी बन्धन के भाग ले सकती थीं।

समाज में जिन लोगों के पुत्र नहीं होते थे वे कन्याओं से ही अपने वंशाभ्युदय की आशा करते थे। दौहित्र पुत्र के समान या उससे भी अधिक

प्रेमभाजन होता था। दान के लिए जामाता के समान कोई पात्र नहीं होता था। बेटी और दामाद श्वसुर कुल के लिए पूजनीय माने जाते थे। कन्या उभय कुल नन्दिनी होने के कारण समाज में आदरणीय थी फिर गुणोपेता कन्या तो समाज का कुल का और राष्ट्र का मानो उच्छ्वास थी। उसके विवाहादि में होने वाले कष्ट ही पिता के लिए चिन्ता के कारण होते थे।

पुराणकाल के कतिपय आदर्श नारी-पात्रों की सत्यनिष्ठा और पतिव्रत्य पर्व अतुलनीय है। शैव्या, अनुसूया और सावित्री जैसी सती, साध्वी पतिपरायणा नारीरत्न और कहाँ मिल सकते हैं?

जैसे यह कहा जाता है कि विधाता ने इस संसार की रचना गुण और दोषात्मक रूप से की है अर्थात् यदि इसमें अमृत है तो विष भी है। इस दृष्टि से विचार करने पर विदित होता है कि यदि कतिपय पुराणकाल की नारियाँ सती, साध्वी और पतिपरायणा हैं तो दूसरी ओर कुछ ऐसी नारियाँ भी इस काल में थीं जो नारी जाति का कलंक थी और समाज के लिए अवांछनीय थीं।

विष्णुपुराण के महाभारतोपाख्यान में वर्णित नारी पूतना खल - नारियों का प्रतीक है। इसमें आसुरी शक्ति आपादमस्तक समाई हुई है। जन - कल्याण के स्थान पर मानवजाति का अकल्याण ही ऐसी खलनारियों का उद्देश्य होता है। यह कुलटा और हिंसक नारियों का भी प्रतीक है। इसमें उपर्युक्त

दुर्गुण इतने कूट-कूट कर भरे हैं कि यह महाकाल के तीव्र प्रवाह में प्रवाहित नहीं हो सकी है और महाभारत एवम् विभिन्न पुराणों के कथनोपकथनों में विभिन्नअद्यावधि वर्णित होने के कारण जीवन्तता धारण किये हुए है।

इसी प्रकार ब्रह्म-पुराण के अन्तर्गत प्राप्त रामोपाख्यान के नारी पात्र कैकेयी और मन्थरा आदि कुटिल मति, पिशुनता और कुनीति की प्रतीक हैं जिनकी अन्ततः समाज में दुर्गति और कुगति होती है। आज भी समाज में यत्र-तत्र कैकेयी, मन्थरा और पूतना जैसी कुटिल, चुगलखोर और हिंसक क्रूर कर्म करने वाली नारियाँ देखने को मिल सकती हैं जो नारी समाज का कलंक और निकृष्टतर कार्यों की रचनाकार हैं।

किन्तु जिस प्रकार प्रकाश और अन्धकार, अमृत और विष, शिव और अशिव, पुण्य और पाप के मध्य प्रकाशादि का वरण किया जाता है और उसी से जीवन मंगलमय बनता है उसी प्रकार पुराणों में विशेषरूप से वर्णित साध्वी नारियाँ हमारे समाज के लिए प्रकाश-स्तम्भ स्वरूप हैं। उपर्युक्त पुराणों में वर्णित नारियाँ यथा मदालसा, अदिति सती पार्वती, सती सुकला, सती शकुन्तला माता देवकी, महारानी शैव्या और सावित्री का पावन चरित्र परवर्ती नारी समाज के लिए सदैव प्रेरणाप्रद रहा है। उनकी सत्यनिष्ठा, शील पातिव्रत्य-धर्म, तपस्या, धैर्य सेवा और समर्पण आदि न केवल नारी समाज, प्रत्युत सम्पूर्ण मानवजाति को सदैव गौरवान्वित करते रहेंगे।

पुराणों में मानवेतर नारी-पात्रों का भी बड़े आदर के साथ वर्णन किया गया है। यह इनमें बतलाया गया है कि समस्त नारी जाति में उसी महाशक्ति का प्रकाश समाया हुआ है। मार्कण्डेय पुराण और देवीपुराण में मुख्यरूप से आदिशक्ति पुरा अम्बा दुर्गा को ही सृष्टि की संचालिका शक्ति माना गया है। फलतः दुर्गा के वैसे तो अनन्त रूप हैं किन्तु मुख्यरूप से वह नव दुर्गा के रूप में अधिक वर्णित है। सभी नारी पात्र और पुरुषपात्र इन्हीं आदि शक्ति दुर्गा की आराधना कर अपने दुःखों और नाना प्रकार के संकटों से पार उतर सके हैं। सती नारियों के शील, पातिव्रत्य और उनके धर्म की रक्षा उसी आदि शक्ति की आराधना और कृपा से हुई है। आदिशक्ति दुर्गा नारी शक्ति का आध्यात्मिक, दार्शनिक और परिष्कृत रूप है। इस आदिशक्ति का निरन्तर प्रवाह इस नारी शक्ति में परिलक्षित होता है।

वैसे तो भारतीय संस्कृति की अनेक विशेषताएं हैं लेकिन उसकी उदात्तता विशालहृदयता, सेवा और समर्पण तथा धर्म पर अटल विश्वास उसकी कुछ अनन्य विरल विशेषतायें हैं। भारतीय संस्कृति के ये सभी गुण पुराणकालीन नारियों में सर्वोपरि रूप से प्रस्फुटित होते हुए दिखाई देते हैं। शब्दान्तर में यह दृढ़ता के साथ कहा जा सकता है कि पुराणकालीन नारी भारतीय संस्कृति के उपर्युक्त गुणों की साक्षात् वाहिका है।

अपने श्लाघनीय गुणों के कारण पुराण-युग में नारी को प्रतिष्ठा पूर्ण स्थान प्राप्त था और जिस देश मे, जिस समाज में नारी का आदर और सम्मान होता रहा है उस देश की संस्कृति उतनी ही महान् मानी जाती है। इसलिए हमारे देश में मनु को यह कहना पड़ा था कि जहां नारी-पूजा होती है वहां देवता आनन्दित होते हैं। ऐसा देश और समाज सुसंस्कृत और सभ्यतम कहे जाने का अधिकारी होता है।

उपर्युक्त पौराणिक नारियों में महाभारत की नारियों की प्रधानता है जिसमें दुर्योधन और जयद्रथादि खलनायकों के द्वारा द्रौपदी का घर और वन में, द्यूत सभा और राजदरबार में अपमान किया जाता है। तो यह कतिपय खलनायकों के षड़यन्त्र और कुचक्र का ही प्रतिफल है।उनके द्वारा किये गये नारी के इस तिरस्कार से संस्कृति नतमस्तक हुई है, भारत माता लज्जित हुई है। धर्म शास्त्रियों और नीतिशास्त्रियों ने उनके इस दुष्कृत्य की घनघोर निन्दा की है। उधर रामायण से लेकर परवर्ती पुराण में वर्णित सीता का रावण अपमान करता है जो सर्वथा धर्मविरुद्ध और आसुरी-संस्कृति का प्रतिफल है।

उभयत्र नारी का यह अपमान खलनायकों के लिए कालरात्रि के समान विनाशकारी सिद्ध होता है। अन्ततः नारी का सम्मान विजयी होता है। और तिरस्कर्ताओं का संहार होता है। नारी के सम्मान की यह विजय

बन जाती है। लेकिन यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि अपमान और तिरस्कार के दावानल से दग्ध सीता और द्रौपदी जैसी नारियाँ बड़े धैर्य से और संयम से अपने संकट को पार कर लेती हैं और समाज के सामने वह आदर्श उपस्थित करती हैं जिससे सम्पूर्ण नारी समाज गौरवान्वित हो उठता है। इस प्रकार सुस्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति और सभ्यता का ध्येय सदैव नारी सम्मान और प्रतिष्ठा रहा है।

पुराणकाल की नारी सभ्यतम नारियों में एक थी। उसका जीवन सादा और उच्च विचारों से ओत-प्रोत था। वह अपने घर में और समाज में अपनी रुचि के अनुसार वस्त्राभूषण धारण करती थी। वह यथोचित रूप से अपने घर को साफ सुथरा सुसज्जित किये रहती थी। वह अपने स्वास्थ्य का भी ध्यान रखती थी और अपना सौन्दर्य बनाये रखती थी। पुराण - कालीन नारी का परम प्रयोजन सर्वथा पति का अनुगमन और उसकी सेवा में अपना जीवन समर्पित करना था। विरह काल में उसकी जीवन शैली में परिवर्तन हो जाता था। वह दूर रहने वाले पति की अनुपस्थिति में शरीर शृंगार से दूर रहती थी। किन्तु मनसा वह अपने पति का ध्यान सदैव करती रहती थी। इस प्रकार उसका रहन-सहन भारतीय संस्कृति के सर्वथा अनुरूप था। वह तपस्विनी और कर्मशीला थी।

पुराण युग की इस नारी का प्रभाव हमारे परवर्ती भारतीय नारी समाज में प्रचुरता से दिखाई देता है। पुराणों का पठन और पाठन भारत में अद्यावधि निर्बाध रूप से प्रचलित है जिससे पुराण-युग की नारी का स्वरूप और उसके गुण समाज में प्रत्यक्षवत् आभासित होते रहते हैं। इसी कारण परवर्ती युग में वीरांगना लक्ष्मीबाई, सती पद्मावती, सती नागमती आदि अनेक नारी रत्नों ने अपने व्यक्तित्व के विकास में पुराणकालीन नारी के चरित से प्रेरणा और स्फूर्ति प्राप्त की है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय जीवन के सन्दर्भ में पुराण-युगीन नारियों के विपुल व्यक्तित्व का प्रभाव असीमित है।

माता अनसूया के सतीत्व का चमत्कार आज भी भारतीय मनीषा को झकझोरता रहता है। सती मदालसा आज भी अपने दार्शनिक विचारों के लिए और जल में कमलवत् जीवन के लिए स्मरण की जाती है। देवमाता अदिति, सती पार्वती, सती सुकला, सुवेदा और सुनीथा और शकुन्तला अपने अपूर्व तप तथा पातिव्रत्य धर्म से सदैव भारतीय नारी समाज को अपना जीवन धन्य बनाने के लिए प्रेरणा और स्फूर्ति देती रहेंगी।

माता देवकी, श्री कृष्णानुगृहीता कुब्जा और महारानी रुक्मिणी श्री कृष्ण के प्रति अपनी अनन्य-परायणा भक्ति के लिए सर्वथा अभिनन्दित और वन्दित होती रहेंगी।

महाभारत से लेकर पुराणों में वर्णित व्यासमाता सत्यवती, देवी गान्धारी देवी कुन्ती, सती उत्तरा, सती सुकन्या और महारानी द्रौपदी कतिपय असाधारण नारी रत्न हैं जिन्होंने अपने शील और सदाचार से धर्म और सत्यनिष्ठा से कर्तव्य पालन और वीरपुत्रों के प्रसव से भारत भूमि का मस्तक समुन्नत किया है।

सती शैव्या, भगवती सावित्री और सर्वोपरि जगज्जननी भगवती सीता जैसे विपुल व्यक्तित्व के धनी नारी रत्न विश्व में सम्भवतः खोजने पर भी प्राप्त नहीं होंगे जिनका सर्वस्व पति के हितसाधन, सत्य और धर्म के पालन में समर्पित होकर धन्य हो गया था।

आज भी परिवर्तित परिवेश में उक्त नारी रत्न अपने कतिपय दुर्लभ गुणों से आधुनिक नारी का पथप्रदर्शन करते रहेंगे।

आधुनिक युग वैज्ञानिक युग है। इस युग में अनेक मान्यतायें परिवर्तित हो गयी हैं। आज नारी को अनेक प्रकार की स्वतंत्रता प्राप्त है। वह घर छोड़कर बाहर शिक्षा के लिए जा सकती है। पुरुष की भांति प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में वह अर्थोपार्जन कर अपने पतिकुल और परिवार की आर्थिक समृद्धि में अपना योगदान दे सकती है। आज नारी राजनीति में भी पुरुषों से प्रतिस्पर्धा कर शिखर में पदारूढ़ होने का बल और पौरुष विकसित कर चुकी है। प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी भारत में और पाश्चात्य देशों में मार्गरेट थैचर,

श्रीमती रीक्नो इत्यादि मुस्लिम देशों में श्रीमती बेनजीर भुट्टो आदि इसके कतिपय उदाहरण हैं। सम्प्रति नारी, प्रशासन, पुलिस विभाग, शिक्षाविभाग स्वास्थ्यविभाग, वायुसेना, थल सेना, और नभ सेना तक में अपनी योग्यता प्रदर्शित कर रही है।

घर से बाहर निकलने की इस स्वतंत्रता ने जहां उसे प्रगति के अनेक द्वार उद्घाटित किये हैं और आगे बढ़ने की उसे अवसर प्रदान किया है वहीं दूसरी ओर उनकी नैतिकता की दीवालें टूटने लगी हैं। सहशिक्षा से जहाँ एक दूसरे को समझने का मौका मिला है तो दूसरी ओर प्रेमविवाह में तीव्रता आई है जिसकी परिणति वासनाजन्य होने के कारण प्रायः असफलता अवसाद और निराशा में हो रही है, परिवार टूट रहे हैं। सहसेवा ने भी समाज में विकृति को जन्म दिया है। मधुकरीवृत्ति के लोगों के सम्पर्क ने नारी को स्वैरिणी होने और स्वच्छन्दविहार के द्वार उद्घाटित किये हैं जिससे समाज और परिवार में तनाव, टूटन, कलुष और अनैतिक संस्कृति का उदय इत्यादि विकृतियाँ यत्र-तत्र देखने को मिलती हैं।

इसके फलस्वरूप आज इस भोगवादी युग में चित्रपट ने नारी को भोग्या बना दिया है जिससे उसका शोषण, दुष्प्रयोजन और देहयष्टि का अभद्र प्रदर्शन आदि बढ़े हैं। इससे समाज विकृत हो रहा है।

अतः उपर्युक्त अनेक संदर्भों में आज भी पौराणिक नारी की प्रासंगिकता बनी हुई है। आधुनिक नारी पुराण युग की नारी से, शुचिता पवित्रता, सत्य और धर्मपरायणता, शील, लज्जा, सदाचार और पातिव्रत्य, आदि अनेक गुणों को, ग्रहण कर अपना जीवन धन्य बना सकती है और इस प्रकार वह भारतीय परिवारों को टूटने तथा समाज को विकृत होने से बचाने के लिए सहयोग कर सकती है तथा अपनी नैतिकता की सीमायें निर्धारित कर सकती है। इसलिए उसके कतिपय गुणों के लिए पुराण-युग की नारी आज भी स्मरणीय है।

परिशिष्ट

(सहायक ग्रन्थ सूची)

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थ-सूची

ब्रह्मपुराण : गुरुमण्डल प्रकाशन कलकत्ता, प्रकाशनवर्ष संवत् 2010

पद्मपुराण : गुरुमण्डल प्रकाशन कलकत्ता

विष्णुपुराण : संस्कृति संस्थान, बरेली, 1967

मार्कण्डेयपुराण : संस्कृति संस्थान, बरेली, 1981

देवीभागवतपुराण : संस्कृति संस्थान, बरेली 1982

ब्रह्मवैवर्तपुराण: हिन्दी सा0सम्मेलन, प्रयाग 1981

पुराण दिग्दर्शन : चतुर्थसंस्करण, माधवपुस्तकालय, देहली

श्रीमद्भागवत पुराण : गीता प्रेस

(प्रथम भाग एवं द्वितीय भाग)

पुराणविमर्श : बलदेव उपाध्याय 1987

पुराण समीक्षा : डा0हरिनारायण दुबे 1984

वेदामृतम् भाग-7 : डा0के0डी0द्विवेदी, 1986, आई0आई0डी0आर0

(वेदों में नारी) इलाहाबाद

दि पोजीशन आफ वूमेन इन हिन्दू -

सिविलीजेशन, : डा0ए0एस0अल्तेकर, मोतीलाल बनारसीदास, तृतीय सं0 1962

वूमेन इन ऋग्वेद : भगवत शरण उपाध्याय, नन्दकिशोर एण्ड सन्स बनारस 1941

दि स्टेटस आफ वूमेन इन एनसियेण्ट इण्डिया : प्रो0इन्द्र लाहौर 1940

महाभारत में नारी : डा0वनमाला भवालकर, अभिनव प्रकाशन सं0202।

वूमेन इन दि सैक्रेड लाज – शकुन्तला राय, शास्त्री भारतीय विद्याभवन।95।

ऋग्वेद संहिता : सातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल पारडी 1957

अथर्व वेद संहिता : अजमेर 1917

शुक्लयजुर्वेद : निर्णय सागर, 1912

ऐतरेय ब्राह्मण : पूना 1896

शतपथ ब्राह्मण : बम्बई

श्रीमद्भगवद्गीता : गीताप्रेस गोरखपुर

महाभारत : गीताप्रेस गोरखपुर

वाल्मीकि रामायण : गीताप्रेस गोरखपुर

श्रीमन्महाभारतम् : निर्णय सागर प्रकाशन, बम्बई 1906

वैदिक मैथालाजी : मैकडानल और कीथ

सारस्वतसन्दर्शनम् – सरस्वती प्र0चतुर्वेदी प्रयाग

काव्यप्रकाश : आचार्य विश्वेश्वर, वाराणसी

रसगंगाधर : चौखम्बा विद्याभवन, 1987

ध्वन्यालोक : आचार्य विश्वेश्वर, वाराणसी

उत्तररामचरितम् : महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा

अभिज्ञानशाकुन्तलम् : महालक्ष्मी प्रकाशन आगरा

रघुवंशम् : चौखम्बा प्रकाशन

कुमार सम्भवम् : चौखम्बा प्रकाशन

हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर : ए0ए0मैक्डानल, चौखम्बा प्रकाशन

हिस्ट्री आफ एनसियेण्ट संस्कृत लिटरेचर : मैक्समूलर

पातंजलमहाभाष्यम् : चौखम्बा प्रकाशन, बनारस

सिद्धान्त कौमुदी : शिवदत्त, वाधिमथ क्षेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई

काशिका : शोभितमिश्र चौ0सं0पुस्तकालय बनारस

अष्टाध्यायी : चौखम्बा प्रकाशन बनारस

हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र : 1-5 डा0पी0वी0काणे भण्डारकर ओरियण्टल
रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना

भारतीय संस्कृति : डा0रामजी उपाध्याय

मनुस्मृति : चौखम्बा, वाराणसी एवं निर्णयसागर

निरुक्त : आर्ष ग्रन्थावली

अष्टादशपुराणदर्पण : ज्वाला प्रसाद मिश्र, वेंकटेश्वर, बनारस

ईशादिपंचोपनिषद — बनारस

छान्दोग्योपनिषद् : जीवानन्द

स्टडीज इन दि एपिक्स एण्ड पुराणाज : ए0डी0 पुसा (बम्बई 1953)

मार्कण्डेय पुराण: एक अध्ययन : बदरीनाथ शुक्ल चौखम्बा वाराणसी

वामनपुराण एक सांस्कृतिक अध्ययन : पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी

हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन : वासुदेव शरण अग्रवाल, राष्ट्रभाषा
परिषद् पटना 1953

पाणिनिकालीन भारतवर्ष : वासुदेव शरण अग्रवाल, मोतीलाल बनारसीदास
बनारस, सं० 2012

अग्निपुराण : बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

पुराणनिर्माणाधिकरणम् : मधुसूदन ओझा

पुराणोत्पत्ति प्रसंग जयपुर 2001

पुराणविषयसमनुक्रमणिका : यशपाल टण्डन

भारतीय संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर

पुराण इन्डेक्स : वी० आर० आर० दीक्षितार, मद्रास

हरिवंशपुराण : एक सांस्कृतिक अध्ययन : सूचना विभाग उ०प्र०
1960

पुराणम् : काशिराज न्यास रामनगर, वाराणसी

जर्नल आफ गंगानाथ झा : रिसर्च इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद

इण्डियन एण्टिक्वेरी, –
हिन्दी सभ्यता : आर० के० मुकर्जी

अमरकोश : निर्णय सागर